ISSN : 2321-3922
जनवरी - 2025
RNI-BIHHIN05394
वर्ष-12 अंक-40
Regd. No. PT/105/BGP-13/2027

सुसंभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

www.susambhavya.com

सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका

RNI No. : BIHHIN05394/2015
ISSN - 2321-3922
वर्ष–12, अंक–40

सुसंभाव्य

(सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका)

जनवरी–मार्च–2025
प्रकाशन : 27 जनवरी 2013

श्री दयानन्द जायसवाल
संस्थापक–सह–प्रधान संपादक

डॉ. विजय कुमार सिंह
संयोजक

श्रीमती अनिता जायसवाल
संरक्षक

डॉ. गिरिजा शंकर मोदी
सम्पादक मंडल

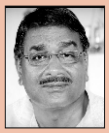

अश्विनी प्रजावंशी
सम्पादक मंडल

श्रीमती छाया पाण्डेय
संस्थापक सदस्य

श्रीमती संयुक्ता गुप्ता
संस्थापक सदस्य

कार्यालय प्रभारी

बिरजू कुमार
भागलपुर
7004435995

सुमित भारती
कोलकाता
8757689138

सौरभ भारती
दिल्ली
8699170450

स्वत्वाधिकारी व प्रकाशक :
श्री दयानन्द जायसवाल
संपादन, संचालन, प्रबंधन एवं
समस्त व्यवस्था अवैतनिक एवं अव्यावसायिक ।
रचनाओं के लिए रचनाकार स्वयं उत्तरदायी।
समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र
भागलपुर।

सम्पर्क : श्री दयानन्द जायसवाल
मौर्या जुबिली प्लेस, जीरोमाईल
भागलपुर–813210 (बिहार)
मो० : 09931240303
वेबसाईट : www.susambhavya.com
ई–मेल : dnj.sambhavya@gmail.com

RNI No. : BIHHIN05394/2015
ISSN - 2321-3922
जनवरी–अप्रैल–25

सुसंभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

वेबसाईट : www.susambhavya.com

आमंत्रण

'सुसंभाव्य' अंतर्राष्ट्रीय स्तर की हिंदी त्रैमासिक है जो वर्तमान समय में विश्व के विभिन्न देशों के पाठक सहित भारत के लगभग सभी शहरों के सहृदयों का स्नेह इस पत्रिका को प्राप्त है।

इसका ई–संस्करण विश्वग्राम के सभी सुधी पाठकों एवं स्नेहीजन के लिए www.susambhavya.com पर सहजता के साथ सुलभ है। मुद्रित संस्करण यथासंभव रचनाकारों, हिंदी के लिए समर्पित संस्था और संस्थानों को उपलब्ध कराया जाता है।

श्रेष्ठ चिंतन सहज–सरल अभिव्यक्ति के माध्यम से जब कोई व्यक्ति सार्वभौम होकर जन–गण में व्याप्त हो जाता है तब वह व्यक्ति से व्यक्तित्व और व्यक्तित्व से संस्थान बन जाता है। ऐसे महान विभूतियों से आग्रह है कि जुलाई 2025 अंक में प्रकाशन हेतु अपनी मौलिक, नवीनतम एवं प्रतिनिधि रनचाएं अपने पत्राचार–पता के साथ, कोरियर या डाक से संपादक के पते पर भेजें।

आइये सब मिलकर सामाजिक सरोकार से संबंधित सार्वभौम, सार्वजनीन एवं श्रेष्ठ साहित्य के माध्यम से धर्म–मज़हब, जाति, लिंग, वर्ण, वर्ग और नस्ल–भेद की दीवार हटा दें और सिर्फ इंसान बनें तथा उत्तम ज्ञान एवं श्रेष्ठ आचरण से स्वयं का परिष्कार कर विश्वग्राम का सौभाग्य बनें।

संपादक
सुसंभाव्य हिन्दी त्रैमासिक
E-mail : dnj.sambhavya@gmail.com
Mob.: 9931240303

सम्पर्क : श्री दयानन्द जायसवाल
मौर्या जुबिली प्लेस, जीरोमाईल
भागलपुर–813210 (बिहार)
मो० : 09931240303

नोट : कृपया अपनी रचनाएँ kurtidev -010 में ही ई मेल से भेजें अन्यथा स्वीकृत नहीं होगी।

अनुक्रम

1.	पुरोवाक्	—	संस्थापक की कलम से ..... दयानन्द जायसवाल	5
2.	समीक्षा	—	भारतीय शिक्षा दर्शन एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीति ..... डॉ. कुन्दनलाल उप्रेति	6
3.	समीक्षा	—	डॉ. संजय कुमार सिंह का कथा संसार ..... मनोज परासर	8
4.	समीक्षा	—	असगर वजाहत की कहानियाँ एक समसामयिक चेतना ..... माला कुमारी 'शोधार्थी'	10
5.	कविताएँ	—	आयेगा बसंत ..... पुष्पेश कुमार	11
			पयोधि ने पुकारा ..... सावित्री शर्मा 'सवि'	11
6.	समीक्षा	—	ममता कालिया के उपन्यासों में नारी–जीवन का दर्शन ..... स्वाति पाण्डेय 'शोधार्थी'	12
7.	समस्या पूर्ति		..... गिरेन्द्र सिंह भदौरिया	14
8.	समीक्षा	—	रिश्तों की रोचक कथा ..... दीपक गिरकर	15
9.	समीक्षा	—	जीवन के अन्तर्वाह्य रचे–बसे, कटु–मधु कविताएँ ..... शिखर जैन	16
10.	समीक्षा	—	अपने–अपने देवधर : एक समग्र आकलन ..... परिधि शर्मा	18
11.	समीक्षा	—	वंचित वर्गों का दर्द बयां करते : घरों को ढोते लोग ..... नृपेन्द्र अभिषेक नृप	19
12.	समीक्षा	—	संवेदना ही कविता का मूल है ..... शैलेन्द्र चौहान	20
13.	समीक्षा	—	मानवीय संबंधों की सूक्ष्मता से पड़ताल करती पुस्तक : अब और नहीं ... संजीव जायसवाल	21
14.	कविता	—	हमसे बेहतर ये पक्षी ..... नेतलाल यादव	21
15.	समीक्षा	—	जीवन मूल्यों से प्रेरित : पग–पग धूप–छाँव ..... डॉ. विद्या केशव चिटको	22
16.	कविताएँ	—	फिर–फिर जेठ तपेगा आँगन, धूप और चाँदनी राधेश्याम बन्धु	23
			कर्मों का हिसाब देवेन्द्र कुमार मिश्रा	23
17.	समीक्षा	—	जोया देसाई कॉटेज : कहानी संग्रह ..... डॉ. रमाकान्त वर्मा	24
18.	कविता	—	हमारे गाँव का चबूतरा तेजनारायण राव	25
19.	शोध आलेख	—	नई कविता में प्रगतिशील चेतना डॉ. हरकेश कुमार	26
20.	कविताएँ	—	यथार्थ — प्रिया देवांगन 'प्रियु' एवं लेखनी ..... गौरीशंकर वैश्य	29
21.	समीक्षा	—	सिमट गए संवादः यथार्थ से मुठभेड़ ..... वीरेन्द्र परमार	30
22.	कविता	—	पीठ पर बेटियाँ महेश कुमार केशरी	31
23.	आलेख	—	समाज के नवनिर्माण में साहित्य की भूमिका डॉ. निशा जैन	32
24.	चित्रण	—	संत दासोपंत डॉ. बायजा कोटुले	34
25.	आलेख	—	संतों सहज समाधि भली ..... डॉ. अरुण कुमार वर्मा	37
26.	कविताएँ	—	गरिमा सक्सेना	40
27.	आलेख	—	यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता — सुभाष चन्द्र झा	41
28.	आलेख	—	कबीर काव्य में विद्रोह — अमर सिंह वधान	48
29.	आलेख	—	पारंपरिक लोकगीतों का चलन बना रहे — संजय वर्मा दृष्टि	53
30.	आलेख	—	अंग्रेजी है मगर हिंदी शिखर के डगर ..... सेवा सदन प्रसाद	53
31.	आलेख	—	भागलपुर की गरिमा — चम्पा विजय वर्धन	54
32.	आलेख	—	सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' की क्रांतिकारी जीवन यात्रा ... डॉ. उषा निगम	55
33.	यात्रा वृत्तांत	—	रामगोपाल शर्मा 'रूद्र' टाँके पाकर मेरा घाव सिलेगा क्या ..... अश्विनी कुमार आलोक	57

अन्तिम मनुष्य

सारी दुनिया उजड़ चुकी है
गुजर चुका है मेला
ऊपर है बीमार सूर्य
नीचे मैं मनुज अकेला
बाल-उमंगों से देखा था
मनु ने जिसे उभरते
आज देखना मुझे बदा था
उसी सृष्टि को मरते
वृद्ध सूर्य की आँखों पर
माँड़ी-सी चढ़ी हुई है
दम तोड़ती हुई बुढ़िया-सी
दुनिया पड़ी हुई है
कहीं-कहीं गढ़, ग्राम, बगीचों
का है शेष नमूना
चारों ओर महा मरघट है
सब है सूना-सूना
कौमों के कंकाल झुण्ड के
मुण्ड अनेक पड़े हैं
ठौर-ठौर पर जीव-जन्तु के
अस्थि-पुंज बिखरे हैं
घर में सारे गृही गए मर
पथ में सारे राही
रण के रोगी जूझ मरे
खेतों में सभी सिपाही
कहीं आग से कहीं महामारी से
कहीं कलह से
गरज कि पूरी उजड़ चुकी है
दुनिया सभी तरह से
अब तो कहीं नहीं जीवन की
आहट भी आती है
हवा दमे की मारी कुछ
चलकर ही थक जाती है।

रामधारी सिंह दिनकर

पुरोवाक्

दयानन्द जायसवाल

संस्थापक की कलम से

मानव मन में बहुत-सी ललित भावनाएँ और अनुभूतियाँ तरंगित होकर सार्थक शब्दों में कलात्मक रूप से प्रकट होती हैं। यह मानव मन की कलात्मक रमणीय कलापूर्ण अभिव्यक्ति है। मनुष्य की सृष्टि से लेकर जब तक जितना भी ज्ञान और अनुभव सृजित हुआ वह सारा भंडार साहित्य ही है। साहित्य शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के सहित शब्द से हुई है। हितेन सह इति सृष्टिसमूह तस्याभावः साहित्यम्। यह वाक्य संस्कृत का एक प्रसिद्ध सूत्र-वाक्य है जिसका अर्थ होता है साहित्य का मूल तत्त्व सबका हितसाधन है। मानव अपने मन में उठने वाले भावों को जब लेखनीबद्ध कर भाषा के माध्यम से प्रकट करने लगता है तो वह रचनात्मकता ज्ञानवर्धक अभिव्यक्ति के रूप में साहित्य कहलाता है। साहित्य का समाजदर्शन शूल-कांटों जैसी परंपराओं और व्यवस्था के शोषण रूप का समर्थन करने वाले धार्मिक नैतिक मूल्यों के बहिष्कार से भरा पड़ा है। जीवन और साहित्य की प्रेरणाएँ समान होती हैं। साहित्य समाज की उन्नति और विकास की आधारशिला रखता है। इस संदर्भ में अमीर खुसरो से लेकर तुलसी, कबीर, जायसी, रहीम, प्रेमचंद, भारतेन्दु, निराला, नागार्जुन तक की श्रृंखला के रचनाकारों ने समाज के नवनिर्माण में अभूतपूर्व योगदान दिया है।

साहित्य अपने ज्ञानामृत से समाज और संस्कृति की एक सार्थक दिशा प्रदान करता है। साहित्य की जब पवित्र गंगा बहती है तो सारे जन इसी में डूबे रहते हैं। और यह मानव की बुद्धि और आत्मा को निर्मल बनाती है। किसी भी काल के वैज्ञानिक अध्ययन से हम मानव जीवन के रहन-सहन और अन्य अवसरों को आसानी से जान सकते हैं। सामाजिक संभावनाओं को देखने में ही साहित्य सृजन होता है। आज का युग वैज्ञानिक युग है। मानव डिजिटल युग में निवास कर रहा है। किसी भी काम का विलंब उसे पसंद नहीं है। पल झपटते ही काम को चमत्कार चाहता है। मानव का जीवन यांत्रिक जीवन बनता जा रहा है। इंसानियत का आदी बन चुका है। विज्ञान मानव जीवन को उपलब्ध कराता है और उसे सुखी बनाता है। पर साहित्य मानव जीवन को सुन्दर एवं अनुशासित बनाता है। अर्थात् साहित्य रचना एवं पाठ से मानव में नैतिक मूल्यों की वृद्धि होती है। साहित्य देश की संस्कृति का वाहक है। साहित्य हमें अपने विचारों, भावनाओं और अनुभवों को व्यक्त करने और समझने का एक माध्यम प्रदान करता है तथा विभिन्न संस्कृतियों, इतिहास और सामाजिक मुद्दों के बारे में जानकारी प्रदान करता है, जिससे हम दुनिया को बेहतर ढंग से समझ सकते हैं। विभिन्न संस्कृतियों के साहित्य में गोता लगाने से हमें न केवल काम का मूल्यांकन करने और चर्चा करने की अपनी क्षमता का विस्तार करने का मौका मिलता है, बल्कि यह भी बेहतर ढंग से समझ सकते हैं।

साहित्य वह सशक्त माध्यम है, जो समाज को व्यापक रूप से प्रभावित करता है। यह समाज में प्रबोधन की प्रक्रिया का सूत्रपात करता है। लोगों को प्रेरित करने का कार्य करता है और जहाँ एक ओर यह सत्य के सुखद परिणामों को रेखांकित करता है, वहीं असत्य का दुखद अंत कर सीख व शिक्षा प्रदान करता है। अच्छा साहित्य व्यक्ति और उसके चरित्र निर्माण में भी सहायक होता है। यही कारण है कि समाज के नवनिर्माण में साहित्य की केंद्रीय भूमिका होती है। इससे समाज को दिशा-बोध होता है और साथ ही उसका नवनिर्माण भी होता है। साहित्य समाज को संस्कारित करने के साथ-साथ जीवन मूल्यों की भी शिक्षा देता है एवं कालखंड की विसंगतियों, विद्रूपताओं एवं विरोधाभासों को रेखांकित कर समाज को संदेश प्रेषित करता है, जिससे समाज में सुधार आता है और सामाजिक विकास को गति मिलती है। उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी को भारतीय साहित्य के सांस्कृतिक एवं समाज निर्माण की शताब्दी कहा जा सकता है। इस शताब्दी ने स्वतंत्रता के साथ-साथ समाज-सुधार को भी संघर्ष का विषय बनाया। इस काल के साहित्य ने समाज जागरण के लिए कभी अपनी पुरातन संस्कृति को निष्ठा के साथ स्मरण किया है, तो कभी तात्कालिक स्थितियों पर गहराई के साथ चिंता भी अभिव्यक्त की है। आठवें दशक के बाद से आज तक के काल का साहित्य जिसे वर्तमान साहित्य कहना अधिक उचित होगा, फिर से अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जुड़कर समाज निर्माण की भूमिका को वरीयता के साथ पूरा करने में जुटा है। वर्तमान साहित्य मानव को श्रेष्ठ बनाने का संकल्प लेकर चला तो है, किंतु बाजारवादी प्रवृत्तियों के कारण साहित्यिक मूल्यों में गिरावट आई है परंतु अभी भी स्थिति नियंत्रण में है।

रचनाकार चाहे जिस युग का हो उसके कालजयी होने का आधार उसकी सार्वभौमिक और सार्वकालिक दृष्टि ही होती है। अपने विस्तृत अध्ययन, चिन्तन एवं मनन से आचार्य द्विवेदी ने अनुभव किया कि समाज को सचेतन बनाना चाहिए– "शताब्दियों का दीर्घ अनुभव यह बताता है कि उत्तम साहित्य की सृष्टि करना ही सबसे बड़ी बात नहीं है। सम्पूर्ण समाज को इस प्रकार सचेतन बना देना परमावश्यक है जो उस उत्तम रचना को अपने जीवन में उतार सके।" (अशोक के फूल, पृ०. 167) साहित्यकार के व्यक्तित्व की पहचान अलग होती है। सच्चे साहित्यकार गंभीर, चिंतनशील, संवेदनशील, दूरदृष्टा, व्यापक दृष्टिकोण रखते हुए भावना और सम्वेदनाओं से परिपूर्ण होते हैं। क्योंकि अपनी लेखनी से वो जिस साहित्य का निर्माण करते हैं, वह भविष्य में समाज का, संस्कृति का निर्माण करता है। क्योंकि साहित्यकार की कलम से निकला एक-एक शब्द समाज में परिवर्तन लाने में सक्षम है।

किसी भी प्रकार के साहित्य की मूल चेतना या भावना अथवा मुख्य आधार से मानव समाज की चहुँमुखी उन्नति ही होती है। प्रत्येक प्रकार के साहित्य का यह उद्देश्य होता है कि मानव हर प्रकार के राग, द्वेष, घृणा, ईर्ष्या, शोषण, कलुषित विचार आदि दुर्भावनाओं को त्याग कर, उस परमपिता परमेश्वर, सर्वशक्तिमान ईश्वर की सत्ता को, उसकी शक्ति को जानने का प्रयास करता हुआ, "आत्मवत सर्व भूतेषु" यानी सभी को अपने समाज समझने का प्रयास करे तथा "सर्वे भवंतु सुखिनः" का भाव लेकर "परमार्थ" "बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय" के सिद्धान्त को अपने जीवन में उतारे। सादर...।

दयानन्द जायसवाल

समीक्षा

भारतीय शिक्षा दर्शन एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीति

डॉ. कुंदनलाल उप्रेती
न्यू आदर्श नगर, पला रोड, अलीगढ़ (उ.प्र.)
मोबाइल–9837461106

'भारतीय शिक्षा दर्शन एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीति' वरिष्ठ साहित्यकार एवं शिक्षाविद् डॉ. पशुपतिनाथ उपाध्याय द्वारा 2024 में प्रकाशित कृति है। इस कृति का प्रथम अध्याय आधुनिक भारतीय शिक्षा दर्शन है जिसमें भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक विचारधारा एवं पाश्चात्य शैक्षिक विचारधारा का अनुशीलन सैद्धान्तिक पक्ष के अन्तर्गत किया गया है। भारतीय राष्ट्रीय चिंतन में सत्य की खोज इस बिन्दु पर आकर पूर्ण हो जाती है कि शिक्षा का सत्य चित्तवृत्तियों का पूर्ण सामंजस्य प्रस्तुत करता है। सामान्य अर्थ में इसे सामंजस्य ही कहा जाता है। भारतीय और पाश्चात्य शिक्षा में सत्य की परिधि में जिन भावनाओं; संभावनाओं, आदर्श कल्पनाओं एवं विश्वास मान्यताओं का उल्लेख किया गया है, उन सभी का समाहार संवेदनात्मक धरातल पर हो गया है। द्वितीय अध्याय में शिक्षादर्शन के विविधवाद का सर्वेक्षण करते हुए उनके द्वारा स्थापित सिद्धान्तों का अनुशीलन शिक्षापद्धति, विद्यालय, शिक्षक, अनुशासन, पाठ्यक्रम, शिक्षार्थी आदि तत्वों एवं घटकों के परिप्रेक्ष्य में किया गया है ताकि वस्तुनिष्ठ विवेचन प्रस्तुत किया जा सके। उनमें प्रकृतिवाद, आदर्शवाद, यथार्थवाद एवं प्रयोजनवाद को वर्ण्य विषय बनाया गया है।

तृतीय अध्याय के अन्तर्गत भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक विचारधारा का व्यावहारिक धरातल पर विवेचन प्रस्तुत किया गया है, जिसमें शिक्षा का लक्ष्य, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधि, जीवन दर्शन, शिक्षा के घटक, शिक्षा दर्शन, सार्वभौमिकता आदि बिन्दुओं के अन्तर्गत तात्त्विक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। भारतीय जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में पुनरुत्थान और पुनर्जागरण की जो विचारधारा प्रवाहित हुई थी, उनसे सम्पूर्ण राष्ट्र प्रभावित हुआ और उससे नए जीवन का संदेश मुखरित हुआ। भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक विचारधारा के चिंतकों में स्वामी विवेकानन्द का शिक्षा-दर्शन के साथ-साथ महात्मा गांधी, रवीन्द्र नाथ टैगोर, अरविन्द घोष, दयानन्द सरस्वती, डॉ. एनी बेसेन्ट एवं डॉ. जाकिर हुसैन के शिक्षा दर्शन का बिन्दुवार विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इस तथ्य को भी यथास्थान रेखांकित किया गया है कि भारतीय परिवेश में धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक राष्ट्रीय चेतना ने राष्ट्रीयता के विकास का मार्ग प्रशस्त किया था।

चतुर्थ अध्याय में पाश्चात्य शैक्षिक विचारधारा का व्यावहारिक धरातल पर विवेचन किया गया है जिसमें पाश्चात्य शिक्षाविदों और शिक्षा शास्त्रियों के सिद्धान्तों का शिक्षा दर्शन के परिपार्श्व में अनुशीलन है। इसके अन्तर्गत प्लेटो की शिक्षा प्रणाली न्याय की भावना पर आधृत रेखांकित की गई है जबकि अरस्तू शिक्षा का मूल उद्देश्य आनन्द की प्राप्ति ही स्वीकारता है। रूसो प्रकृतिवादी शिक्षा दर्शन का प्रबल समर्थक रहा है। स्विट्जरलैंड का पेस्टालॉजी व्यक्ति का सर्वांगीण विकास ही शिक्षा का उद्देश्य मानता है। हरबर्ट नैतिकतावादी शिक्षा दर्शन का चिंतक है जबकि जर्मन शिक्षा दार्शनिक शिक्षा का उद्देश्य शरीर और आत्मा को बन्धन से मुक्त करना-कराना माना है। फ्रॉब्स सभी बालकों में वांछित दशाएँ निहित मानता है। अमेरिकन प्रसिद्ध शिक्षा दार्शनिक डी वी व्यवहारवादी एवं प्रयोगवादी शिक्षाविद् हैं जिन्होंने सामाजिक कुशलता का विकास करना ही शिक्षा का उद्देश्य माना है। हरबर्ट स्पेन्सर ने शिक्षा को जीवन का दर्पण माना है। सभी पाश्चात्य शिक्षा शास्त्रियों ने भी पाठ्यक्रम, शिक्षक, शिक्षार्थी, शिक्षणविधि, शिक्षा के उद्देश्य आदि तथ्यों को दृष्टिगत रखते हुए अपना मत व्यक्त किया है। पाश्चात्य विचारधारा में प्लेटो के शिक्षा दर्शन से लेकर हरबर्ट स्पेन्सर तक के शिक्षा दर्शन का अनुशीलन स्वछन्दतावादी दृष्टि से रूपायित प्रस्तुत किया गया है।

पंचम अध्याय में शिक्षा दर्शन का वैश्विक परिवेश रेखांकित किया गया है। भारतीय शैक्षिक परिवेश में सांस्कृतिक चेतना को केन्द्र बिन्दु मानकर शिक्षाशास्त्रियों द्वारा प्रस्तुत की गई अवधारणाओं को व्यावहारिक धरातल प्रदान किया गया है। सांस्कृतिक परिवर्तन को सामाजिक परिवर्तन के रूप में प्रयुक्त किया गया है क्योंकि समस्त संस्कृति अपने प्रयोग में सामाजिक ही होती हैं। शिक्षा दर्शन का वैश्विक परिवेश उन तथ्यों का आकलन और मूल्यांकन प्रस्तुत करता है जिसमें दार्शनिक प्लेटो से लेकर हरबेट स्पेन्सर तक के शिक्षाशास्त्रियों के शिक्षा दर्शन का अनुशीलन है। सुकरात ने संवाद शैली का अनुसंधान किया था तथा अनुसंधान की विधि को सत्य की विधि के रूप में प्रतिष्ठित किया था। उसके शिक्षा दर्शन में आत्मचिंतन, अनुभवों का विश्लेषण एवं परीक्षण को वर्ण्य विषय मानकर वार्तालाप के द्वारा प्रेरक सिद्ध किया गया है। संवाद चिन्तन की प्रणाली को अपनाकर प्लेटो ने एक नया चिन्तन का मार्ग प्रशस्त किया है – इससे नव्य-परिप्रेक्ष्य की निर्मिति सम्भव हुई। प्लेटो का शिष्य अरस्तू ने भी शिक्षा दर्शन को एक दम नए रूप में प्रस्तुत किया है। अरस्तू आनन्द की प्राप्ति ही शिक्षा का उद्देश्य मानता है। व्यक्ति की समस्त नैसर्गिक शक्तियाँ सन्तुलित होकर विकास की ओर बढ़ती हैं। अरस्तू ने नवीन परिवेश में अपने वैश्विक शिक्षा दर्शन को विकसित किया है। आदर्श राज्य की स्थापना सुव्यवस्थित एवं संगठित परिवेश किया है। पाठ्यक्रम में पढ़ना, लिखना, व्यायाम, चित्रकला आदि से परिवेश को सुसज्जित किया है। उनकी शिक्षा व्यावहारिक उपयोगिता के आधार पर नए क्षितिज का निर्माण करती है। इसी को केन्द्र बिन्दु मानकर वहाँ पर विवेचन, विश्लेषण किया गया है।

प्रकृतिवादी रूसो संधिकालिक युग का शिक्षा शास्त्री रहा है जिसकी शिक्षा योजना को नैतिक शिक्षा के परिवेश में विवेचित किया गया है। एमील की शिक्षा योजना निषेधात्मक रही है फिर भी आज के शिक्षाशास्त्रियों एवं मनोवैज्ञानिकों ने उसके परिवेश का अनुकरण किया है। स्विट्जरलैण्ड का निवासी पेस्टालॉजी शिक्षा को मानव की सम्पूर्ण शक्तियों का सामंजस्य पूर्ण विकास मानता है। वैश्विक परिवेश से उसके शिक्षा दर्शन को व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के क्रम में यहाँ पर विश्लेषित किया गया है। वैश्विक परिवेश की निर्मिति में पेस्टालॉजी के शिक्षा दर्शन का महत्वपूर्ण योगदान है। हरबर्ट के शिक्षा दर्शन में चरित्र निर्माण पर विशेष बल दिया गया है तथा नैतिकता शब्द को रेखांकित करते हुए उनके परिवेश का अंकन किया गया है। शिक्षा के माध्यम से सच्चा ज्ञान प्राप्त करना ही शिक्षा दार्शनिक हरबर्ट का सिद्धान्त है।

फ्रॉबेल जर्मन दार्शनिक ने शिक्षा को नैतिकता से जोड़कर अपना सिद्धान्त प्रतिपादित किया है। विचारों और अनुभवों के ज्ञान के विस्तार से उसने नवीन परिवेश का निर्माण किया है। उनको प्रकृति के प्रति रागात्मक प्रेम की भावना पिता से विरासत में मिली। धार्मिक प्रवृत्ति के ताने-बाने से सम्पूर्ण शैक्षिक परिवेश का कलेवर बुना है। भिन्नता में एकता और विघटन में संगठन तथा विग्रह में सामंजस्य स्थापित करने वाले जर्मन दार्शनिक फ्रॉबेल के सिद्धांत को परिवेशगत परिस्थितियों में रेखांकित किया गया है। उनका शाश्वत नियम सर्वव्यापक नियम से जुड़कर सार्वभौमिक एकता पर अवलम्बित हो जाता है – यही दर्शन वैश्विक परिवेश बन जाता है।

व्यवहारवादी एवं प्रयोगवादी दार्शनिक जॉन डीवी ने प्रयोगात्मक विद्यालय खोलकर वैश्विक परिवेश की स्थापना की है। उनके मतानुसार जीवन

मूल्य : सत्य, चिरन्तन एवं शाश्वत नहीं है। वे विकासवाद को वैश्विक परिवेश में स्थापित करते हैं तथा बुद्धि और क्रिया में कोई अंतर न मानकर आदर्श समाज में एक नया परिवेश विकसित करते हैं। परिवर्तन ही प्रकृति का आधार है तथा सामाजिक आवश्यकता की पूर्ति उपयोग से संभव है, इसी सिद्धांत को उन्होंने प्रतिपादित किया है। इसी प्रकार हरबर्ट स्पेन्सर का शिक्षा दर्शन मानवतावादी दर्शन के रूप में स्थापित किया गया है।

षष्ठ अध्याय में शिक्षा दर्शन का भारतीय परिवेश रेखांकित किया गया है। स्वामी विवेकानन्द के समन्वयवादी विचारधारा को प्रस्थान बिन्दु बनाया गया है। चिन्तन और क्रिया को समन्वित करने वाले विवेकानन्द के व्यावहारिक शिक्षा दर्शन को विश्व बन्धुत्व एवं मानवतावादी भावना के साथ प्रस्तुत किया गया है। पाठ्यक्रम में आध्यात्मिक विषयों के साथ व्यावहारिक विषयों को स्थान देने वाले विवेकानन्द ने न केवल भारतीय परिवेश में नया कीर्तिमान स्थापित किया है बल्कि वैश्विक परिवेश में अमेरिकी संसद को भी नया चिन्तन के लिए प्रेरित किया है। गाँधीजी की बुनियादी शिक्षा को आधार मानकर आत्मज्ञान, चरित्र निर्माण, धार्मिक भावना, सांस्कृतिक चेतना आदि बिन्दुओं के परिवेश से शिक्षा दर्शन को समन्वित पाया गया है। प्रकृतिवादी रवीन्द्रनाथ टैगोर का शिक्षा दर्शन भी देश भक्ति और जनकल्याण की भावना को भारतीयता के सन्दर्भ में रेखांकित करता है। उनका शिक्षा दर्शन ही जीवन दर्शन है तथा सत्य की खोज ही उन्होंने भारतीयता के सन्दर्भ में की है। विश्व-बन्धुत्व के विकास की भावना को लेखन का प्रस्थान बिन्दु बनाया गया है।

मानव मन और आत्मा की शक्तियों का निर्माण करने वाली शिक्षा अरविन्द घोष के शिक्षा दर्शन में देखने को मिली है। उनके शैक्षिक मौलिक विचार को योजनाबद्ध तरीके से स्वतंत्र चिन्तन का प्रतिफल मानकर विवेचित किया गया है। दयानन्द सरस्वती का शिक्षा दर्शन आनन्द प्रदायिनी शिक्षा दर्शन है। धार्मिक और व्यावसायिक शिक्षा पर उनका विशेष बल रहा है। वे प्रजातंत्रीय भारत के लिए जनशिक्षा का समर्थन वर्तमान परिवेश में करते हैं। डॉ. एनी बेसेन्ट ने अपने शिक्षा दर्शन में भारतीय शिक्षा के आदर्श और उपयोग को बल प्रदान किया है। शिक्षा और संस्कृति में अन्तर भी स्पष्ट किया है। आदर्श अध्यापक, आदर्श छात्र एवं वैज्ञानिक शिक्षा प्रणाली के साथ-साथ नैतिक शिक्षा को भी उन्होंने उपयोगी सिद्ध किया है। उनकी राष्ट्रीय शिक्षा योजना में मातृभाषा पर विशेष बल दिया गया है। इसी तथ्य को आधार मानकर विवेचन विश्लेषण किया गया है। डॉ. जाकिर हुसैन का शिक्षा दर्शन आत्मानुभूति से समन्वित व्यक्ति के सन्तुलित विकास का प्रतीक है। उन्होंने भारतीय शिक्षा को भारतीय जनजीवन की आवश्यकताओं और आदर्शों के अनुकूल बनाना चाहा था – इसी को केन्द्र में रखकर उनके शिक्षा दर्शन का विवेचन विश्लेषण किया गया है।

सप्तम अध्याय में राष्ट्रीय शिक्षानीति 2020 के अन्तर्गत स्कूल शिक्षा, शिक्षक, समतामूलक शिक्षा और समावेशी शिक्षा, कुशल संसाधन और प्रभावी गवर्नेंस, स्कूली शिक्षा के लिए मानक निर्धारण आदि बिन्दुओं के परिप्रेक्ष्य में भारतीयता के धरातल पर अनुशीलन किया गया है। उच्चतर शिक्षा के अन्तर्गत एक नया और भविष्योन्मुखी दृष्टिकोण विकसित करने पर बल दिया गया है। समग्र और बहुविषयक शिक्षा की ओर बढ़ते कदम को युगीन परिवेश में रेखांकित किया गया है। सीखने के लिए अनुकूल वातावरण और उचित परिवेश की आवश्यकता महसूस की गई है। शिक्षा-दीक्षा के पाठ्यक्रम में अपेक्षित परिवर्तन करते हुए जनोपयोगी और छात्रोपयोगी बनाने पर भी गंभीरता से विचार किया गया है। यह सम्पूर्ण प्रक्रिया शिक्षादर्शन की उपयोगिता और सार्थकता को रेखांकित करती है।

गुणवत्तायुक्त अकादमिक अनुसंधान को प्रेरित करना भी शिक्षकों, शिक्षाविदों एवं शिक्षाशास्त्रियों का दायित्व है। इस तथ्य को भी मद्देनजर रखते हुए विवेचन प्रस्तुत किया गया है ताकि राष्ट्रीय शिक्षा नीति की गुणवत्ता जनसाधारण तक पहुँच सके। भाग तीन में व्यावसायिक शिक्षा, भारतीय भाषाओं, कला और संस्कृति का संवर्धन, प्रौद्योगिकी का उपयोग आदि विषयों पर गंभीर चिंतन के साथ व्यावहारिक सुझाव दिए गए हैं ताकि जीविकोपार्जन की समस्या का समाधान हो सके। भाग चार में क्रियान्वयन की रणनीति बनाई गई है जिसके अन्तर्गत गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तथा सलाहकार बोर्ड का सशक्तिकरण को वर्ण्य विषय बनाया गया है।

शिक्षा दर्शन कार्य संस्कृति और वातावरण को प्रदर्शित करते हैं क्योंकि 'स्कूलों के काम के वातावरण और संस्कृतियों में आमूलचूल परिवर्तन करने का प्राथमिक लक्ष्य शिक्षकों की क्षमताओं को अधिकतम स्तर तक बढ़ाना होगा ताकि वे अपना काम प्रभावी ढंग से कर सकें।'

प्रस्तुत कृति इस प्रकार सात अध्यायों में विभक्त है और अंतिम तथा सातवां अध्याय राष्ट्रीय शिक्षा नीति और शिक्षा दर्शन है। 'भारतीय शिक्षादर्शन एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीति' कृति सृजनात्मक शक्ति की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति है। वैश्विक शिक्षा दर्शन सत्यं, शिवं की ही अभिव्यक्ति सिद्ध हुआ है जिसकी चरम परिणति में सुन्दरम् का भावबोध निहित है। शिव का रूप जहाँ तपश्चर्या और योग से समन्वित है, आध्यात्मिकता का प्रतीक है जो शिक्षा दर्शन का भी संकेत करता है, वहाँ दूसरी ओर वह शिक्षा, शिक्षा दर्शन एवं शास्त्र की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का प्रेरक भी सिद्ध हुआ है। यह शिवं जो कल्याणकारी है, शिक्षा और शिक्षा दर्शन की उपयोगिता भी समाज और राष्ट्र के लिए कल्याणकारी है। उसी शिवत्व भाव को सम्पूर्ण कृति में भारतीयता के परिप्रेक्ष्य में व्यावहारिक और यथार्थवादी दृष्टिकोण से रेखांकित किया गया है। वस्तुतः शिक्षा दर्शन की तरह शिक्षा भी विश्वमंगल के अनेक तत्वों का उद्घाटन करती है तथा एक प्रकार से शिव के मांगलिक नाम को सार्थक बनाती है। शिक्षक शिक्षा के माध्यम से आत्मदान करता है। मनुष्य के सृजनात्मक और सामाजिक जीवन में प्राकृतिक हित सांस्कृतिक शिव में अन्वित होकर ही शिवत्व को प्राप्त करते हैं। यह शिक्षक का आत्मदान ही सांस्कृतिक शिव का स्वरूप है।

यही शिक्षक की विशेषता है और शिक्षा दर्शन का रहस्य जिसको इस कृति में संदेश के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। प्रेय प्रकृति है। आत्मदान का शिव ही संस्कृति का श्रेय है। पारस्परिकता में प्रेय और श्रेय, स्वार्थ और परमार्थ का समन्वय है। परमार्थ अर्थात् लोकसेवा, लोकहित, समाजसेवा, साहित्य सेवा, शिक्षा सेवा आदि इसी दर्शन के अन्तर्गत समन्वय की साधना है, सफलता है और शिवत्व की कसौटी है। यही कारण है कि आत्मदान को शिवं का मूल स्वरूप माना गया है, जिसके मूल में शिक्षा है और शिक्षादर्शन की भावना। सांस्कृतिक सृजन की मंगलमयी साधना, कल्याणमयी उपासना में ही शिक्षा और शिक्षा दर्शन की अविरल धारा अनन्त काल से प्रवाहित हो रही है। सांस्कृतिक साधना का मूलमंत्र मनुष्य की स्वतंत्रता, समानता एवं उसका गौरव है जो सकारात्मक शिक्षा दर्शन एवं शिक्षा से आती है। अतएव शिक्षा और शिक्षा दर्शन के स्वरूप में सत्य का ही रहस्योद्घाटन हुआ है। यही सत्यान्वेषण शिवं और सुन्दरम् के रूप में कृति में अभिव्यक्ति पा गया है।

वस्तुतः शिक्षा शिक्षण एक बौद्धिक-रागात्मक प्रक्रिया है, जिसमें बुद्धि अपने सम्पूर्ण वैभव के साथ रागात्मक वृत्ति की अभिव्यक्ति में योगदान करती है, जिसका आधार शिक्षा दर्शन ही होता है। 'भारतीय शिक्षा दर्शन एवं राष्ट्रीय शिक्षानीति' में पाश्चात्य और भारतीय दोनों शिक्षाशास्त्रियों के शिक्षा दर्शन में सर्वधर्म समभाव और मुक्त अखंड भारत की संकल्पना में विश्वास व्यक्त किया गया है। 37 वीं कृति के प्रकाशन पर मैं डॉ. पशुपतिनाथ उपाध्याय को बधाई देता हूँ। मुझे विश्वास है कि यह कृति शिक्षा विषयक समस्याओं के समाधान में सहायक सिद्ध होगी।

"भारतीय शिक्षा दर्शन एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीति", लेखक-डॉ. पशुपतिनाथ

समीक्षा

डॉ. संजय कुमार सिंह का कथा-संसार

मनोज पराशर
मोबाइल–7870701211

डॉ. संजय कुमार सिंह दुःख, निराशा, हताशा, अविश्वास और अलगाव के माहौल में जीवन की अदम्य जिजीविषा के लिए सतत् संघर्षशील मानव जीवन की कथा कहते हैं। इनके कथा-संसार में जीवन की चुनौतियों से सतत् संघर्ष करते मध्यवर्गीय व्यक्ति की आकांक्षाओं और सपनों को सजाते-बचाते जीवन संघर्ष की कथा है। उनकी कथाओं में एक अदद मकान की तलाश में हकलान आदमी, घर, परिवार, समाज, व्यवस्था, दफ्तर और दुकान में फँसे आदमी, दुःख, चिंता और आशंका में उलझे आदमी, डॉक्टर, वकील और पुलिस से निबटते आदमी, की कहानी है। आधि-व्याधि, आर्थिक-मानसिक परेशानियों में, एक दमघोंटु जीवन परिस्थितियों में अपना मार्ग बनाते आदमी, दिन-प्रतिदिन की समस्याओं से संघर्ष करते, दुःस्वप्न देखते आदमी की कथा ही इनके कथा संसार का सच है। प्रतिदिन के जीवन के लिए बार-बार मरते आदमी की कहानी कहता है यह कथा-संसार। उनकी कथा अपने समय और समाज की शव-परीक्षा है।

स्वार्थ-समर में संलग्न मानव सभ्यता की कथा कहने वाले रचनाकार संजय कुमार सिंह की कथाओं का कथन है – "आज का संबंध अवसरवाद, विश्वासघात और अभियोग के धागे से बुना हुआ है।" 'समय ही दुष्ट है' कहने वाले कथाकार ने मानव जीवन के विभिन्न उत्तापों से त्रस्त जीवन स्थितियों का चित्रण किया है। रिश्ते के रेगिस्तान में प्यास से बदहवास भटकती जिन्दगी की कहानी कहने वाले कथाकार संजय कुमार सिंह लिखते हैं – "आदमी ईमान और आबरू बेचते-बेचते अब पानी और हवा बेचने पर आमादा हो गया है।"

एक कथाकार के रूप में संजय कुमार सिंह मानव जीवन में फैली त्रासदी, अलगाव, स्वार्थनीति, उत्ताप, अहंकार और राजनीतिक छल-छद्म को सामने लाते हैं। वे समस्या, संघर्ष और टूटती संवेदना के कथाकार हैं। आज आम आदमी के जीवन से सपनों का मरना जारी है। सच के संग उनके सपने भी हैं। उनके पूरे कथा-संसार में प्रेम, करुणा, लगाव, कर्तव्य, मानवीयता, अपनापन आदि जीवन के काले-कजरारे बादलों के बीच बिजली की चमक की तरह आकस्मिक रूप से झलक जाती है।

डॉ. संजय कुमार सिंह यथार्थवादी रचनाकार हैं। वे समाज के यथार्थ को कहानी में पिरोकर पेश करते हैं। वे सामाजिक यथार्थवाद के चितेरा कथाकार हैं, जिनकी रचनाओं में जीवन और जगत का तथ्य और सत्य नग्न रूप में प्रस्तुत होता है। उन्होंने आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की जगह नग्न यथार्थवाद को अपनाया है। उनकी 'पंचायत' कहानी में पंच-परमेश्वर वाला आदर्श अभिव्यक्त नहीं हुआ है, बल्कि ग्राम पंचायत में जिस तरह का राजनीतिक चौसर बिछा रहता है, उसका जीवंत चित्रण किया है। पंच सत्य और न्याय के पक्ष में नहीं, बल्कि अपने हित समूह के साथ होते हैं। स्वार्थ साधन में वे अपने तर्क और तथ्य को शतरंजी चाल के रूप में प्रस्तुत करते हैं। वे स्वार्थ जनित न्याय व्यवस्था की जगह आदर्शवादी प्राकृत न्यायवादी व्यवस्था को थोपते नहीं हैं।

एक कथाकार के रूप में संजय कुमार सिंह ने भारतीय दाम्पत्य की किच-किच करती जिन्दगी का सुन्दर चित्रण किया है। उन्होंने नारी अस्मिता को दबाने और उसे प्रताड़ित कर दोयम दर्जे का नागरिक बनाने के पुरुषवादी सोच को बड़ी बारीकी से उकेरा है। पति-पत्नी के बीच वर्चस्व संघर्ष की कथा हो अथवा मन-भावन नोंक-झोंक, कथाकार शब्दों की मीनाकारी करने से बाज नहीं आते। स्त्री-पुरुष संबंधों की अनेक छवियाँ इनकी कथाओं में यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं।

संजय कुमार सिंह की कथाओं में दाम्पत्य का नोंक-झोंक और पति-पत्नी के रिश्तों का मार्मिक पल उभरकर आता है। भारतीय दाम्पत्य की खींच-तान और उसका व्यंग्य-विद्रूप आकार लेता रहा है। दिल का टूटना और सपनों का मर जाना आज की तल्ख हकीकत है। मध्यवर्गीय दाम्पत्य की त्रासदी है कि वह जीवन के रपटीले रास्तों से गुजरती है। संजय कुमार सिंह की कथाओं में स्त्री-विमर्श की भी कमी नहीं है। एक रचनाकार के रूप में वे पितृसत्ता से त्रस्त स्त्री-संघर्ष को दर्शाते हैं। वे शोषण मुक्ति हेतु नारी चेतना को वाणी देते हैं।

कोशी क्षेत्र का रचनाकार कोशी-कथा को अपने-अपने ढंग से कहने का प्रयास करते हैं। संजय जी भी कोशी क्षेत्र के कथाकार हैं। स्वभावतः उन्होंने अपनी कहानियों में कोशी की कथा को समेटा है। उन्होंने कोशी की लोक-कथा और लोक गीत से अपनी कहानियों का कलेवर सजाया है। 'बोह' उनकी ऐसी कहानी है, जिसमें बाढ़-विभीषिका से त्रस्त और उससे सतत् संघर्ष करते जन समुदाय को अपनी कहानियों में समुचित स्थान दिया। संजय कुमार सिंह की कहानियाँ समकालीन सामाजिक समस्याओं से रू-ब-रू होती हैं। कोरोना काल में गाँव की स्थितियों का बयान करती कहानी 'पाँच पागल' में मानव चेतना पर कोरोना महामारी के प्रकोप का चित्रण मिलता है।

संजय कुमार सिंह रचित उपन्यास 'सपने में भी नहीं खा सका खीर वह' और 'रहे खाक में मुन्तसिर' अपने कथ्य और शैली में अपनी अलग पहचान बनाता है। उनके उपन्यासों में मध्यवर्गीय मानसिकता की झलक मिलती है। आज मध्यवर्ग के समक्ष नैतिकता, मूल्यबोध आदि की चुनौतियाँ हैं तो उसे आत्मव्यूच्यूति से बचने का बड़ा संघर्ष है। अपना और पराया की सीमा रेखा मिट गयी है। व्यक्ति का स्वार्थ सर्वोपरि है। संबंधों में भी डिप्लोमेसी चल रही है। लेखक ने अपने दोनों उपन्यासों में दफ्तर की चक्की में पिसती जिन्दगी को कथा का आधार बनाया है। 'सपने में भी नहीं खा सका खीर वह' का नायक वीरेन्द्र बिरवानी हो या 'रहे खाक में मुन्तसिर' का नायक प्रिंसिपल साहब, ये दोनों नायक आजाद भारत की कार्यालयी व्यवस्था की विसंगतियों को दर्शाते हैं। दफ्तरशाही और अफसरशाही के घिनौने रूप का बयान करता है, जिसमें एक मुकम्मल इंसान किस तरह टूट-फूट का शिकार होता है। 'सपने में भी नहीं खा सका खीर वह' 21वीं सदी के भारत में पानी और प्रेम के लिए तरसते लोगों की कहानी है। इस उपन्यास में तरसते, घसीटते, हाँफते लोगों की व्यथा-कथा है। यह जीवन की त्रासदी की कथा है। लेखक ने जीवन-संग्राम में हारते लोगों की कथा कही है। उपन्यास का नायक बिरवानी सपनों में भी सुजाता के हाथ की बनी खीर नहीं खा सका जिससे वह अपनी भूख और प्यास से मुक्त हो पाता।

'सपने में भी नहीं खा सका खीर वह' संजय कुमार सिंह रचित उपन्यास दफ्तर के बाबू की जिन्दगी पर आधारित व्यथा-कथा है जिसमें दफ्तर में काम करने वाले साहब से लेकर बाबू तक की मनोवृत्ति और मनोदशा को, राजनीति और चापलूसी को तो दर्शाया ही गया है, उससे बढ़कर भूमंडलीकरण और उदारवादी दर्शन पर सवार बाजारवाद और उपनिवेशवादी सोच को भी सामने लाया है। आजाद भारत के दफ्तरशाहों की स्वार्थ नीति से संचालित लूटतंत्र का भी खुलासा करता है। लेखक तेल की तरह पानी पर एकाधिकार स्थापित करने की होड़ में लगे मल्टीनेशनल कम्पनियों की कारगुजारी का पर्दाफाश करता है।

अलगाव और बेगानापन आज की सच्चाई बन गयी है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा पानी, हवा और धूप पर अधिकार जमाने का प्रपंच चल रहा है। जमीन से सारा पानी खींचकर बाजार में बेच दिया गया। न जमीन में एक कतरा पानी बचा और न आँखों में। जीवन के सारे संसाधन आम आदमी से छीने जा रहे हैं। लोगों के जीवन से प्रेम तत्व विलीन होता जा रहा है। पानी और प्रेम के बिना जीवन कितना त्रासद हो जाता है? पानी जीवन को भौतिक आधार देता है तो प्रेम आध्यात्मिक ऊँचाई प्रदान करता है।

संजय कुमार सिंह अपनी कथाओं में 'समय के बदलते नब्ज' को पकड़ना चाहते हैं। वे मानवीय संबंधों में आ रहे बदलाव को परखना चाहते हैं। उत्तर आधुनिक भारतीय समाज का खाका खींचना चाहते हैं। 'मोक्ष' और 'पंचायत' कहानी सहित उनकी रचनाओं में व्यक्ति और समाज के क्रमिक बदलाव को रेखांकित किया गया है। 'सपने में भी नहीं खा सका खीर वह' दो भागों में लिखा गया उपन्यास है। प्रथम भाग में बिरवानी सदेह मौजूद है, जबकि दूसरे भाग में उसकी बेटी पिंकी के जीवन की कथा संलग्न है। बिरवानी डायरी के माध्यम से जीवित रहता है। दोनों कथाओं में दाम्पत्य का दो स्वरूप चित्रित है। बिरवानी और सुलक्षणा का दाम्पत्य तथा पिंकी और रमेश का दाम्पत्य। दोनों दाम्पत्य में पति-पत्नी का आपसी रिश्ता चित्रित है। पिंकी और रमेश की दाम्पत्य कथा से पानी और प्रेम का स्तर अधिक छीज गया सा लगता है। पति-पत्नी के छीजते प्रेम के संग बच्चों के प्रति जवाबदेही की कमी भी बढ़ती जा रही है।

संजय कुमार सिंह मानव की उत्कट जिजीविषा के रचनाकार हैं। इनके पात्र असह्य दुःख और तमाम परेशानियों के बावजूद जीवन-संघर्ष में सतत् प्रवृत्त दिखते हैं। ये प्रवृतिमार्गी रचनाकार हैं। पलायन और कायरता के विरुद्ध संघर्ष करती कथाओं में तमाम तनाव-दबाव के बावजूद जीतने की प्रबल चाहत दिखती है।

कथा-कौशल :— कहानी किसी घटना-दुर्घटना की व्याख्या-विश्लेषण नहीं है और न ही किसी सामाजिक-दार्शनिक विषय पर व्याख्यान है। बल्कि वह भाव का संचरण करने वाली होती है। उसमें सहृदय में रसोद्रेक करने की क्षमता होनी चाहिए। संजय कुमार सिंह की कहानियों में रसोद्रेक हेतु उनके द्वारा प्रयुक्त शब्द, पदशैली, पदविन्यास और रस निष्पत्ति के सभी तत्वों के बीच अपेक्षित अन्वति मिलती है। कहानीकार किसी स्थिति विशेष का चित्रण करते हुए पात्र के संवाद, वातावरण के संग-संग अनुभाव, विभाव और संचारी भाव का जीवंत चित्रण करता है। इससे रस निष्पत्ति में सहृदय को सुगमता होती है। किसी भी संवेदना को सुगमता से समग्रता में अंकित करने से कोई रचना उदात्त होती है। कहानी में पात्रों के कथोपकथन के संग वातावरण का चित्रण करने और पात्रों की अन्तश्चेतना में चलने वाले संवाद, उसके संचारी भाव आदि का ख्याल रखने वाले रचनाकार हैं संजय कुमार सिंह।

संजय सिंह के उपन्यास मूलतः पारिवारिक धूरी पर घूमते हैं। एक व्यक्ति अपने परिवार, समाज और कार्यक्षेत्र में जिन संघर्षों का सामना करता है, उसके कई रंगों और आकारों को इन उपन्यासों में उकेरा गया है। अपने दोनों उपन्यासों में कथाकार ने एक कथा नायक के इर्द-गिर्द घटित घटनाओं और कार्यव्यापारों को चित्रित किया है। इससे औपन्यासिक शिल्प में सरलता आ गई है, जो पाठकों को भटकने या उलझने नहीं देता है। यह एक ध्रुवीय कथा की विशेषता है।

संजय कुमार सिंह मूलतः कवि हैं। उनका कवित्व औपन्याससिक रचना में भी अपनी उपस्थिति बनाये रखता है। अपनी संवेदना को अभिव्यक्त करने की कोशिश में वे अक्सर काव्यात्मक हो जाते हैं। समय के सच को कविता में उकेरने की उनकी अद्‌भुत क्षमता से उपन्यास का कलेवर खिल उठता है। पात्रों और उसके परिवेश को उभारने में संजय कुमार सिंह बड़ी बारीक कारीगरी करते हैं। पात्रों का कार्य-व्यापार, उसके व्यक्तित्व के अनुकूल भाषा और शब्दावली में जितनी स्पष्टता और बारीकी से पिरोया जाता है, वही कथाकार की कला का मानदंड तय करता है।

कोशी क्षेत्र 21वीं सदी में भी अपनी ग्रामीण संस्कृति से संबद्ध है। इस क्षेत्र के शहर में भी कोशी-महानंदा अभिसिंचित धरती की सुषमा और संस्कृति लक्षित है। फिर संजय कुमार सिंह की कहानियों में ग्रामीण परिवेश अपनी पूर्णता में नहीं दिखे, ये कैसे संभव है। फलस्वरूप पात्र से संवाद तक, परिवेश से पर्यावरण तक, सर्वत्र ग्रामीण संस्कृति की झलक मिलती है। मैथिली क्षेत्र के हिन्दी कथाकार होने के कारण संजय कुमार सिंह की कहानियों में मैथिली के अनेक अनमोल शब्द वाक्यों में प्रयुक्त होकर अपनी रूप छटा और अर्थ छटा से चार चाँद लगा देता है। वैसे मैथिली के कुछ शब्द द्रष्टव्य हैं — हडहडिया डाक — अन्हरिया बज्जड, अकछ।

कहानी-कला की दृष्टि से संजय कुमार सिंह में किस्सागोई की अद्‌भुत क्षमता लक्षित की जा सकती है। रेणु से चलने वाली किस्सागोई की परंपरा चन्द्रकिशोर जायसवाल होते हुए संजय जी तक अक्षुण्ण है। वे अपनी कथाओं में मिथक का प्रयोग भी करते हैं। उनके रचित अनेक पात्र साहित्य जगत में मिथकीय चरित्र के रूप में प्रयुक्त होंगे। जिस तरह रेणु का हीरामन और रसप्रिया कहानी का नायक अमर व्यक्तित्व ग्रहण करता है, उसी तरह संजय कुमार सिंह के 'फूलो-अनारो', 'चम्पा', 'विरवानो' अनेक कथा नायक अपनी अमरता के लिए जाने जाएंगे। विषय की विविधता और कथन-भंगिमा की रोचकता इनकी कथाओं की विशेषता है। उनकी कहानियों में शिल्प और शैलीगत भिन्नता के साथ कथ्य और विषयगत व्यापकता भी मिलती है। कहानी में औचित्य की तलाश अनुचित नहीं है। कहानी अपने कलेवर से लेकर उद्देश्य तक औचित्य को साकार करती है, तभी उसमें रमणीयता और उद्दात्तता आती है। संजय कुमार सिंह अपने कथ्य और तथ्य को बड़ी संजीदगी से सजाते हैं। अपने कथन-भंगिमा के कारण भी इनकी कथाओं का अध्ययन अपेक्षित है। इनकी कथाओं में शिल्पगत सुघडता और शैलीगत चारुता लक्षित की जा सकती है।

समीक्षा

असगर वज़ाहत की कहानियाँ एक समसामयिक चेतना

माला कुमारी,
शोध प्रज्ञा, हिन्दी विभाग,
ल.ना. मिथिला विश्वविद्यालय,
दरभंगा, बिहार

असगर वज़ाहत अपनी लेखन कला से युग की विभीषिका को चिन्हित करते हुए आगे बढ़ते हैं। समय की पतनशीलता एवं उसकी भयावहता इनकी कहानियों का उपजीव्य रहा है। अपनी कहानियों में यथार्थ को निर्ममता से उघेड़ते हुए भी असगर वज़ाहत संभावनाओं का रास्ता पाठकों के लिए छोड़ते हैं यह उनकी प्रमुख विशेषता रही है। इनकी कहानियों में समाज का हर तबका अपनी-अपनी विशिष्टताओं के साथ मौजूद है। ये विभिन्न तरह की विशिष्टता (गुण-अवगुण) ही इनकी कहानियों में व्याप्त रहा है। राज और समाज की हर समस्याओं को इन्होंने अपनी कहानियों में स्थान दिया है, जो असगर वज़ाहत जी की प्रमुख विशेषता रही है।

प्रस्तावना :– असगर वज़ाहत एक उच्च कोटि के रचनाकार हैं। जो भारतवर्ष की उस सच्चाई को दर्शाते हैं जहाँ राजनीतिक खेल रहस्यमयी है, जहाँ शिक्षा का पतन हो चुका है। स्वतंत्र भारत की राजनीतिक, सांस्कृतिक और धार्मिक विकृतियों को नंगा करने में असगर वज़ाहत जी की रचनाओं ने अगाढ़ सफलता पाई है। अपने समकालीन कहानीकारों में असगर वज़ाहत ने एक अभूतपूर्व सफलता पाई है। वज़ाहत जी एक ऐसे कहानीकार हैं जो अपने अनुसार विषय को नहीं चुनते वरन विषय के अनुसार खुद को चुनते हैं। तात्पर्य उनकी रचनाएँ समय के साथ कदम से कदम मिलाकर सत्य का उद्घाटन करती हैं। वज़ाहत जी की कहानियों में केन्द्रीय विषय राजनीति, समाज में व्याप्त सच्चाई, धर्म के लाइलाज विकृत सवाल हैं, जिससे देश अवनति की ओर बढ़ता जा रहा है को मुख्य विषय बनाया है। असगर वज़ाहत अपने नाजुक समय के प्रति अपनी कलम की जबाबदेही सुनिश्चित करने वाले एक सफल कथाकार हैं। विचारधारा उनकी कहानियों में बनावटीपन के साथ नहीं है वरन् चरित्रों, विषयों, घटनाओं की प्रस्तुति एक रस के रूप में होती है। जो देश के सजग, संवेदनशील और परिवर्तनकारी साहित्यकारों के लिए एक महत्वपूर्ण एवं आवश्यक शर्त के रूप में स्थापित है। असगर वज़ाहत हिन्दी के एक सफल रचनाकार हैं। समकालीन कहानी साहित्य में असगर वज़ाहत की एक खास पहचान है। उन्होंने देश-विदेश का काफी भ्रमण किया है। अपने देश के सामाजिक-राजनीतिक आदि विभिन्न विषयों की सही समझ उनमें विद्यमान है। उनका सामाजिक मान्यताओं में अटूट विश्वास है। असगर वज़ाहत ने समाज की इन्हीं संस्कृतियों को अपनी रचनाओं का आधार बनाया है। प्राकृतिक छवि से दूर उनकी दृष्टि राज और समाज में अधिक रमी है। जितनी रचनात्मकता उन्होंने साहित्य के क्षेत्र में की है, उतनी ही फिल्म, पटकथा लेखन, टेलीविजन और पेंटिंग में रही है। लीक से हटकर अलग ढंग से सोचना और उसे अपनी रचनाओं में व्यक्त करना उनकी खासियत रही है।

असगर वज़ाहत ने अनेक विधाओं में रचनाएँ की हैं। इनकी कहानियों पर यदि बात की जाय तो सन् 1964-65 ई. में इन्होंने लिखना आरंभ किया, तब से लेकर आज तक पचास-पचपन साल की लम्बी कालावधि में इन्होंने अनेक कहानियाँ लिखी हैं।

वज़ाहत जी ने सांप्रदायिकता और उससे जुड़े तत्वों को अपनी रचनाओं में मूलाधार बनाया है। अपनी रचनाओं में मुस्लिम सांप्रदायिकता और उससे जुड़े तत्ववाद पर बार-बार विचार करते हैं। ऐसा नहीं कहा जा सकता है कि जाति के तौर पर वे मुसलमान हैं, इसलिए इन मुद्दों को उठाते हैं, बल्कि अपनी अनेक कहानियों में हिन्दू सांप्रदायिकता और तत्ववाद की पड़ताल भी करते हैं। असगर वज़ाहत की एक महत्वपूर्ण कहानी है – 'सारी तालीमात', जिसे उन्होंने साम्प्रदायिकता को केन्द्र में रखकर लिखा है। इस कहानी के द्वारा समाज में व्याप्त सम्प्रदायिकरण की प्रक्रिया को समझा जा सकता है। कहानीकार ने इस कहानी के जरिये समाज में व्याप्त उस विकृति, अनदेखे, अनजाने चेहरे को सामने लाने का प्रयास किया है जो सर्वथा छुपा हुआ है, मगर आम जन इससे प्रभावित होते रहते हैं। 'सारी तालीमात' में समाज के अंदर की साम्प्रदायिक प्रक्रिया विचारों के पनपने, फैलने की प्रक्रिया को देखा और समझा जा सकता है। कहानी में धर्म के नाम पर गरीब लोगों के शोषण का उल्लेख है – "हर दंगे के बाद हिन्दुओं के मोहल्ले के आसपास रहने वाले मुसलमान किसी मुसलमानी मोहल्ले में आ जाते हैं और मुसलमानों की बस्ती के पास रहने वाले हिन्दू रस्तोगीगंज या रघुबीरपुर चले जाते हैं।" शहर में हर तीन-चार साल के बाद फसाद हो जाता है, अफवाहों का बाजार गर्म हो जाता है, गिरोह भी सक्रिय हो जाते हैं। पुलिस भी दंगों को रोकने के लिए कुछ नहीं करती – "यही तो गड़बड़ है जिगर। पुलिस अगर किसी तरह से..."

साम्प्रदायिकता विरोध प्रगतिशील जनवादी लेखन के लिए एक गंभीर विषय रहा है। बदलाव राजनीति में होता है, जिसका गहरा प्रभाव आम लोगों पर होता है। रोजमर्रा की जिंदगी में साम्प्रदायिकता का कहर कैसे फैलता है यह एक चिंताजनक विषय रहा है। साम्प्रदायिकता फैलने का सबसे महत्वपूर्ण कारण होता है अफवाह और पूर्वाग्रह। असगर वज़ाहत की कहानियाँ इस वजह से साथ पाठक को संस्कारित करती हैं, इससे पूर्वाग्रहों को कुरेदा जा सकता है और लोगों को एक संवेदनशील नागरिक बना सकता है। जिससे लोग एक मूक दर्शक न बनकर सक्रिय प्रतिरोध कर सकें। असगर वज़ाहत ने 'गुरु चेला' जैसी छोटी कहानियों के मार्फत समाज में व्याप्त इस बुराई को दर्शाया है। जब चेला गुरु जी से पूछता है "तो गुरुजी दंगे न रुकने का कारण क्या है? गुरु – साफ है शिष्य – आम लोग दंगे रूकवाने में कोई रुचि नहीं लेते।"

असगर वज़ाहत जी ने गुरु चेला संवाद नाम से अनेक छोटी-छोटी कहानियों के साथ-साथ मुश्किल काम, शाह आलम कैंप की रूहें, सारी तालिमात, मैं हिन्दू हूँ जैसी बड़ी-बड़ी कहानियाँ भी लिखी हैं। सर्वविदित है कि कहानी की सार्थकता इसी में है कि उसका आमजनों के जीवन में हस्तक्षेप कितना है। असगर वज़ाहत अपने लेखन से उस युग की विभीषिका को चिन्हित करते हुए आगे बढ़ते हैं जिसकी उपादेयता आजतक बनी हुई है। देश जब-जब संकट में आया है तो इसमें नेताओं की भूमिका और आमजनों की सोच को दर्शाते हुए अपनी कहानी मुश्किल काम में व्यंग्यात्मक रूप से लिखते हैं – "बाढ़ग्रस्त क्षेत्र में उद्घाटन देखने हजारों

लोग आए, क्योंकि घोषणा की गई थी कि उद्घाटन के बाद राशन भी मिलेगा।"

वज़ाहत जी की कहानियाँ सिर्फ समाज में व्याप्त विकृतियों को ही नहीं दर्शाती है अपितु उससे जुझते हुए आगे बढ़ने का रास्ता भी दिखलाती है। जिसमें समाज का हर व्यक्ति शामिल होता है। फिर चाहे वो हिन्दु हो या मुस्लिम। असगर वज़ाहत समकालीन दौर के रचनाकारों में से हैं जो देश की संकीर्णताओं से परे समाज में व्याप्त मानवीय संवेदनाओं से हमें रू-ब-रू करवाते हैं। भाषायी अभिव्यक्ति भी वज़ाहत जी की सरल, बेबाक एवं किस्सागोई है, जिसे साधारण से साधारण पाठक भी आत्मसात करने में सक्षम है। अपनी इन्हीं खुबियों के कारण असगर वज़ाहत जी की रचनाएँ कथा-साहित्य में अपना महत्वपूर्ण स्थान स्थापित करते हैं। आज समाज में लोग भले ही किसी को पहचानते न हों पर ईर्ष्या का भाव एक-दूसरे के लिए सर्वत्र व्याप्त है जो कि हमारे समाज की एक विचित्र विडंबना है जो कि लगभग लोगों में व्याप्त है। वज़ाहत जी ने मानव के इस विचित्र भाव को दर्शाते हुए श्री टी.पी. देव की कहानियाँ कई भागों में लिखीं हैं उदाहरणार्थ – "मगर उन्हें यह मालूम नहीं था कि उनके पड़ोसी के पास कौन-सी कार है। उन्हें तो यह तक पता नहीं था कि उनका पड़ोसी कौन है और कहाँ रहता है, लेकिन उन्हें यह मालूम था कि ईर्ष्या क्या होती है।"

मुख्यमंत्री एवं डेमोक्रेसिया, शाह आलम कैंम की रूहें, विकसित देश की पहचान, जिम्मेवारी आदि कई लघु कथाएँ एक शृंखला में लिखी हैं। इन कहानियों में बिहार के कोसी में आई बाढ़ और उससे मुख्यमंत्री के राहत कार्य से वोट बैंक की राजनीति तक के चरित्र को उद्घाटित किया गया है।

"मीडिया ने मुख्यमंत्री से पूछा – "हमने सुना है, आप केवल अपने वोटरों की लाशें ही निकालकर लाए हैं। मुख्यमंत्री ने कहा, अरे तो विरोधी दल वाले भी चले जाते कोसी की गोद में, अरे ये तो 'डेमोक्रेसिया' है।"

मुख्यमंत्री और डेमोक्रेसिया में कहानीकार चुटीला व्यंग्य करता है। अकाल हो या बाढ़, स्टेम्पीड हो या दंगा, मुख्यमंत्री खुश ही रहते हैं। भयानक बाढ़ से सर्वत्र सर्वनाश छाया हुआ है। महामारी लोगों का नाश कर रही है, मगर मुख्यमंत्री बहुत प्रसन्न हैं। किसी तरह की कोई परेशानी नहीं है – आप इसे परेशानी कहते हैं। हम तो कहते हैं साल भर बाढ़ रहे। जनता की सेवा करने का मौका मिलता रहे। मुख्यमंत्री कोष में पैसा आता रहे। इन कहानियों में विद्रूपताओं का बार-बार साक्षात्कार होता है। आज हमारे देश और समाज में ऐसी ही कहानियों की आवश्यकताएँ बार-बार महसूस होती हैं। असगर वज़ाहत के विचार और उनके कथ्य इन कहानियों के साथ तालमेल बैठाते हुए उससे जुड़ने की प्रेरणा प्रदान करते हैं। ये कहानियाँ लगातार इतिहास एवं वर्तमान का दर्शन करती हुई भविष्य का निर्धारण करती है। इनकी भाषा सहज और वाक्य सरल है जो मुश्किल एवं जटिल विचारों को भी व्यक्त करने में सफल होती है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि असगर वज़ाहत की कहानियों में साम्प्रदायिक समस्याओं को उठाते हुए उसके कारणों के उद्घाटन का भी प्रयत्न सफलतापूर्वक किया गया है। ये कहानियाँ सिर्फ अपने रचनाकाल को ही नहीं वरन् आज के समसामयिक विडंबनाओं को भी दर्शाती है। जो समकालीन अवस्था में एकदम सार्थक एवं प्रासंगिक है।

कविताएं

पुष्पेश कुमार पुष्प
विनीता भवन, निकट बैंक ऑफ इंडिया,
काजीचक, सवेरा सिनेमा चौक,
बाढ़–803213(बिहार), मोबाइल–9135014901

आएगा बसंत
आएगा बसंत अपने भी वतन में
हर ओर फैलेगा खुशियों का चमन
प्यार की खुशबू से महकेगा अपना वतन
हर ओर होगा शांति
और भाईचारे का माहौल
नहीं होगा कहीं ईर्ष्या-द्वेष का माहौल
छोटे-बड़े का भेद मिटाकर
मदद के हाथ उठेंगे हर ओर
प्रेम-समर्पण का भाव होगा
कहीं नहीं होगा
अकर्मण्यता का माहौल
जाति-धर्म का भेद मिटाकर
शांति भाईचारे का मिसाल बनेगा
अपना वतन
ज्ञान कर्म से फिर
अपनी बुलंदियों को
छू लेगा अपना वतन
जिसके ज्ञान की गंगा में
गोते लगाएगी
दुनिया एक दिन।

सावित्री शर्मा 'सवि'
37/3, इनकम टैक्स लेन, सुभाष रोड,
देहरादून, उत्तराखंड–248001, मोबाइल–9412006465

पयोधि ने पुकारा था
मुझे बहुत प्रिय है वो फूल
निहारा था तुमने जिन्हें
सुर्ख लाल गुलाब खिले
रुक कर सहलाया था जिन्हें
वो स्मृति पटल पे
बिखरे एहसास
मौन में लिपटे ये
भीगे एहसास
रखे हैं मन के कोटर में
कभी किसी पल
दुलराया था जिन्हें
निहार प्रेम मुग्ध किया था
प्रणय निवेदन
आँखों में था मिलन आमंत्रण
रख हथेली पुष्प गुच्छ
भाव निर्झरनी एकाकार
आयी याद वीणा-सा
झंकृत किया था जिन्हें
विस्मृत नहीं कोई पल
आने को नूतन कल
कलियों का है गुंजार
है अनुपम भौंरा या
कली प्रेम उपहार
शैवालिनी-सी बही
किसी पल पयोधि बन
पुकारा था जिन्हें
सूखे नहीं समर्पण इनका
अमृत भरे नैनों से छलका
नर्म शीतल चाँदनी बिखरी
अरुणाभ क्षितिज तक
बिखरी सुवास
हाँ कभी प्रेम आराधना में
चढ़ाया था जिन्हें।

समीक्षा

ममता कालिया के उपन्यासों में नारी जीवन का संघर्ष

स्वाति पाण्डेय
शोधार्थी, हिन्दी विभाग,
अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा
(म.प्र.)

भारतीय समाज में विशिष्ट महिलाओं की संख्या मुट्ठी भर है, पर जो विशिष्ट नहीं हैं, जिनकी बेड़ियाँ टूटी नहीं हैं या सुरक्षा व सुविधा के चुनाव के कारण एक नीति के तहत तोड़ी नहीं गयी है, जिनकी परिभाषाएँ अभी बदली नहीं हैं या कि बदल सकने के विकल्प की उपलब्धि से जो अभी अपरिचित हैं, इनकी संख्या अनंत है। इनको विशाल संसार की ताजा खबर मालूम नहीं है। ऐसी स्त्रियाँ आज कहीं की नहीं। नारी के उत्पीड़न और दासता का इतिहास उतना ही प्राचीन है जितना असमानता और उत्पीड़न पर आधारित सामाजिक संरचनाओं के उद्भव और विकास का इतिहास। प्राचीन साहित्य में ढेरों मिथक और कथाएँ मौजूद हैं जो पुरुष-स्वामित्व की सामाजिक स्थिति के विरुद्ध स्त्रियों के प्रतिरोध और विद्रोह का साक्ष्य प्रस्तुत करती हैं। नारी की दासता और दोयम दर्जे की सामाजिक स्थिति का कई पुरुष-विचारक प्राचीन काल से साहसिक एवं तर्कपूर्ण प्रतिवाद करते रहे हैं, इसके प्रमाण भारत और दुनिया के इतिहास और साहित्य में मिलते हैं।

मुख्य शब्द – ममता कालिया, भारतीय समाज, नारी जीवन, एवं संघर्ष।

प्रस्तावना – नारी जीवन का संघर्ष शायद आज के परिवेश की सबसे विषम और जटिल समस्या है। जहाँ प्रेम होना चाहिए, वहीं कटुता है। जहाँ मिलन होना चाहिए, वहीं जटिलता है। शोषण के बाद जब अस्तित्व का प्रश्न उत्पन्न होता है और वहाँ किसी भी पक्ष द्वारा सुख की बात स्वीकार नहीं की जाती तथा जहाँ सुख भी एक 'मजबूरी' की सीमा में बँधा होता है, वहाँ विद्रोह की मानसिकता स्वाभाविक ही है।

स्वातंत्र्योत्तर भारत के बदलते सामाजिक परिप्रेक्ष्य में नारी द्वारा 'स्वास्तित्व' (जिसे स्त्री-विमर्श अधिक महत्व देता है) की लड़ाई का प्रारम्भ हुआ। कितनी विषमता है कि संविधान प्रदत्त 'समानता' के 'व्यावहारिक' पक्ष से पीड़ित नारी का अस्तित्व-संघर्ष आज भी शुरू है। वर्तमान नारी का यह अनुभवजन्य आक्रोश मात्र भौतिकवादी युग का परिणाम नहीं, परम्परागत मान्यताएँ, विचारधाराएँ भी इस आक्रोश को बनाए रखने में उत्तरदायी हैं।

समकालीन महिला लेखिकाओं ने अपनी बौद्धिक क्षमता के आधार पर हिन्दी उपन्यास साहित्य की श्रीवृद्धि में नारी को केन्द्रित कर उपन्यास सृजन में अपना मौलिक योगदान दिया है। इस सम्बन्ध में माधुरी सोनटक्के का कथन उल्लेखनीय है – "इन उपन्यास लेखिकाओं ने नारी जीवन के प्रत्येक पहलू को दुनिया के सामने लाया और केवल नारी-जीवन ही नहीं बल्कि नारी-जीवन को प्रभावित करने वाले हर क्षेत्र को अपनी लेखनी का विषय बनाया। लेखिकाओं ने अपने उपन्यासों में बहुआयामी प्रतिभा प्रस्तुत की है। उन्होंने वर्तमान में हर क्षण को एहसास किया है और उसे स्वर देना चाहा है।"

महिला उपन्यासकारों में अपने अद्वितीय व्यक्तित्व एवं समृद्ध साहित्यों के माध्यम से विख्यात 'ममता कालिया' ने वर्तमान नारी की गतिविधियों को अनुभव कर अपनी कृतियों में सम्मिलित किया है।

ममता कालिया का 'बेघर' उपन्यास नारी के नैतिक मूल्यों एवं जड़ पुरुष की मानसिकता का करारा जवाब है। एक महिला साहित्यकार के रूप में स्त्री के कौमार्य के संबंध में स्त्री देह से जुड़ी शुचिता और पवित्रता की भावना जैसे जटिल मुद्दे को उठाकर लेखिका ने अत्यंत साहस का कार्य किया है। निःसंदेह इस पितृसत्तात्मक समाज में पुरुष मानसिकता का खुला आचरण प्रमाणित हुआ। यह रूढ़िग्रस्त मानसिकता कि विवाह पूर्व स्त्री के किसी परपुरुष से संबंध हो या किसी घटना की शिकार पीड़ित हों समाज के नीति-नियमों के अनुसार वह त्याग दी जाती है अथवा कलंकित मानी जाती है।

ममता जी के उपन्यास 'बेघर' की संजीवनी समाज के इसी नीति-नियमों की शिकार ऐसी पीड़ित है, जिसे बिना किसी गलती के पुरुष के दकियानूसी विचारधारा से मानसिक पीड़ा झेलनी पड़ती है। सहपाठी विपिन द्वारा आकस्मिक आक्रमण की शिकार संजीवनी चुपचाप खून का घूँट पीकर रह जाती है। स्वयं भी कभी 'अपराध बोध' से मुक्त नहीं हो पाती। अंततः घर से बेघर हो जाती है। लेखिका लिखती है – "व्यक्तिगत सम्पत्ति के उत्तराधिकार को पुरुष सत्ता द्वारा गढ़े कायदे-कानून के अनुसार बनाए-बचाए रखने के लिए कौमार्य, यौनशुचिता, वगैरह आवश्यक नैतिक मापदंड माना जाता रहा है। यह सिर्फ स्त्रियों के लिए ही जरूरी है – पुरुष के लिए नहीं। जहाँ स्त्री इस नियम का उल्लंघन करती है वहाँ उसे फौरन घर से 'बेघर' कर दिया जाता है – यानी विवाह संस्था से बाहर। कुल्टा, वेश्या, कॉलगर्ल जैसे नाम देकर उन्हें साँझी संपत्ति या उपयोग की वस्तु बना दिया जाता है।"

नारी जीवन के संघर्ष के सम्बन्ध में ममता कालिया के उपरोक्त विचार सराहनीय हैं। आधुनिकता एवं पाश्चात्य संस्कृति ने नारी को प्रभावित कर स्वतंत्र अस्तित्व की चाह पैदा की है। नारी शिक्षित होकर अपने अधिकारों के प्रति अब जागरूक हो गयी है। नारी अब घर की दहलीज लांघ कर समाज के प्रत्येक कार्य में बराबर की भागीदार है। पाश्चात्य सभ्यता ने नारी के नैतिक मूल्यों को दूषित किया है। "नारी का अपने शरीर की नुमाइश करना, अर्धनग्न तस्वीर खिंचवाना, सौंदर्य प्रतियोगिताओं में नारियों का शारीरिक प्रदर्शन आदि पश्चिम की भोगवादी संस्कृति ने भारत के मानव तन को कितना दुष्प्रभावित कर दिया है, इसकी झलक प्रतिदिन किसी-न-किसी उदाहरण से मिलती रही है। सम्पूर्ण विश्व को सतीत्व की परिभाषा समझ बैठी हैं, जबकि सच्चाई इसके विपरीत है। वर्तमान स्थिति को यदि परखें तो भारतीय नारी घोर पतन की खाई में उतर रही है, क्योंकि नैतिकता, चरित्र तथा सदाचार जैसे शब्दों का हमारी युवा नारी के जीवन में कोई स्थान नहीं रह गया है।"

विश्लेषण – वर्तमान में जीवन की विसंगतियों के मध्य संघर्षरत नारी जीवन को ममता कालिया ने उपन्यासों के कथ्य के द्वारा यथार्थपरक दर्शाया है। 'अँधेरे का ताला' की नन्दिता आधुनिक कार्यरत नारी है। कॉलेज की प्रधानाध्यापिका के रूप में नन्दिता का जीवन सतत् विविध संघर्षों से ग्रसित

है। कॉलेज में बी.ए. की छात्रा के अभिभावक भाई के द्वारा अचानक हमले से घायल नन्दिता का संघर्ष वर्तमान शिक्षा जगत में फैले भ्रष्टाचार तक का खुलासा करता है। उपन्यास के संवाद में – "ये छोटी-छोटी बातें नन्दिता को उसकी औकात समझा जाती है। वित्तविहीन, अनानुदानित महाविद्यालय, समस्त संस्थाओं के बीच दलितों से भी दलित कोटि का होता है – यह सच्चाई है। प्रशासन की नाक के नीचे सभी न्यूनतम मानकों का खुलेआम उल्लंघन होता रहता है, लेकिन शासन उसके स्थायीकरण की कार्यवाही ठण्डे बस्ते में डालता रहता है। नन्दिता ने बड़ी से बड़ी तोप से सिफारिश भिजवायी पर नतीजा शून्य रहा। ऐसे में प्रबंध तंत्र हावी रहा तो क्या आश्चर्य।"

ममता कालिया ने अपने उपन्यासों में नारी की संवेदनशीलता को दृष्टिगत रखते हुए उसके संघर्षों को दर्शाया है। ममता कालिया की रचनाओं में स्त्री के जीवन के यथार्थबोध वर्तमान परिवेश को अभिव्यक्त करते हैं। 'अंधेरे का ताला' उपन्यास की नायिका, नन्दिता कॉलेज की प्रधानाध्यापिका है। वह छात्राओं के नैतिक आचरण के प्रति विशेष ध्यान रखती है। लेखिका लिखती है – "बड़ी बहनजी हर सप्ताह शनिवार को छात्राओं को नैतिक शिक्षा की खुराक पिलाती हैं पर छात्राएँ इस व्याख्यान से कितनी शिक्षित होती हैं, इसका आकलन टेढ़ा काम है।

प्रधानाध्यापिका नन्दिता अनुशासनप्रिय होने के साथ-साथ कर्तव्यों के प्रति निष्ठावान भी है। वर्तमान शिक्षा पद्धति एवं बढ़ते अपराधीकरण की समस्याओं के प्रति चिन्तित वह आवश्यक सुधार लाने का पूर्व प्रयास करती है। छात्राओं के नैतिक आचरण की देखभाल का संकल्प कर नन्दिता अगली पीढ़ी में सुधार की अहम भूमिका निभाना चाहती है। उपन्यास के संवाद में – "रात भर इन्हीं विचारों में भटकती नन्दिता की नींद गायब हो गयी। उसे लगा, आखिर ऐसी कौन-सी शिक्षा-पद्धति काम में लायी जाय जो विद्यार्थियों को डिग्री के साथ जीवन मूल्यों से भी अलंकृत करे। यह काम नैतिक शिक्षा के नाम पर दिये गये रूखे-सूखे प्रवचनों से नहीं होना है।"

नारी कितनी ही शिक्षित एवं आधुनिक क्यों न हो किन्तु समाज में उसे नैतिक मूल्यों के प्रति निष्ठा रखते हुए उसका आचरण करना अनिवार्य माना जाता है। ममता कालिया ने अपनी रचनाओं के माध्यम से नारी के नैतिक मूल्यों को यथार्थ रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है। उनके उपन्यासों की नारी आधुनिक शिक्षित तो है किन्तु नैतिक मूल्यों का उल्लंघन कभी नहीं करती। वे अनेक संघर्षों से ग्रसित अपने स्वतंत्र अस्तित्व के प्रति जागरूक है। ममता जी के उपन्यास 'लड़कियाँ' की 'लल्ली' और 'अफशाँ' ऐसी ही नारी पात्र हैं, जो मुंबई जैसे महानगर में अपने-अपने सपने साकार करने की दृष्टि से रहती हैं। अकेलेपन तथा असुरक्षा का बोध उन्हें हर क्षण रहता है। फिर भी वे नैतिक मूल्यों के प्रति पूर्ण निष्ठावान हैं। लेखिका ने अनेक संदर्भों से उनके विविध संघर्षों को दर्शाया है, किन्तु उनमें कहीं भी अनैतिकता जैसे गुणों को अभिव्यक्त नहीं किया।

आज के पुरुष प्रधान समाज में श्रेष्ठतम् नारी की श्रेणी में उस स्त्री को रखा जाता है, जो नैतिकता, मर्यादा, शील, मातृत्व आदि सभी प्रतिमानों पर खरी होकर अपना जीवन जीने का प्रयास करती है। नारी की नैतिकता और पवित्रता बनाने के लिए दैहिकता से गूढ़ संबंध है। ममता जी ने नारी की नैतिकता को दैहिकता से जोड़ने के इस मिथक को तोड़ने का प्रयास किया है। समाज के बदलते प्रतिमानों में आज की 'नारी' नैतिकता तथा मान-सम्मान के नाम पर मानसिक जंजीरों को तोड़कर प्रतिशोध लेना चाहती है। ममता जी के कथन में – "'बेघर' में संजीवनी चुपचाप खून का घूंट पीकर रह जाती है, क्योंकि महानगरों में भी उस समय कौमार्य के मिथक से औरत इतनी मुक्त नहीं हुई थी, जितनी आज दिखाई देती है। तब नैतिक मर्यादा तोड़ना और तोड़कर स्वीकार करना असंभव था। धीरे-धीरे बाद में विवाह के वायदे पर देह संबंध बनाती लड़कियों के साथ लड़कों ने विश्वासघात किया, तो वे चुप रहने की अपेक्षा उन्हें अदालत तक खींच कर ले गई। मान-सम्मान की कीमत पर इस प्रतिरोध का भले ही कोई न्यायपूर्ण हल न मिला हो लेकिन बदनामी के भय से मुक्त होने की कोशिश तो की।"

आज भी नारी की नैतिकता पर भारतीय समाज में प्रश्नचिह्न लगा हुआ है। संजीवनी की तरह अनेक नारियाँ नैतिकता के नाम पर बलिदान देती आयी हैं। इस तथ्य को ममता कालिया ने उठाने का साहस किया है। इस पुरुष सत्तात्मक समाज में संदीप जैसे पुरुष भी हैं, जो किसी भी कीमत पर अपनी पत्नी के परपुरुष से बात तक करना सह नहीं पाते तथा अपना वर्चस्व बनाये रखना चाहते हैं, ऐसे पुरुषों को उपन्यासों में चित्रित कर ममता जी ने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है।

वर्तमान, भारतीय समाज की नारी अपने पारम्परिक बन्धनों एवं पुरानी मानसिकता को तोड़कर स्वयं समस्या के रूप में उपस्थित हैं। नारी के जीवन से जुड़ी उनकी समस्याओं को समाधान के रूप में प्रस्तुत कर साहित्यकारों ने समाज में वैचारिक जागरूकता लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। आज की नारी शिक्षित होकर अन्याय और अत्याचार के खिलाफ खड़ी है। जीवन मूल्यों में नारी भी पारस्परिक भूमिकाओं को नए दृष्टिकोण से देखा जाने लगा है, तब नये प्रश्न उभर कर सामने आने लगे हैं। परम्परागत जीवन-मूल्य वर्तमान यथार्थ के धरातल पर कितने उपयोगी रहे हैं, कितने अनुपयोगी, यह चर्चा जोर-शोर से चल निकली है। नारी ने समस्त नारी विरोधी परम्परागत मूल्यों को ठुकराना आरम्भ किया है। अपने अस्तित्व के लिये संघर्षरत नारी में घुटन, तनाव, संघर्ष, संत्रास, पीड़ा स्वाभाविक रूप से निर्मित होते हैं। नारी-व्यक्तित्व में अस्तित्व बोध प्रखर रूप में चित्रित होने लगा है। वह अब केवल बेटी, बहन, पत्नी या माँ नहीं है, उसका अस्तित्व एक स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में है।"

ममता कालिया ने संघर्षरत नारी जीवन को गहरी आत्मीयता और उन्मेष के साथ अपने उपन्यासों में चित्रित किया है। 'नारी जीवन' किसी न किसी समस्या से ग्रसित सदैव ही रहा है। वर्तमान भारत में शिक्षित नारी आर्थिक रूप से स्वावलम्बी तो हो गई किन्तु परम्परागत मूल्यों का खंडन वह पूरी तरह नहीं कर सकी, ममता जी ने अत्यंत संवेदनशीलता के साथ अपने उपन्यास में जीवन के यथार्थ को सृजनात्मक रूप से नारी अस्मिता एवं संघर्षों को दर्शाया है। 'बेघर' की संजीवनी का जीवन यथार्थ में नारी-संघर्ष की संवेदनशील गाथा है। 'कौमार्य के मिथक' पर इस पुरुष समाज में व्याप्त रूढ़ परम्पराओं पर बलि चढ़ने वाली संजीवनी घर से बेघर कर दी जाती है। नारी के शरीर को अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति समझना तथा उसके प्रति भोगवादी प्रवृत्ति तथा अमानवीय व्यवहार करना संजीवनी को मानसिक रूप से भी आघात पहुँचाता है। संजीवनी की मनःस्थिति के बारे में लेखिका के शब्दों में

व्यक्त है – "दूसरी ओर संजीवनी, खुद 'अपराध बोध' से शायद कभी मुक्त नहीं हो पाई। वह बार-बार झुँझलाती, बड़बड़ाती और उसकी नफरत भरी याद में दुर्घटना को याद करके पीली पड़ जाती। वह सोचती रही कि कल परमजीत को यह सब कह देगी, उसे समझना ही होगा कि संजीवनी के लिए यह पहला ही अनुभव था। उसके ऊपर 'आकस्मिक आक्रमण' हुआ था। वह विपिन के साथ एकांत कमरे में नहीं थी, उसने रेस्तरां के केबिन में ही उसे जबरन दबोच लिया था और खड़े-खड़े ही दुर्व्यवहार किया था। वह कह भी देती तो क्या परमजीत विश्वास करता, संजीवनी की नजर में यह अप्रिय व छोटी-सी दुर्घटना हो सकती है, लेकिन सदियों से स्थापित धार्मिक, सामाजिक, पारिवारिक और नैतिक व्यवस्था और पुरुष सत्ता द्वारा निर्धारित कानूनी मर्यादा का 'उल्लंघन' है जिसे अनदेखा कर 'क्षमा' नहीं किया जा सकता।"

संजीवनी की तरह 'दुक्खम-सुक्खम' की 'इन्दु' का जीवन भी अत्यंत संघर्षमय है। दो बेटियों को जन्म देने के पश्चात् ससुराल में इन्दु सास एवं ननदों से सदा उपेक्षित व्यवहार पाती है। इन्दु आगरा के प्रतिष्ठित घराने की सुंदर सुशील संस्कारी नारी थी। पति कविमोहन की विरह वेदना से व्याकुल इन्दु गृहस्थी के जंजाल में फँसकर अपनी बेटियों तथा परिवार के मध्य तनावग्रस्त, संघर्षशील जीवन व्यतीत करती है। उपन्यास के संवाद में – "पिछले काफी समय से इन्दु का जी उखड़ा-उखड़ा रहता था। उसे लगता जैसे वह जमुना की मझधार में फँसी है, उसके लिए न कूल है न किनारा। पति रूपी पतवार उसके हाथ से छूटी जा रही है। अल्लीपार ससुराल का जाल-जंजाल है तो पल्लीपार मायके का मृगजाल। माँ-बाप के मर जाने के बाद मायके में भाइयों की जगह भाभियों का राज था। वहाँ उसकी रसाई मुश्किल थी। ससुराल में जान-खपाई के सिवा कुछ नहीं था। वह सोचती क्या नारी के लिए तीसरी कोई जगह नहीं होती जहाँ वह जाकर अपना मन हल्का कर ले।"

अपने जीवन में हताश इन्दु की सास विद्यावती भी नारी के लिए घर-परिवार को एक किस्म का आजीवन कारावास मानती है। सीमित शिक्षा के बावजूद उसमें सहज व्यावहारिक ज्ञान था। वह चरखा समिति की सदस्य बनकर देश की स्वतन्त्रता के साथ-साथ नारी जीवन की स्वतन्त्रता की मंशा रखती है। वह मन में विचार करती है – "इस गृहस्थी में बा-मशक्कत कैद, डंडा, तनहाई जाने कौन-कौन सी सजा काट ली।"

विद्यावती के माँ-बाप ने उसके विवाह के पश्चात् उससे किनारा कर लिया था। मायका खत्म होने की सच्चाई को धीरे-से हजम कर पाई थी। लेखिका लिखती है – "विद्यावती का जैसे स्वप्न ही टूट गया। उसने सोचा था आजादी आएगी तो रामराज्य आ जाएगा, बल्कि सीता राज्य आ जाएगा। औरत को आदमी की मौत नहीं सहनी पड़ेगी। वह अपनी मर्जी की मालकिन होगी। कोई उसके हाथों किये खर्च पर नाक-भौं नहीं सिकोड़ेगा, कोई उसे बात-बात पर झिड़की नहीं लगायेगा, घर-बाहर हर जगह उसके साथ बराबरी का बर्ताव होगा। यह क्या कि आजादी के छह महीने बीत गये और औरत की जिन्दगी, वहीं ढाक के तीन पात।

'नरक-दर-नरक' उपन्यास की उषा प्रेम विवाह के पश्चात् संघर्षशील जीवन व्यतीत करती हुई सामाजिक, आर्थिक एवं मानसिक पृष्ठभूमि पर तनावग्रस्त है। उषा के जीवन की समस्या निरन्तर बढ़ती जाती है। अकेलापन और मानसिक तनावों के मध्य उषा आर्थिक रूप से भी अभावग्रस्त जीवन जीती है। बच्चे के आने के बाद वह जगन और बच्चे के मध्य स्वयं को असमंजस की स्थिति में फँसा हुआ पाती है। उषा की मनःस्थिति को उपन्यासकार ने स्पष्ट किया – "उषा को लगता, बच्चे के प्रति इतनी फिक्र सबकी एक मिली-जुली साजिश है उसे अप्रसन्न करने की। उसे एक क्षण को भी यह नहीं लगता कि वह अपना गन्तव्य पा गई है। जो हमेशा से समूची, स्वतंत्र इकाई बन जाना चाहती थी, उसे टिमटिमाती आँखों वाला एक शिशु यथार्थ पकड़ा दिया गया था, यह तुम्हारी जिम्मेदारी है। अब तक जगन ने जीवन में उसे दोस्त का दर्जा दिया था। अब उषा को लगा जगन की अपेक्षाएँ बदल गई हैं। वह अपनी किसी व्यस्तता, तनाव, परेशानी, शरारत में उसे हिस्सेदार न बनाता। इतनी बड़ी जमीन दिखाने के बाद उसने उषा को इस 12 गुणे 15 की दुनिया में नजर बन्द कर दिया था। ऊपर से उषा से यह उम्मीद की जा रही थी कि वह अपनी कैद को अभिभूत होकर भोगे और खुश रहे।"

निष्कर्ष – निष्कर्षतः ममता कालिया ने अपने उपन्यासों में चित्रित नारी पात्रों के द्वारा विभिन्न नारी-जीवन के संघर्षों को दर्शाया है।

डॉ. प्रेमशंकर शुक्ल
विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, एस.आर.पी. स्नातकोत्तर महाविद्यालय हनुमना, जिला-रीवा (म.प्र.)

समस्या पूर्ति

गिरेन्द्र सिंह भदौरिया 'प्राण'
इन्दौर

किस कारण साजन छाँह न की
स्थिति
पति साथ गयी नव दृश्य दिखा
सखि चौंक पड़ी पर आह न की
दुविधावश भूल गयी पति से
कुछ पूछ सकूँ फिर चाह न की
जब पूछ उठे पति ही तुम क्यों
अटकी मम ओर निगाह न की
वह बात बता अब प्राण अरी
तब मौन खुला परवाह न की

समस्या
फिर एक सवाल किया पति से
जब राह गयी अवगाहन की
यह जीवित आहत-सी लगती
असली मुझको तिय पाहन की
सिर ऊपर घाम चढ़ी फिर भी
पकड़े रसरी रथ वाहन की
सच प्राण कहो यह कौन खड़ी
किस कारण साजन छाँह न की

पूर्ति(उत्तर)
सुन प्रश्न जवाब दिया पति ने
वह नारी बनी प्रिय पाहन की
पकड़े कर में रसरी सजनी
रथ वाहक है पथ वाहन की
जब लू न लगे तन में तब क्या
सरदी-गरमी अवगाहन की
सिर ऊपर चुनर प्राण धरी
इस कारण साजन छाँह न की।

समीक्षा

रिश्तों की रोचक कथा

दीपक गिरकर
वैभव नगर, कनाडिया रोड, इंदौर
मोबाइल – 9425067036

कविता वर्मा के कथा-साहित्य में नारी मन, उनकी समस्याओं, नारी की अस्मिता और उनके संघर्ष का यथार्थ चित्रण स्पष्ट रूप से झलकता है। कविता वर्मा के सद्यः प्रकाशित उपन्यास "अब तो बेलि फैल गई" अब तक प्रकाशित उनके कथा-साहित्य से कथानक और घटनाओं की दृष्टि के साथ-साथ भावनात्मक धरातल पर कुछ अलग रंग लिए हुए है।

उपन्यास की कथा बहुत ही रोचक व संवेदनशील है। इस उपन्यास में अनुभूतियों की सच्चाई है। नेहा, सौंदर्या और दीपक सहाय के जीवन में घटित अनुकूलताओं और प्रतिकूलताओं तथा उनसे उत्पन्न हर्ष-विषाद के भाव को चित्रों में गूँथकर लेखिका ने उपन्यास की कथा लिखी है। 'अब तो बेलि फैल गई' मध्यम श्रेणी के परिवार के लोगों के जीवन के ताने-बाने को बुनता हुआ एक सामाजिक उपन्यास है। यह हमारे आस-पास की दुनिया है। इस उपन्यास में दिखने वाले चेहरे हमारे बहुत करीबी परिवेश के जीते-जागते चेहरे हैं। शुरुआत से ही उपन्यास पाठक को अपनी गिरफ्त में लेने लगता है। उपन्यास के केंद्र में नेहा की मुख्य भूमिका है। यह उपन्यास नेहा, राहुल, सनी, दीपक सहाय, सौंदर्या इत्यादि पात्रों के जीवन, उनके सुख-दुःख को बयां करता है। इनके अलावा इस उपन्यास में विजय, गीता, सोना, अम्मा, जीतू, नेहा के भाई और भाभी के अलावा भी कुछ चरित्र हैं, जिनकी अलग-अलग गरिमा है। उपन्यास के ये चरित्र धीमे और संजीदा अंदाज में पाठक के भीतर उतरते चले जाते हैं। उपन्यास के पात्र गढ़े हुए नहीं लगते हैं, सभी जीवंत पात्र लगते हैं। कथाकार ने बड़ी कुशलता से नेहा, राहुल, सनी, दीपक सहाय के तनाव का सृजन इस उपन्यास में किया है। जीवन के विभिन्न उतार-चढ़ावों को कथाकार ने बहुत ही सलीके से तराशा है। लेखिका ने इस कृति में एक माँ, एक पिता और एक पुत्र के अंतर्द्वंद की व्यथा को अभिव्यक्त किया है। उपन्यास में अपनों के बीच सभी चुनौतियों का सामना करते हुए साहसी नारी के रूप में नेहा का चरित्र हमारे सामने प्रखर हो उठता है। यह आत्मनिर्भर, स्वाभिमानी नारी को दर्शाने वाला बेहतरीन उपन्यास है। इस उपन्यास में कथाकार पारिवारिक मूल्यों और संवेदनाओं के प्रति पाठकों को आत्मीयता का एहसास कराती है। उपन्यास नारी मन, पुरुष मन और बच्चों के मन की पड़ताल करता है। इस कृति में स्त्री जीवन के भोगे हुए यथार्थ की कथा है। कविता वर्मा ने कथा नायिका नेहा के माध्यम से स्त्री जीवन के कटु यथार्थ का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है। कथाकार ने सनी और राहुल की आन्तरिक भावनाओं को मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास की कथा की संवेदना पाठक को मर्माहत कर देती है। कथाकार कविता वर्मा संबंधों के समीकरण को बड़े ही मनोवैज्ञानिक ढंग से सुधारकर जीवन के हर पक्ष को उद्घाटित करने का प्रयास करती है। इसमें रिश्तों की कथा है। जीवन में कुछ ऐसे रिश्ते बनते हैं जो मनुष्यता को बचा लेते हैं और बिना किसी नाम के जीवन का सहारा बन जाते हैं। पारिवारिक और खून के रिश्तों में सिर्फ दिखावा होता है। नेहा के भाई और भाभी अपनत्व और आत्मीयता का सिर्फ दिखावा करते हैं जबकि दीपक सहाय संबंधों को बिना नाम दिए नेहा के बेटे राहुल की देखरेख एक पिता के समान करते हैं और नेहा की हर उलझन, समस्या को सुलझाते हैं। दीपक सहाय कभी भी नेहा पर अपना अधिकार नहीं जताते हैं। कथाकार ने एक ओर नेहा के अदम्य जिजीविषा और संघर्षमय जीवन और दूसरी ओर दीपक सहाय के उत्तम चरित्र का अंकन किया है।

उपन्यास की भाषा और प्रवाह पाठक को सतत् जोड़े रखने में पूरी तरह सक्षम है। उपन्यास में मानवीय भावनाओं और मानसिक संघर्षों का अंतर्द्वन्द्व है। लेखिका ने नेहा के मन की भावनाओं को बखूबी व्यक्त किया है। नेहा के जीवन में आये उतार-चढ़ाव की बड़ी मार्मिक अभिव्यक्ति इस उपन्यास में हुई है। कविता जी कथा साहित्य की रचनाएँ मानवीय संबंधों को हर कोण से देखती हैं। छोटे-छोटे कुल 12 अध्यायों में बंटा यह उपन्यास कथा नायिका नेहा के भीतर की उदासी को उपन्यास के प्रारंभ में ही पाठकों के सामने रख देता है। इस उपन्यास में नेहा का मनोवैज्ञानिक पक्ष विस्तृत रूप से सामने आया है। नेहा की असीम सहन शक्ति और उसकी मानसिक उहापोह का एक-एक रंग साफ दिखाई देता है। कथाकार ने पात्रों का चरित्रांकन स्वाभाविक रूप से किया है। कथाकार ने किरदारों को पूर्ण स्वतंत्रता दी है। उपन्यास समाप्त होने तक सभी पात्रों की मित्रता पाठक से हो चुकी होती है। इस उपन्यास के पात्र अपने ही करीबी रिश्तों को परत-दर-परत बेपर्दा करते हैं।

'अब तो बेलि फैल गई' उपन्यास का शीर्षक अत्यंत सार्थक है। इस उपन्यास को पढ़ते हुए आप नेहा, राहुल, सनी, दीपक सहाय, सौंदर्या इत्यादि किरदारों से जुड़ जाते हैं। कथाकार ने परिवेश के अनुरूप भाषा और दृश्यों के साथ कथा को कुछ इस तरह बुना है कि कथा खुद आँखों के आगे साकार होते चली जाती है। कविता वर्मा ने स्त्रियों की समस्याओं को बड़ी सूक्ष्मता से चित्रित किया है। कथाकार के अनुभवों की स्पष्ट झलक इस उपन्यास में दिखती है। उपन्यास की कथा बहुत ही रोचक व संवेदनशील है। इस उपन्यास में संवेदनात्मक गहराई, रोचकता और पठनीयता सभी कुछ हैं। इस कृति में लेखिका की परिपक्वता, उनका सामाजिक सरोकार स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। उपन्यास की कहानी में प्रवाह है, अंत तक रोचकता बनी रहती है। इस कृति का अंत सकारात्मक है। कविता शर्मा का कथा साहित्य एक व्यापक बहस को आमंत्रित करता है। कविता वर्मा एक सशक्त और रोचक उपन्यास रचने के लिए बधाई की पात्र हैं।

लेखिका – कविता वर्मा

अद्विक पब्लिकेशन, 41, हसनपुर, आई.पी. एक्सटेंशन, पटपड़गंज, दिल्ली–110092

समीक्षा

जीवन के अंतर्बाह्य रचे-बसे कटु-मधुर जीवनानुभवों से निर्मित कविताएं

शिखर जैन
प्रतापनगर, जयपुर, राजस्थान,
मोबाइल – 9414373188

हाल ही में शैलेन्द्र चौहान की कविताओं का नया संग्रह चयनित कविताएं नाम से आया है। इस संग्रह की कविताओं को पढ़कर यह बात स्वतः समझी जा सकती है कि रचनाकार के सरोकारों का दायरा विस्तृत है और वैयक्तिक भावों के अलावा कवि के सामाजिक सरोकार भी बेहद पैनी और सधी भाव-भंगिमा में इन कविताओं में समाहित हैं। कविता जीवन से आत्मीयता और प्रेम को प्रकट करने वाली विधा है और इसकी कला में हृदय के भाव सघन एवं विरल समान शैली में इन दोनों ही रूपों में प्रकट होते हैं। इस दृष्टि से इस कविता संग्रह में संकलित कविताओं का अर्थ विवेचन किया जा सकता है क्योंकि इनमें कवि के जीवन के यथार्थ में उसके सुख-दुःख के साथ सिमटी अन्य तमाम बातें भी हमारे परिवेश और इसके यथार्थ से ही उपजी प्रतीत होती हैं।

इधर कभी फुर्सत मिले
मेरे घर आओ/देखो...
घर की दीवाल पर
मकबूल का चित्र
क्रंदन है जिसकी आत्मा में...
उसकी अस्मिता खो चुकी है
दरवाजों पर जड़ी
सप्तधातु की पट्टियाँ
मद्धम पड़ गई जिनकी चमक
एक पुराना पेड़
लगातार पतझड़ का ऐलान करता
हमेशा हरहराता,
रुंडमुंड खड़ा पाताली नल
यह सब/मेरा घर-द्वार
आँगन में खड़ी पत्नी
जिसके सपने दूर गगन में
उड़ती चिड़िया की तरह
मेरा हृदय रेगिस्तान...
टीन-कनस्तर,
क्रॉस, मरियम की वेदना
लगातार सोचता हूँ मैं
फ़र्क!
मेरे और दूसरों के घर का
और... घर और बेघर का

आदमी के बीच से संवेदनाएँ गायब होती जा रही हैं। रहीम ने बहुत पहले इसी संवेदना रूपी पानी को बचा लेने की बात कही थी – 'रहिमन पानी राखिए, बिन पानी सब सून।' किन्तु आज आदमी की आँखों से सारा पानी बह गया। अब किसी दूसरे का गला दूसरे के दुःख से नहीं भर्राता, दूसरे की आँखें किसी अन्य की पीड़ा से नहीं छलछलाती। कवि की तकलीफ यही है –

गाँव से क़स्बा,
क़स्बे से शहर
सिकुड़ता गया आसमान
जहाँ कुछ भी नहीं था
वहाँ था दृष्टिपर्यन्त गगन
आँखों में नीले सपने, सम्मोहक!
जहाँ कुछ था
वहाँ ठहरा हुआ था समय
और जहाँ बहुत कुछ था
वहाँ विलुप्त हो चुकी थी
ललक दृष्टि की

जीवन से सच्चे लगाव को प्रकट करती इन कविताओं में मानवमन के सरल निश्छल भावों की अभिव्यक्ति समायी है और किसी पावन स्वर की तरह से कोई जीवन राग इन कविताओं में गूँजता अभिभूत करता है। कविता में चिंतन उसके अर्थ को गहराई प्रदान करता है और इसके घेरे में ही कवि कविता में संवाद को कायम करता सामने आता है।

उत्ताल तरंगों की तरह
फैल गया है
मेरे मन पर
सराबोर हूँ मैं
उल्लसित हूँ
झाग बन उफन रहा है
जल की सतह पर
धरा के छोर पर
छोड़ गया है निशान
क्षार, कूड़ा-करकट अवांछित
यही है फेनिल यथार्थ
गुंजार और हुंकार बन
बिखर गया है तटीय क्षेत्र में
एक प्रक्रिया, एक घटना
एक टीस बन

इस संग्रह में संकलित तमाम कविताएँ अपनी अभिव्यक्ति के दायरे में जीवन की सहज अनुभूतियों और संवेदनाओं को प्रकट करती हैं और इनमें मनुष्य के मन के विविध रंगों का समावेश हुआ है।

सुबह हो चुकी है
सूरज तपने लगा है
सर पर लकड़ी का
गट्ठर लादे एक औरत
बढ़ रही है शहर की तरफ
खेतों के किनारे-किनारे
उसके नंगे पैरों के निशान
उभर रहे हैं इस विश्वास के साथ

कि कल की रोटी
उसकी मुट्ठी में है
रोटी जो सर्फ रोटी
और कुछ नहीं है
न संवेदन, न फ्रस्ट्रेशन, न उच्छवास
सब कुछ रोटी में समा गया है
जब गट्ठर की बोली लगेगी
हो सकता है लोग उसकी भी बोली लगाएं
वह कुछ नहीं समझेगी
उसकी समग्र चेतना
एकाग्र होकर लकड़ियों में सिमटी रहेगी
उससे परे जो हो रहा है
उसकी बला से

कविता में प्रकृति अपने विभिन्न रूप-रंगों से मनुष्य के मन में जीवन के अनंत रूपों की सृष्टि करती है और इसके साथ मनुष्य का निरंतर एकाकार होता जीवन उसके आत्मिक लोक को नैसर्गिक सौंदर्य से सँवारता है। प्रस्तुत संग्रह की कविताओं में प्रकृति के प्रति कवि का सच्चा अनुराग प्रकट हुआ है और इसकी नीरवता में असीम आनंद और गहन शांति से उसका मन भर उठता है –

जैसे व्याप गया हो तेज
नारंगी रंग में
और बढ़ गया हो आकार
कई गुना
धीरे-धीरे छिप रहा है सूर्य
अरावली पर्वत श्रृंखला के पीछे
शान्त आकर्षक यह रूप
होते हैं जितने तेजस्वी
अस्त होते हैं
उतनी ही गरिमा के साथ

कविता की रचना करने वाले कवि को सर्जक भी कहा जाता है और वह लोक सौंदर्य की सृष्टि से समाज और मनुष्य के मन को नया रूप-रंग प्रदान करके नवजीवन का संचार करता है। इस काव्य संग्रह की कविताओं के फलक पर उजागर होने वाली जीवनाभुतियों में संसार की सुंदरता के साथ समाज में व्याप्त विषमता और इसकी अनेकानेक विसंगतियों का चित्रण भी समान रूप से अंकित हुआ है। इसलिए काव्य चेतना की दृष्टि से इन कविताओं में व्यवस्था के प्रति आक्रोश और क्षोभ के भावों का भी प्रकटन हुआ है और अपने रचना विन्यास में कवि ने यथार्थ के अनेक लक्षित प्रसंगों को कथ्य के रूप में उठाया है। मानवीय धरातल पर कवि ने धर्म-जाति और वर्ग के ताने-बाने में आदमी के अमानवीय उत्पीड़न-शोषण और दमन के अनेक प्रसंगों को उजागर किया है और वह हर जगह संघर्षरत मनुष्य के साथ प्रतिबद्धता से खड़ा दिखायी देता है। उसके गहन प्रेमपूर्ण आत्मालाप में जीवन के समस्त पाखंड और झूठ-सच के उजाले में जीवन की व्यर्थ बातों की तरह से निरर्थक महसूस होते हैं। कवि अपनी कल्पना के क्षितिज पर इस प्रकार जीवन यथार्थ के दोनों सकारात्मक और नकारात्मक पक्ष पर चिंतन करता अपनी रचना यात्रा में सार्थक दिशा की ओर प्रवृत्त होता सामने आता है।

यदि बड़ी उर्वर जमीन थी वह
युगों तक
तब आज रेगिस्तान यह
रेंगता सा
कहाँ से आया?

शैलेन्द्र जी की कविताओं में जीवन का अंतर्बाह्य यथार्थ उनके मन-प्राण के भीतर-बाहर रचे-बसे उनके इसी कटु-मधुर जीवनानुभवों से निर्मित होता है और इनमें कवि काफी सहजता से सरस्वती की वंदना करता हुआ माँ के प्रेम स्नेह ममता की छाँव में उसको जीवन का कर्ज चुकाने की चाहत से उत्कंठित समाज में औरतों की नयी-पुरानी जिंदगी के बारे में सोचता, डर और भय से घिरती मौजूदा दुनिया में आम आदमी के रोजमर्रा के जीवन-संघर्ष के साथ सुबह और शाम की आवाजाही में इन कविताओं के भीतर जीवन के यथार्थ को समेटने की कोशिश से घिरा दिखायी देता है।

चरागाह सूखा है
निश्चिंत हैं हाकिम-हुक्काम
नियति मान
चुप हैं चरवाहे
मेघ नहीं घिरे
बरखा आई, गई
पशु विवश हैं
मुँह मारने को
किसी खड़ी फसल में
हँस रहे हैं आकाश में
इन्द्र देव

यहाँ वह राजनीति के जनविरोधी छल-छद्म के अलावा आतंकवाद के रूप में हिंसा की अमानवीय वारदातों के बीच नफरत और भ्रष्टाचार के दलदल में फँसे देश को जानने-पहचानने की जद्दोजहद से भी गुजरता दिखायी देता है।

बहुत लोग गेहूँ की रोटी खाते हैं
चावल खाते हैं
कुछ ज्वार बाजरा मक्का भी खाते हैं
दलहन तिलहन सब्जी और फल खाते हैं
उनके विभिन्न उत्पाद और व्यंजन जिह्वा का स्वाद बढ़ाते हैं
खाते सभी हैं गरीब हों अमीर हों या मध्यवर्गीय
कोई भूखा नहीं रहना चाहता
और जो भूखा होता है वह खाना चाहता है
उसकी सबसे बड़ी चाहत होती है अन्न

कवि कुछ कविताओं में खास चुटीले और तीक्ष्ण अंदाज में कथ्य को प्रकट करने में सफल रहा है। इनको पढ़ते हुए ऐसा लगता है मानो कविता में कोई किस्सागोई कर रहा हो। इस प्रकार इनमें स्वभावतः पात्र-परिवेश-घटना और संवाद के आस-पास समाज की अनेक छोटी-बड़ी सच्चाइयों को समेटकर कविता रचता दिखायी देता है। इस प्रकार अभिव्यक्ति के निकष पर इस संग्रह की कविताओं की विषयवस्तु के बारे में यह कहा जा सकता है। इनको छोटे कैनवास की सार्थक कविता के रूप में भी देखा जा सकता है और इसकी रचना प्रक्रिया में अवलोकन और अनुभूति के अलावा स्मृति की भी एक सार्थक भूमिका है।

चयनित कविताएं, शैलेन्द्र चौहान, न्यूवर्ल्ड पब्लिकेशन, दिल्ली

समीक्षा

अपने–अपने देवधर : एक समग्र आकलन

परिधि शर्मा
द्वारा/ रमेश शर्मा, 92, श्रीकुंज,
बोईदादर, रायगढ़, छत्तीसगढ़

बुक्स क्लिनिक द्वारा सद्यः प्रकाशित ग्रंथ 'अपने-अपने देवधर' हिन्दी और छत्तीसगढ़ी के वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. देवधर महंत के बहुआयामी व्यक्तित्व एवं कृतित्व का तटस्थ भाव से किया गया एक सार्थक मूल्यांकन है। डा. देवधर महंत की रचनाधर्मिता की विस्तृत रूप से पड़ताल करने वाली इस महत्वपूर्ण कृति की प्रस्तुति का श्रेय संपादक बसंत राघव को जाता है। बसंत राघव एक अच्छे लेखक भी हैं जिन्हें लेखन की कला अपने पिता प्रसिद्ध साहित्यकार डॉ. बलदेव से विरासत में मिली है।

इस संकलन में व्यक्तित्व खंड में डॉ. जगमोहन मिश्र, शिवशंकर पटनायक, डॉ. बलदेव, रमेश अनुपम, लक्ष्मीनारायण पयोधि, डॉ. महेन्द्र कुमार ठाकुर, डॉ. अजय पाठक, रामेश्वर वैष्णव, मीर अली 'मीर', रामेश्वर शर्मा, डॉ. माणिक विश्वकर्मा 'नवरंग', प्रो. बांकेबिहारी शुक्ल, प्रो. भूपेन्द्र पटेल, प्रो. राजकुमार राठौर, डॉ. सोमनाथ यादव, डॉ. मंतराम यादव, महेश श्रीवास, डॉ. जे.आर. सोनी, सरला शर्मा, डॉ. शालिनी श्रीवास्तव, शशि दुबे, संतोषी श्रद्धा, डॉ. वंदना जायसवाल के मार्मिक एवं हृदयस्पर्शी आलेख शामिल हैं। वहीं संत बालक भगवान, डॉ. बलराम एवं राजेश चौहान की भावपूर्ण काव्यात्मक प्रस्तुति भी मौजूद है।

कृतित्व खंड में डॉ. चित्तरंजन कर, डॉ. बिहारीलाल साहू, डॉ. विनय कुमार पाठक, डॉ. भागीरथ बड़ोले, श्रीकृष्ण कुमार त्रिवेदी, नर्मदा प्रसाद मिश्र 'नरम', डॉ. बलराम, डॉ. उमाकांत मिश्र, डॉ. सुधीर शर्मा, डॉ. हेमचंद्र पांडेय, डॉ. गंगाधर पटेल 'पुष्कर', रजत कृष्ण, रमेश शर्मा, तिलक पटेल, डुमनलाल ध्रुव, निर्मल आनंद, प्रमोद सोनवानी 'पुष्प', डॉ. अनिल भतपहरी, पोखनलाल जायसवाल, डॉ. साधना कसार, मंगला देवरस इत्यादि महत्वपूर्ण लेखकों की आलोचकीय दृष्टि संपन्न आलेख भी ध्यान खींचते हैं।

देवधर महंत के छत्तीसगढ़ी सृजन पर डॉ. विनय कुमार पाठक, डॉ. सालिकराम अग्रवाल, डॉ. फूलदास महंत, उमेश शर्मा, रामेश्वर शर्मा, निर्मल आनंद के सूक्ष्म अवलोकन आलेख के रूप में संयोजित हैं।

साक्षात्कार खंड में दिनेश ठाकुर, ऋतु राघव और सृजन महंत द्वारा डॉ. देवधर महंत से लिए गए जीवंत साक्षात्कार का संग्रहण भी उल्लेखनीय है।

बानगी के तौर पर डॉ. देवधर महंत की कहानी 'मोड़ पर' तथा कुछ गीत-गजल, मुक्तक, दोहे इत्यादि भी पुनर्पाठ के रूप में पाठकों के लिए प्रस्तुत किए गए हैं जो एक अच्छा प्रयास है। डॉ. देवधर महंत के लेखकीय जीवन से जुड़ी सत्रवार यात्राएं एवं उनके अविस्मरणीय काव्य-पाठ संस्मरणों को भी खूबसूरती से सिलसिलेवार किताब में जगह दी गयी है।

इस कृति की एक और विशेषता है, डॉ. देवधर महंत को लिखे गए विभिन्न साहित्यकारों के उल्लेखनीय पत्रों का दुर्लभ संचयन। इस संचयन में छायावाद प्रवर्तक मुकुटधर पांडेय, डॉ. शिवमंगल सिंह सुमन, कमलेश्वर, डॉ. धर्मवीर भारती, डॉ. हरदेव बाहरी, स्वराज्य प्रसाद त्रिवेदी, लतीफ घोंघी, सूर्यबाला, डॉ. कुंतल गोयल, इंदिरा राय, जया जादवानी, डा. स्नेह मोहनीश, स्वदेश दीपक, बालकवि बैरागी, भारत-भूषण, चंद्रसेन विराट, माणिक वर्मा, बलवीर सिंह 'करुण', द्वारिका प्रसाद तिवारी 'विप्र', श्यामलाल चतुर्वेदी, नारायण लाल परमार, डॉ. बलदेव, हरि ठाकुर, दानेश्वर शर्मा, प्रदीप चौबे, सुरेश उपाध्याय, विनीत चौहान, डॉ. विष्णु सक्सेना, प्रकाश प्रलय, रामप्रताप सिंह विमल, परितोष चक्रवर्ती, ओमप्रकाश वाल्मीकि, डॉ. शरण कुमार लिंबाले, विभु खरे, सतीश जायसवाल, कुमार प्रशांत, कृष्णकांत एकलव्य, डॉ. रमेशचन्द्र महरोत्रा, डॉ. बालेन्दु शेखर तिवारी, डॉ. प्रेमशंकर, डॉ. गणेश खरे, डॉ. सुरेश चन्द्र शुक्ल 'चंद्र', ललित सुरजन, रमेश नैयर, सोमदेव, डॉ. जगमोहन मिश्र, डॉ. चित्तरंजन कर, डॉ. हर्षवर्धन तिवारी, डॉ. अरुण कुमार सेन, डॉ. रामलाल कश्यप, श्रीकृष्ण कुमार त्रिवेदी, अशोक झा, नरेंद्र श्रीवास्तव, विद्याभूषण मिश्र, दानेश्वर शर्मा, रविशंकर शुक्ल, मुन्नीलाल कटकवार, डॉ. विमल कुमार पाठक, लक्ष्मण मस्तुरिया, रामेश्वर वैष्णव, मुकुंद कौशल, डॉ. अजय पाठक, गिरीश पंकज, विनोद साव, महेश अनघ, जहीर कुरैशी, बबन प्रसाद मिश्र, आलोक प्रकाश पुतुल, कमलेश भारतीय, कैलाश चंद्र पंत, डॉ. विष्णु सिंह ठाकुर, गजेन्द्र तिवारी, त्रिभुवन पांडेय, डॉ. महेन्द्र कुमार ठाकुर, भास्कर चौधरी, माया वर्मा, संतोष झांझी, डॉ. साधना कसार, डॉ. भारती खुबालकर, डॉ. किरण जैन, डॉ. दमयंती ठाकुर, मीना मंजुल, आशा झा प्रभृति के दुर्लभ पत्र शामिल हैं। किताब में पत्र-साहित्य की प्रस्तुति के माध्यम से लेखक की भीतरी दुनिया तक पहुँचने का एक सुगम रास्ता पाठकों के हाथ लगता है।

अंत में कतिपय महत्वपूर्ण एवं दुर्लभ छायाचित्र प्रदर्शित हैं।

इस कृति के अवलोकन से डॉ. देवधर महंत के बारे में विस्तार से जानकारी मिलती है। डॉ. देवधर महंत 68 वसंत देख चुके हैं। पत्रकारिता, अध्यापन उसके उपरांत 35 वर्षों के राजस्व अधिकारी के रूप में सेवा का प्रदीर्घ अनुभव उनकी झोली में है। वे छात्र संघ के अध्यक्ष भी रहे। बहुत कम लोगों को पता होगा कि 19 अप्रैल 1977 को बिलासपुर में यूनिवर्सिटी की स्थापना तथा वेस्टर्न कोलफील्ड्स लिमिटेड के मुख्यालय की मांग को लेकर जे.पी. की तर्ज पर मौन जुलूस निकालने का दुर्लभ कार्य भी महंत जी ने कर दिखाया था जिसकी जानकारी किताब के माध्यम से मिलती है। मजदूर और किसान संगठनों से भी उनका जुड़ाव रहा है। नौकरी के दौरान कार्मिक तथा साहित्यिक एवं शैक्षणिक संगठनों की स्थापना में उन्होंने अपनी भूमिका भी निभाई।

जहां तक महंत जी की साहित्यिक यात्रा का प्रश्न है, इस ग्रंथ से ज्ञात होता है कि उनकी स्वरचित, संपादित 15 कृतियां प्रकाशित हुई हैं। उनकी पहली कृति छत्तीसगढ़ी गीत संग्रह 'बेलपान' 1974 में छपी। 2024 में बेलपान के प्रकाशन वर्ष की अर्द्धशती हो गई। उसी वर्ष 1974 में ही इन्होंने अंतर्देशीय पत्र में मिनी कविताओं की मासिकी 'प्रेरणा' का प्रकाशन शुरु किया। उस समय महंत जी फर्स्ट ईयर के छात्र थे। वर्तमान में वार्षिकी 'समन्वय' का संपादन भी वे कर रहे हैं। आकाशवाणी एवम् दूरदर्शन से भी उनकी रचनाओं का प्रसारण होता रहा है।

उनकी लंबी कालजयी छत्तीसगढ़ी कविता 'अरपा नदिया' पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय के एम.ए.(छत्तीसगढ़ी) के पाठ्यक्रम में सम्मिलित है।

अपने जीवन की दूसरी पारी में डॉ. महंत हाईकोर्ट में वकालत करते हुए 'रिटायर्ड बट नॉट टायर्ड' जैसी उक्ति को भी चरितार्थ कर रहे हैं।

'अपने-अपने देवधर' अपने ढंग की एक अनूठी कृति है जिसमें किसी लेखक के रचनात्मक और सामाजिक जीवन को विभिन्न आयामों से देखने की कोशिश हुई है। इस कोशिश से बसंत राघव के संपादन कौशल का परिचय पाठकों को मिलता है। यह कृति साहित्य के अध्येताओं- शोधार्थियों के लिए आगे चलकर उपयोगी सिद्ध होगी। इस किताब से गुजरना एक अच्छे अनुभव से गुजरने जैसा अनुभव दे सकता है। लेखक और संपादक दोनों को बधाई।

पुस्तक–'अपने-अपने देवधर', प्रकाशक–बुक्स क्लिनिक, संपादक–बसंत राघव

समीक्षा

वंचित वर्गों का दर्द बयां करता 'घरों को ढोते लोग'

नृपेन्द्र अभिषेक नृप

साहित्य में लघु कथाओं का महत्व इस बात में है कि वे कम शब्दों में गहरी संवेदनाओं और विचारों को व्यक्त करने में सक्षम होती हैं। लघुकथा का यह गुण सुरेश सौरभ द्वारा संपादित संग्रह 'घरों को ढोते लोग' में बखूबी देखने को मिलता है। यह संग्रह समाज के उन हाशिए पर खड़े लोगों की कहानियों को सामने लाता है, जिनकी उपस्थिति हमारे जीवन में तो निरंतर होती है, लेकिन जिनके संघर्ष और जीवन की कठिनाइयों पर हम अक्सर ध्यान नहीं देते। यह संग्रह 65 लघुकथाओं की 71 लघुकथाओं का संकलन है, जो मजदूरों, किसानों, कामकाजी महिलाओं, और समाज के मेहनतकश तबकों की जिन्दगी को मार्मिकता से उकेरता है।

संग्रह का केंद्रीय विषय समाज के मेहनतकश वर्ग का जीवन और संघर्ष है। इन लघुकथाओं में दैनिक जीवन की कठिनाइयों, आर्थिक संकट, सामाजिक असमानता, और मेहनत के बावजूद मिलने वाली तिरस्कारपूर्ण दृष्टि को प्रभावशाली तरीके से प्रस्तुत किया गया है। ये कहानियाँ उन लोगों की हैं, जो हमारे घरों, फैक्ट्रियों, खेतों और सड़कों पर काम करके समाज को सुचारू रूप से चलाते हैं, लेकिन जिनके खुद के जीवन में शांति और सम्मान की कमी होती है।

इन लघुकथाओं में ऐसी कहानियों को पेश किया गया है, जो हमें सोचने को मजबूर करती हैं कि समाज में किस तरह से असमानता व्याप्त है। उदाहरणस्वरूप, एक कहानी में एक घरेलू कामगार की रोजमर्रा की जिंदगी को दिखाया गया है, जिसमें उसकी कड़ी मेहनत के बावजूद उसे उचित सम्मान और वेतन नहीं मिलता। वहीं, दूसरी कहानी में एक किसान के संघर्ष को दिखाया गया है, जो अपने परिवार का पेट पालने के लिए दिन-रात मेहनत करता है, लेकिन बाजार की बेरहम व्यवस्था उसकी मेहनत को नकार देती है।

'घरों को ढोते लोग' भावनात्मक रूप से अत्यधिक संवेदनशील और उद्वेलित करने वाला संग्रह है। प्रत्येक लघुकथा समाज की उस सच्चाई को उजागर करती है, जिसे हम नजरअंदाज करते हैं। यह संग्रह हमारे समाज की उन कमजोरियों और विसंगतियों को भी दिखाता है, जो हमें आत्ममंथन करने पर विवश करती हैं। हर कहानी में एक ऐसी पीड़ा और संघर्ष छिपा है, जो पाठक को उन लोगों के जीवन के साथ एक गहरे स्तर पर जुड़ने का अवसर प्रदान करती है।

इस संग्रह की एक और महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें मेहनतकश वर्ग की इच्छाओं, सपनों और मानवीय संवेदनाओं को भी प्रमुखता दी गई है। ये कहानियाँ केवल कठिनाइयों और दुःखों का चित्रण नहीं करतीं, बल्कि यह भी दिखाती हैं कि किस प्रकार ये लोग अपने सपनों को जीने के लिए लगातार संघर्ष करते रहते हैं।

संग्रह की भाषा सरल और सहज है, जो हर पाठक के लिए सुलभ है। लघुकथाकारों ने जटिल सामाजिक और आर्थिक मुद्दों को आसान और मार्मिक भाषा में प्रस्तुत किया है। उनकी भाषा में सादगी के साथ-साथ एक गहरा प्रभाव भी है, जो पाठक को कथाओं से जोड़ता है। सरल शब्दों के माध्यम से गहरी भावनाओं और विचारों को व्यक्त करना एक चुनौतीपूर्ण कार्य होता है, और इस संग्रह में यह बखूबी किया गया है।

लघुकथाओं का उद्देश्य केवल मनोरंजन नहीं है, बल्कि यह हमारे समाज में व्याप्त असमानता और अन्याय की ओर ध्यान आकर्षित करता है। भाषा की सहजता और कथाओं की गहराई इसे एक ऐसा संग्रह बनाती है, जिसे पढ़ने के बाद पाठक सोचने पर मजबूर हो जाता है।

सुरेश सौरभ ने इस संग्रह को संपादित करके साहित्य की दुनिया में एक महत्वपूर्ण योगदान किया है। उन्होंने न केवल एक विविधतापूर्ण लघुकथा संग्रह प्रस्तुत किया है, बल्कि उन आवाजों को मंच प्रदान किया है, जो अक्सर साहित्य में उपेक्षित रहती हैं। यह संग्रह एक प्रयास है उन मेहनतकश लोगों की जिन्दगी को सम्मान और पहचान दिलाने का, जो समाज की रीढ़ होते हुए भी अक्सर अनदेखे रह जाते हैं।

संपादक की दृष्टि और उनकी साहित्यिक समझ के कारण यह संग्रह एक बेहतरीन दस्तावेज बन पाया है। उन्होंने समाज के उस वर्ग की आवाज को साहित्य में स्थान दिलाया है, जिसे अक्सर अनसुना कर दिया जाता है। यह न केवल एक साहित्यिक कृति है, बल्कि एक सामाजिक दस्तावेज भी है, जो हमारे समाज की वास्तविकताओं को प्रतिबिंबित करता है।

इस संग्रह की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि यह समाज में संवेदनशीलता और जागरूकता को बढ़ावा देता है। यह उन कहानियों को प्रस्तुत करता है, जिन्हें सुनने और समझने की आवश्यकता है। संग्रह की लघुकथाएं हमें यह सोचने पर मजबूर करती हैं कि हम अपने समाज के कमजोर तबकों के प्रति कितने उदासीन हो गए हैं। यह संग्रह हमारे समाज के उस वर्ग के लिए एक आवाज बनकर उभरता है, जो बिना किसी शिकायत के अपने जीवन की कठिनाइयों को झेलता रहता है।

पाठक को यह संग्रह केवल मनोरंजन के लिए नहीं पढ़ना चाहिए, बल्कि इसे एक आईने के रूप में देखना चाहिए, जो हमारे समाज की सच्चाई को उजागर करता है। यह संग्रह हमें यह सोचने पर मजबूर करता है कि अगर हम एक समानता और सम्मान से भरा समाज चाहते हैं, तो हमें इन मेहनतकश लोगों के संघर्षों और उनकी जरूरतों को समझने और उन्हें सम्मान देने की आवश्यकता है।

'घरों को ढोते लोग' एक ऐसा संग्रह है, जो न केवल साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है, बल्कि सामाजिक दृष्टि से भी अत्यंत मूल्यवान है। यह हमें हमारे चारों ओर की दुनिया को समझने और उसे बेहतर बनाने के लिए प्रेरित करता है। इस संग्रह की लघुकथाएं न केवल मेहनतकश वर्ग के संघर्षों को उजागर करती हैं, बल्कि यह भी दिखाती हैं कि उनके जीवन में कितना साहस, धैर्य और मानवीयता है।

सुरेश सौरभ ने इस संग्रह के माध्यम से एक ऐसा साहित्यिक योगदान किया है, जो लंबे समय तक पाठकों के दिलों में बसेगा। यह संग्रह न केवल एक किताब है, बल्कि यह समाज के प्रति हमारी जिम्मेदारियों और हमारी उदासीनता का आईना है। 'घरों को ढोते लोग' एक ऐसा साहित्यिक प्रयास है, जिसे न केवल पढ़ा जाना चाहिए, बल्कि इस पर गहन चिंतन भी किया जाना चाहिए।

पुस्तक–घरों को ढोते लोग, संपादक–सुरेश सौरभ, प्रकाशन–समृद्ध प्रकाशन, दिल्ली

समीक्षा

संवेदना ही कविता का मूल है

शैलेन्द्र चौहान
34/242, सेक्टर–3, प्रतापनगर,
जयपुर–302033

'प्रसंग' का कविता महाविशेषांक बहुत दिनों से आया है लेकिन इसे ठीक से पलट भी नहीं सका, इसलिए कुछ कहने से रुका रहा। दो-एक दिनों में कुछ रचनाएं पढ़ी हैं। गद्य खंड पहले पलटा, उसमें भी आलेख सबसे पहले देखे। चूँकि अंक बड़ा है इसलिए समय लगा। इसकी तैयारी में आदरणीय शंभु बादल जी ने डेढ़-दो वर्ष का यथेष्ट समय और श्रम लगाया जिसका प्रतिफल है यह विशद अंक। शंभु बादल जी से संभवतः मेरी कभी प्रत्यक्ष भेंट नहीं हुई लेकिन 'धरती' और 'प्रसंग' के परस्पर विनिमय के कारण सन् 1981 से लेखकीय परिचय रहा है। प्रसंग का दूसरा अंक भी कवितांक था। उन्होंने तब भी मेरी कविता बुलाई थी और इस बार भी कोई डेढ़ वर्ष पहले कविताएं भेजने के लिए उनका फोन आया था। बीच में भी प्रसंग में मैं शामिल रहा हूँ। उनकी आत्मीयता सदैव रही है। खैर, बात इस अंक की कि क्यों यह विशेषांक और उसमें क्या विशेष है। तो अपने संपादकीय में यह स्पष्ट किया है कि इक्कीसवीं सदी में विशेषकर तीसरे दशक में उपभोक्तावाद, आर्थिक समानता, लूट, शोषण, भ्रष्ट आचरण से सामान्य मनुष्यों के जीवन में कठिनाइयां और जटिलताएं बढ़ी हैं। महाविपत्ति कोरोना ने इसमें जले पर नमक का काम किया। पूंजीवादी दुष्टता, संवेदनहीनता यहाँ चरम पर दिखी। सूचना प्रौद्योगिकी का कमाल और धमाल दोनों दिख रहा है। ऐसी स्थितियों में कविता शायद मरहम का काम कर सके। उनके विचार से कविता संवेदना का रूप है। संवेदनशीलता से कविता जन्मशती है। अतः कविता का मूल भाव संवेदना ही है। अब बात रचनाओं की। संक्षेप में ही कहूंगा। सभी रचनाओं पर बात करना बहुत मुश्किल है लेकिन प्रथमदृष्ट्या एक पाठकीय टिप्पणी आवश्यक लगी।

रविभूषण जी का आलेख 'वर्तमान समय के साथ कविता पर कुछ बातें' पढ़ गया। यह बात अच्छी है कि वे वर्तमान समय का विश्लेषण सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनैतिक संदर्भों में करते हैं। अच्छा है उनका जोर वर्तमान समय पर रहता है, अतीत पर नहीं। लेकिन इतिहास से कोई नजर कैसे चुरा सकता है। साहित्य और कविता का भी जो निकट इतिहास है वह तो आज के संदर्भों में देखा ही जायेगा और उसके संदर्भों में आज की रचनाशीलता की तुलना की जायेगी। प्रासंगिकता की परख भी की जायेगी। वह लिखते हैं कि – स्वाधीन भारत में और वह भी नेहरू के कार्यकाल में मुक्तिबोध ने क्यों लिखा – मर गया देश, अरे जीवित रह गये तुम। 'देश' मात्र एक शब्द नहीं है। वह भूगोल भी नहीं है। वह नागार्जुन की कविता 'स्वदेशी शासक' का उदाहरण पेश करते हैं और कहते हैं पचास साल बाद मंगलेश ने 'हमारे शासक' कविता लिखी। रविभूषण जी की चिंता यह है कि आज के कवि इस बात में उदासीन हैं। कुछ हद तक यह ठीक है। अगर मैं पूछूँ कि निराला, मुक्तिबोध, नागार्जुन, धूमिल, शील, शलभ, गोरख पांडेय, रघुवीर सहाय, दुष्यंत कुमार आदि के समय में भी कितने कवियों की मुख्य चिंता देश और देश की जनता रही और बाद में आठवें-नौवें दशक में कितनों की नहीं रही। जब मंगलेश का जिक्र किया तो रविभूषण जी यह अनदेखा कैसे कर सकते हैं कि उनके अधिकांश समकालीनों की मुख्य चिंता वही थी। वह भी एक दौर था। जुनून और उत्साह था। जब हम बहुत सिलेक्टिव हो जाते हैं तब हमारी दृष्टि सुरंगवत एवं संकीर्ण होने लगती है। मैं आदरणीय रविभूषण जी के साहित्यिक ज्ञान को चुनौती देने का दुस्साहस नहीं कर सकता। वे विद्वान हैं। उन्होंने विधिवत् और पद्धतिपूर्ण तरीके से साहित्य की शिक्षा प्राप्त की है। अध्यापन किया है और अनेक लोगों को ज्ञानसंपन्न किया है। मैं तो बस अपनी अल्पबुद्धि से, अपनी सोच और संवेदना से ही कुछ कह सकता हूँ। यह आलेख बड़ा है। आज की कविता की प्रवृत्तियों और विशेषताओं को चुनिंदा नामों के परिप्रेक्ष्य में विश्लेषित किया है। उसका आकलन किया है। अच्छा है लंबी सूची नहीं दी है वरना इधर सूची और उद्धरण से ही आलोचना संपन्न हो जाती है। निश्चित ही यह महत्वपूर्ण आलेख है। इस पर बात होनी चाहिए। इस मामले में अवधेश प्रधान भी सिलेक्टिव हैं और विजय गुप्त भी। शेष पूरक टिप्पणियां हैं।

कविता खंड क्रांतिकारी कवि वरवर राव की कविताओं के हिंदी अनुवाद से शुरू होता है। तदुपरांत वरिष्ठ कवि श्रीराम तिवारी से ही हिंदी कविताओं का आगाज होता है और केवल गोस्वामी, ध्रुवदेव मिश्र पाषाण, दिविक रमेश, राजेश जोशी, ज्ञानेन्द्रपति, अरुण कमल, अष्टभुजा शुक्ल, मदन कश्यप, रमाकांत शर्मा, जीवन सिंह आदि वरिष्ठ कवियों की कविताएं शामिल हैं। इनमें नरेन्द्र जैन और उदय प्रकाश की अनुपस्थिति कुछ रिक्ति का अहसास कराती है। मेरे समकालीन अनेक कवि मौजूद हैं। अधिसंख्य कविताओं में जन हैं, जनता है और जनपक्षधरता भी है। नाम लेना उतना जरूरी नहीं। हमारे बाद की पीढ़ी भी सजग है। वसंत सकरगाए, बोधिसत्व, शैलेय, रजत कृष्ण से लेकर संतोष चतुर्वेदी, महेश पुनेठा, कुमार मुकुल आदि तक जिनकी कविताएं अच्छी हैं। उसके बाद की पीढ़ी में भानुप्रकाश रघुवंशी, पद्मजा शर्मा, लक्ष्मीकांत मुकुल, सुशील स्वतंत्र, अनुज लुगुन, कविता कृष्णपल्लवी की कविताएं प्रभावी हैं। झारखंड और लगे हुए बिहार के कई युवा कवियों की उपस्थिति सराहनीय है। कहा जा सकता है कि सभी पीढ़ियों के कवियों को सदाशयता और सम्मान तथा लोकतांत्रिक सोच के तहत समाहित किया गया है। कोई कट्टरता नहीं, पूर्वाग्रह नहीं। यह अच्छा है। अंक कैसा बन पड़ा है यह तो सबकी अपनी राय होगी। सबको अपनी राय रखने का हक है और रखनी भी चाहिए, लेकिन यह काम महत्वपूर्ण है यह तय है। सभी रचनाकारों और पाठकों को बहुत-बहुत शुभकामनाएं।

संपादक-शम्भु बादल, 'प्रसंग' कविता संग्रह

समीक्षा

मानवीय संबंधों की सूक्ष्मता से पड़ताल करती पुस्तक : अब और नहीं

संजीव जायसवाल 'संजय'
सी-5300, सेक्टर-12, राजाजीपुरम्,
लखनऊ, मोबाइल– 7318213943

वीणा सिंह का कहानी संग्रह 'अब और नहीं' उनकी साहित्यिक यात्रा का एक महत्वपूर्ण मोड़ साबित होता है। जहाँ पहले उनकी पहचान एक व्यंग्यकार के रूप में रही है, वहीं इस संग्रह में उन्होंने गंभीरता से भरी कहानियों के माध्यम से एक सशक्त कहानीकार के रूप में अपनी जगह बनाई है। इन कहानियों में समाज और मानवीय संबंधों की गहरी पड़ताल की गई है, जो पाठकों को बहुत कुछ सोचने पर मजबूर करती है।

संग्रह की कहानी 'वह एक बदनाम औरत' एक गरीब मजदूर और बदनाम औरत के चारित्रिक संघर्ष और गरिमा को दर्शाती है। यह कहानी सामाजिक मान्यताओं और चरित्र पर उठते सवालों के बीच उसकी आत्मसम्मान की लड़ाई को उजागर करती है। वीणा सिंह ने इस कहानी के माध्यम से समाज के दोगलेपन और एक महिला की आंतरिक शक्ति को सशक्त ढंग से प्रस्तुत किया है। कहानी 'विश्वासघात' पारिवारिक संबंधों के जटिल ताने-बाने में गहराई से उतरती है। एक पतिव्रता स्त्री की हृदयस्पर्शी कहानी है जिसे अपने पति की मृत्यु के पश्चात् यह कड़वी सच्चाई पता लगती है कि उसका पति किसी दूसरी महिला से अनैतिक संबंध में था। यह कहानी रिश्तों की आंतरिक जटिलताओं और एक स्त्री के विश्वास पर गहरी चोट करती है, जो पाठकों को भावनात्मक रूप से झकझोर देती है। संग्रह की कहानी शीर्षक 'अब और नहीं' मानवीय संबंधों की परिभाषा के स्याह और सफेद पक्षों को उजागर करती है। इसमें एक पति द्वारा अपनी पत्नी पर किए गए अत्याचारों का वर्णन है, जो केवल तब उसे समझ आता है जब पत्नी विद्रोह कर उससे दूर हो जाती है। यह कहानी अत्याचार सहने और उससे मुक्त होने के साहस के संदेश को बखूबी संप्रेषित करती है। 'एक दिन का पति' एक ऐसी कहानी है जो पारंपरिक रिश्तों के दायरे से बाहर निकलकर आधुनिकता की चादर ओढ़े संबंधों की पड़ताल करती है। इसमें रिश्तों को नए दृष्टिकोण से देखा गया है, जो पाठकों को यह सोचने पर मजबूर करता है कि आधुनिक जीवनशैली में संबंधों का मूल्यांकन किस प्रकार से किया जाता है।

संग्रह की अन्य कहानियाँ भी समाज में घटित हो रही घटनाओं से प्रेरणा लेकर लिखी गई हैं। ये कहानियाँ केवल मनोरंजन नहीं करतीं, बल्कि समाज की वास्तविकता को बहुत ही सूक्ष्म दृष्टि से उजागर करती हैं। वीणा सिंह की लेखनी में एक विशेष गहराई है, जो पाठक को हर कहानी के साथ जोड़े रखती है। उनकी भाषा में प्रवाह और शैली में सहजता है, जो इस संग्रह को पठनीय और प्रभावशाली बनाती है। 'अब और नहीं' कहानी संग्रह में वीणा सिंह का सशक्त लेखन और सामाजिक मुद्दों की गहरी समझ दिखाई देती है। यह संग्रह निश्चित रूप से उन्हें एक सशक्त कहानीकार के रूप में स्थापित करेगा। पुस्तक का प्रकाशन इंडियन नेटबुक्स द्वारा किया गया है और उसका कवर पेज काफी आकर्षक है। मुझे विश्वास है कि वीणा सिंह की यह पुस्तक पाठकों की अपेक्षाओं पर खरी उतरेगी। मैं इनके उज्ज्वल भविष्य की मंगलकामनाएँ करता हूँ।

वीणा सिंह

'अब और नहीं', प्रकाशक- इंडियन नेटबुक्स, दिल्ली

कविता

नेतालाल यादव
उत्क्रमित उच्च विद्यालय शहरपुरा,
जमुआ, गिरिडीह (झारखंड)

हमसे बेहतर ये पक्षी
वर्षों से, घर के सामने
देखता रहा हूँ, एक बरगद
बरगद की शाखाओं पर
आश्रित बहुत सारे पक्षी
पक्षियों के बनाए घोंसले
घोंसले में नवजात बच्चे
बड़े सुकून से रहते बच्चे
न कोई लड़ाई, न कोई खिचखिच
ऊपर से झाँककर एकटक
देखता है आदमी को
आदमी देखता है उस बच्चे को
जो बड़ा होते ही, स्वयं बना लेगा
अपना सुंदर-सा आशियाना
जी लेगा, खुद का जीवन
सीख लेगा, माता-पिता से
वे सारी रहस्य भरी बातें
कर लेगा शत्रु-मित्र की पहचान
जिसे हम वर्षों लगाते हैं
और सीखते हैं, घर का बंटवारा
खड़ा करते हैं, आँगन में दीवार
बनाते हैं, घर में ही बाघा बॉर्डर
समय-समय पर होने लगती है
सीमा उल्लंघन और लड़ाई
टकराने लगते हैं, आपस में भाई
करने लगते हैं, जग हंसाई
भूल जाते हैं, आपसी खून
रिश्तों का करते हैं खून
मरने के बाद ही, श्मशान में
होती होगी मुलाकात
जिंदा में, अहम के कारण
कहाँ बनती है कोई बात
तब बरगद के स्थायी बसेरे
सुबह-शाम, करने लगते हैं
मधुर स्वर में गान
जिसमें एक अर्थ छिपा होता है
भाई रिश्तों की पहचान।

समीक्षा

जीवन मूल्यों से प्रेरितः पग पग धूप छाँव

डॉ. विद्या केशव चिटको
सेवानिवृत्त निदेशक,
हिन्दी अनुसंधान केन्द्र, पुणे, समर्थ नगर,
नासिक, मोबाइल–9527313387

'पग पग धूप छाँव' तेरह कहानियों का संग्रह है। कहानियों में वैविध्य है। कहानियों के बारे में अपने विचार प्रस्तुत करने के पहले यह बताना चाहूँगी कि कहानी संग्रह का शीर्षक 'बोधप्रद' है जिसमें एकप्रतीकात्मकता का व्यापक अर्थ समाविष्ट है। 'पग पग धूप छाँव' यानी जीवन जीने का रास्ता सरल सुगम नहीं है। यह रास्ता तो कंटकाकीर्ण है, बीहड़ मार्ग है, ऊबड़-खाबड़ है। इस मार्ग पर चलकर अपने जीने के प्रत्येक क्षण को सुखकर, आनंदमय बनाने की आशा प्रत्येक व्यक्ति की होती है। उसके लिए वह प्रयत्नशील भी होता है। कईयों को अपना लक्ष्य गंतव्य प्राप्त होता है। वे सुखमय, आनंदमय जीवन जीते हैं, तो कईयों को जीवन जीने के मार्ग में असंख्य बाधाएँ संकट, संघर्ष चुनौतियों और नैराश्य का भी सामना करना पड़ता है। सुश्री सुनीता माहेश्वरीजी के इस संग्रह की कुछ कहानियों का कथ्य प्रकर्ष रूप में व्यंजित है, वर्णित है।

इस संग्रह की पहली 'जांबाज सैनिक' शीर्षक कहानी नायक दीपचंद की मात्र कहानी नहीं, अपितु यह कहानी एक कारगिल योद्धा की सत्याधारित कहानी है जो कारगिल युद्ध में बड़ी निपुणता एवं शौर्य के साथ लड़े किन्तु बाद में ऑपरेशन पराक्रम के दौरान स्टोर में बम अनलोडिंग करते समय हादसे में इन्हें अपना एक हाथ और दोनों पैर गंवा देने पड़े परंतु फिर भी इन्होंने उम्मीदों का, अदम्य जीवन शक्ति से आशाओं का, जीवन जीने की उद्दाम आकांक्षा का अद्वितीय आदर्श उपस्थित किया, जो आज के हताश हतबल नाउम्मीद युवाओं को प्रेरणा प्रदान करता आँख में अंजन है। यह कहानी हजार-हजार बाधाओं और संकटों का सामना करने की सीख देती जीवन्त दर्शन का पाठ सिखाती प्रेरणा स्रोत है। आज नायक दीपचन्द देवलाली सैनिक केंद्र के निवासी हैं। उन्होंने आदर्श सैनिक फाउंडेशन की स्थापना की है। आज यह संस्था दिव्यांगों और वीरांगनाओं के लिए काम कर रही है। विशेष तो यह है कि उससे भी बढ़कर उनके द्वारा किए जाते कार्य का महत्व हिमालय की ऊँचाई लिए हुए है। वह यह कि आज जहाँ समाज में स्त्री भ्रूण को नष्ट किया जाना आम बात हो गई है, वही जांबाज सैनिक नायक दीपचंद जी ने अपने जाए दो बेटे होते हुए भी एक बेटी गोद ली है और उसकी परवरिश कर रहे हैं। कन्या घर की रौनक है और उसके द्वारा ही घर की शोभा है। कन्यादान जैसा पवित्र पुण्य कर्म कोई नहीं है। राजा जनक के शब्द हैं 'पुत्री पवित्र किए कुल दोउ'। नायक दीपचन्द जी प्रभु राम के अनंत भक्त हैं। उन्होंने अपने घर में ही प्रभु राम को प्रतिस्थापित किया है। राम की अखंड शक्ति और राम की श्रद्धा ने उन्हें जीवन जीने का सुख प्रदान किया है। यह कहानी पाठक के सम्मुख जीवन जीने का आदर्श प्रस्तुत करती है।

आज मनुष्य स्वकेंद्रित हो गया है। उसने अपने ऐश-ओ-आराम, सुख-सुविधा के लिए बड़े-बड़े विशाल भवन बनाकर उनमें आनंदपूर्वक रहने की इच्छा पूर्ण करने के लिए प्रकृति, जमीन, जल का दोहन करना शुरु कर दिया है। बड़ी बेरहमी से निर्दयतापूर्वक वृक्ष काटे जा रहे हैं। जंगल नष्ट किए जा रहे हैं। वृक्षों पर बसेरा करते पक्षी तथा कीड़े-मकोड़े भक्ष्य न मिलने के कारण प्राण त्याग रहे हैं। पर्यावरण की भीषण समस्या से निपटने के लिए एक कारगर उपाय है वृक्षों का संरक्षण ताकि पर्यावरण शुद्ध बना रहे। 'एक बीमा ऐसा भी' कहानी में वीरेंद्र जी का माइक लेकर घोषणा करना कि प्रदूषण की बढ़ती समस्या एवं आज की जरूरत को देखते हुए घर-घर में नवजात शिशु के जन्मोत्सव मनाने के लिए वृक्षारोपण करना आवश्यक है जिससे हम अगली पीढ़ी को स्वच्छ वातावरण दे सकें। 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे, जे आचरहिं ते नर न घनेरे', वीरेंद्र जी ने केवल उपदेश ही नहीं दिया अपितु कार्यान्वित करके एक आदर्श स्थापित किया है।

'जीवन के रंग अनेक', 'अंधी दौड़', 'अपनी-अपनी संवेदनाएं', 'भोर का उजाला', 'जल समाधि' कहानी ऐसी है जो सघन अनुभूतियों से पूरित है। संवेदनाएँ सृजन का आधार होती हैं। संवेदना और परिवेश परम्परावलंबी हैं। एक-दूसरे के साथ-साथ चलते हैं। संवेदनाएँ मनुष्य को सामाजिक बनाते हुए सामाजिक सरोकार से जोड़ती हैं। कोई रचनाकार जब अपनी दृष्टि से संसार को देखता है, परखता है, तो गहरे भाव बोध का स्पंदन उसके भीतर हलचल पैदा करता है। जब अपनी अनुभूतियों को शब्दबद्ध करता है तो उसका सृजन-संसार प्रस्तुत होता है, जो उसकी अनुभूतियों का विस्तार होता है। जिसमें अनेक भाव समाहित होते हैं। पीड़ा, दर्द, वेदना, टीस, कसक, कचोट, जीवन की विसंगतियाँ, संवेदन शून्य होता मानव, मानव मन का द्वन्द्व, सब सृजन के केन्द्र में एकत्र होते जाते हैं – "जो घनीभूत पीड़ा थी मस्तक में स्मृति-सी छाई, दुर्दिन में आँसू बनकर वह आज बरसने आई"। अत्यंत संवेदनशील सुश्री सुनीता माहेश्वरीजी के इस संग्रह की कहानियाँ उनके मन में उठती भाव-हिलोरों का प्रत्यक्ष चित्र है। 'दर्पण कभी झूठ नहीं बोलता' का प्रत्यक्ष प्रमाण इनकी कहानियाँ हैं। सुश्री सुनीताजी मानवता के पक्षधर हैं, जिसके केन्द्र में मनुष्य और मनुष्यता से जुड़े विषय हैं, वह समाज है जो अपनी भारतीय संस्कृति, प्राचीन विचारों और जीवन मूल्यों को पीछे छोड़, उसे धता बताकर कालबाह्य घोषित करता, नकारकर नवीन अधुनातन को अपनाने के रेस में सबसे आगे निकल जाने की तैयारी में है। सुश्री सुनीताजी ने वर्तमान परिवेश और भौतिकतावादी संस्कृति के दुष्परिणामों की ओर ध्यान आकर्षित किया है।

आज विवाह और शिशु को जन्म देना खूसट विचारधारा बन गई है। जीवन मूल्यों में टूटन आ गई है। परिणामस्वरूप रिश्ते दरक रहे हैं। संवेदनशून्यता बढ़ रही है। पीड़ा, अवसाद, वेदना, मानसिक संघर्ष मन को विचलित कर रहे हैं। मन अशांत है। उद्विग्न है। आखिर मनुष्य जाये तो जाये कहाँ? इस द्वन्द्व से मुक्ति का उपाय क्या है? इस अंतर्द्वंद्व की सुन्दर अभिव्यक्ति 'जैसी करनी वैसी भरनी', 'रिश्तों की महक', 'अंधी दौड़', 'कर्मफल' कहानियों में है। एक कहावत है 'बिन पीड़ा के गीत गीत नहीं होते और खून के बिना इंसान का कोई नहीं होता।'

यह पीड़ा, वेदना, सृजन का आधार होती है। कब कोई घटना,

द्वन्द्व, मनुष्य, प्रकृति, परिवेश का कोई भी हिस्सा रचनाकार के मन को स्पर्श कर जाए और वह सृजन बिंदु का आधार बन जाए, पता ही नहीं चलता। यही सृजन प्रभावी होता है। आज परिवेश बदला है। मनुष्य की सोच बदली है। विवाह बंधन है, लिव इन रिलेशनशिप, यूज एण्ड थ्रो इन कुविचारों से मनुष्य वैश्विक परिदृश्य पर अनेक चुनौतियों का सामना कर रहा है। अनेक संकट उसके सामने मुँहबाए खड़े हैं। एकाकीपन, संघर्ष, समस्याएँ सब कुछ सामने हैं। कहानीकार जब चिंतन के स्तर पर परिवेश में व्याप्त परिवर्तन बदलाव को महसूस करता है और सामाजिक संदर्भों के साथ जुड़ता है तो उसकी सूक्ष्म पारखी दृष्टि वहाँ जाती है, जहाँ मानवता पर खतरे मंडराते हैं। जीवन मूल्यों का क्षरण उसे विचलित कर देता है और तब कहानीकार का मन "हे बंधु कहो दिनकर कैसे करे उजाला?" कह उठता है। सुश्री सुनीता माहेश्वरी कवयित्री भी हैं। उनके कवि मन की पुकार है प्रेम, स्नेह, सद्भाव, सहानुभूति, समानुभूति, समभाव। यही तो जीवनानंद का मंत्र है। उसी का जाप करो। 'पग पग धूप छाँव' कहानी संग्रह वृद्ध, युवा, बालक, स्त्री-पुरुष, उच्च वर्ग, मध्यम वर्ग, निम्न वर्ग, सवर्ण, अवर्ण सभी के मन का स्वर है।

भाषा सरल, सहज, बोधगम्य और प्रवाही है। वाक्य अनुभवों के बोल हैं, जो मन में ठस जाते हैं। निश्चित रूप से सभी कहानियाँ पाठकों के मन में अपना स्थान बनाएंगी। मैं सुश्री सुनीताजी को शुभेच्छाएँ प्रदान करती हूँ। उनकी लेखनी सदा ऊर्जावान बनी रहे। अनेक-अनेक शुभेच्छाओं के साथ –

लेखिका-सुश्री सुनीता माहेश्वरी, पुस्तक- पग पग धूप छाँव

कविताएं

राधेश्याम बन्धु
बी-3/163, यमुना विहार, दिल्ली-53,
मोबाइल–9868444666

फिर-फिर जेठ तपेगा आंगन
फिर-फिर जेठ तपेगा
आंगन, हरियल पेड़ लगाए रखना
सम्बन्धों के हरसिंगार
की शीतल छांव बचाए रखना
दूर-दूर तक सन्नाटा है
सड़कें छायाहीन हो गयीं
बस्ती-बस्ती लू से झुलसी
गलियां भी गमगीन हो गयीं
थके बटोही की
खातिर भी, मन की जुही खिलाए रखना
झुलस रही रिश्तों की टहनी
संशय की यूं उमस बढ़ी है
उड़ना भूल गयी गौरैया
घर-घर में यूं तपन बढ़ी है
पाहुन धन भी
लौट न जाए, वन्दनवार सजाए रखना
गुलमोहर की छाया में भी
तपती लू की छुरियां चलतीं
दुल्हन-सी मनचली घटाएँ
अम्मा की अरदास न सुनती
प्यासे सपने
रूठ न जाएँ, दृग का दीया जलाए रखना
फिर-फिर जेठ
तपेगा आंगन, हरियल पेड़ लगाए रखना।

धूप और चांदनी
चांदनी को
धूप में, कैसे कहूं
वह भले ही तपन का अहसास दे
हर अमा के दंश को मैं जानता हूँ
पूर्णिमा के प्यार को पहचानता हूँ
राह की हर चोट ने चलना सिखाया
दर्द का अहसान भी मैं मानता हूँ
सुबह को भी
सांझ में कैसे कहूं
वह भले ही घुटन का अहसास दे
तुम मिले तो गन्ध की चर्चा हुई
प्यार के सौगन्ध की चर्चा हुई
जो न अब तक चांदनी मेरी हुई
उसी के अनुबंध की चर्चा हुई
फूल को भी
शूल में कैसे कहूं
वह भले ही चुभन का अहसास दे
घाव को भी धैर्य से सीते रहे
दर्द को भी दवा सा पीते रहे
दोस्त भी जब अजनबी लगने लगे
चोट सहकर भी सदा जीते रहे
प्यार को भी
दुश्मनी कैसे कहूं
वह भले ही जलन का अहसास दे
चांदनी को
धूप में कैसे कहूं
वह भले ही तपन का अहसास दे?

देवेन्द्र कुमार मिश्रा
भरत नगर, चन्दन गाँव,
छिन्दवाड़ा-480001,
मोबाइल– 94254050

कर्मों का हिसाब
हिसाब जब भी होगा
कर्मों का होगा
धर्मों का नहीं होगा
कर्म ही पूजा है
कर्म ही धर्म है
और जो भी है कर्मों के अलावा
वो तुम्हारी संस्कृति, तौर-तरीके हैं
सही या गलत तुम्हारी अपनी समझ
ईश्वर को तेरे कर्म से मतलब
इतना तो समझ नासमझ
तुमने कितनी देर माला घुमाई
कितने वक्त नमाज अदाई
ये तुम्हारा हो सकता है
व्यक्तिगत मामला
ईश्वर तो देखेगा कर्मों का मसला
मन कितना साफ था
हृदय में कितना पाप था
कैसे किसके काम आए
कैसे किए करम
ईश्वर को बस वही भाएगा
जगत में भी परमार्थी ही पूजा जाता है
और हैं कहीं स्वर्ग तो
परहिती ही पाएगा
ध्यान रखना कर्मों पर
शिव के गले में पूजा जाता जो
वह दिखते ही मारा जाता है
भय से जीव-जन्तु नहीं बच पाते
तुम धर्म बचाने चले हो आते
मनुज तुम्हारा सब कुछ कर्म है
क्योंकि तुम्हारे हिस्से मात्र कर्म हैं
सुकर्म से दुष्कर्म को काटो
श्रेष्ठ है कि तुम
निष्काम ही बाँचो
कर्महीन होना असंभव है
कर्म से ही संभव है
सतत् कर्म से उद्धार होगा
श्रेष्ठत्व ही मनुष्य होने का
आधार होगा

समीक्षा

जोया देसाई कॉटेज : कहानी संग्रह

डॉ. रमाकांत वर्मा
टट्टा निवासी हाउसिंग सोसायटी,
पेस्तम सागर रोड नं. 3, चेम्बूर, मुंबई
मोबाइल– 9833443274

मंजी हुई भाषा और जबरदस्त शिल्प-विन्यास 'जोया देसाई कॉटेज' जाने-माने कथाकार, उपन्यासकार और अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका 'विभोम स्वर' के संपादक पंकज सुबीर का हाल में प्रकाशित नया कहानी संग्रह है। इस संग्रह की शुरूआत 'भूमिका', 'प्राक्कथन' या 'अपनी बात' जैसी औपचारिकता से नहीं हुई है। उन्होंने सीधे अपनी कहानियों के माध्यम से पाठकों तक पहुंचना बेहतर समझा है। यह रचना पाठक को लेकर उनके आत्मविश्वास को प्रतिबिंबित करती है।

उनका कहानी कहने का अपना अंदाज है। कहानियों के शीर्षक भी उनके इस अंदाज को बयां करते हैं। संग्रह की पहली कहानी 'स्थगित समय गुफा के वे फलाने आदमी' कोरोना काल की उस विभीषिका को सामने लाती है, जो शायद ही कहीं और उजागर हुई हो। संक्रमित हो जाने के डर से लाशों का अंतिम संस्कार करने का साहस परिवार के लोग भी नहीं कर पाते तो अन्य लोगों से कैसी अपेक्षा। इस काम को अंजाम देने के लिए चार लोग स्वैच्छिक रूप से रात-दिन जुटे रहते हैं। रात गए सेल फोन पर मदद के लिए आए उस महिला के कॉल को वे नजरअंदाज नहीं कर पाते जिसके पिता की मौत हो गई है, लाश पड़ी है और घर में उसके और उसकी माँ के अलावा और कोई नहीं है। घर का दृश्य, माँ-बेटी की स्थिति और व्यवहार, श्मशान में संस्कार के लिए लगी लाइनें, औपचारिकताएं और इस स्थिति में भी सरकारी इमदाद की चर्चा पाठक के रोंगटे खड़े कर देती है। यह कहानी पाठक के मन में ऐसी जुगुप्सा जगा जाती है जो कहानी पढ़ चुकने के बाद भी मन-मस्तिष्क में जमी रहती है।

मानसिक रोग विशेषज्ञ डॉ. संभव के पास जब मरीज राकेश कुमार को लाया गया तो उसके मुँह से 'ढोंड़ चले जै हैं काहू के संग' के अलावा और कुछ निकलता ही नहीं था। वह अपने आसपास की सारी दुनिया से कट चुका था और उक्त शब्दों के अलावा कोई दूसरी बात नहीं करता था। इस केस की जड़ में जाने के बाद उन्हें इन शब्दों का अर्थ मालूम पड़ता है, 'किसी के साथ अपने गाँव ढोंड़ चले जायेंगे।' इस मानसिक स्थिति के लिए जिम्मेदार बातों की पड़ताल करने पर सोशल मीडिया की जो भूमिका सामने आती है, वह वितृष्णा जगाने वाली है। सोशल मीडिया के हर ग्रुप में या तो गर्व के या फिर घृणा के भावों से भरी पोस्टों की भरमार होती है। ये पोस्ट सदस्यों के अपने विचारों या विचारधारा के अनुसार बहस क्या, बाकायदा युद्ध का रूप ले लेती है, विशेषकर तब जब गर्व या घृणा के लिए धर्म को विषय बनाया गया होता है। सच, आज सोशल-मीडिया पर यही सब कुछ तो हो रहा है। ऐसी बहसें दोस्तों को दुश्मन तक बनाए दे रही हैं। ये किसी भी संवेदनशील व्यक्ति की मानसिक स्थिति को कहाँ तक पहुँचा सकती हैं, इसका जबरदस्त विश्लेषण इस कहानी में हुआ है।

'डायरी में नीलकुसुम' अबोध प्रेम के उस आयाम की कहानी है जिसमें रंग-रूप, जाति-पांति सब अर्थहीन हो जाते हैं, रह जाता है बस निश्छल प्रेम। इसके उपजने का प्रत्यक्षतः कोई कारण नहीं होता। पर, अकारण प्रेम उपजता भी नहीं। "कई बार यह सहानुभूति की कोख से जन्म लेता है, क्योंकि यह असल में करुणा के विगलने से उत्पन्न होता है। कई बार अपने घर के वातावरण से घबरा कर या किसी बात से नाराज होकर हम बाहर प्रेम तलाशने लगते हैं। ऐसा प्रेम असल में एक प्रतिरोध ही होता है।" शुभ्रा की डायरी में बंद उसका प्रेम हरिया असल में वह आकाश कुसुम था, जिसे प्राप्त करना लगभग नामुमकिन था।

इस संग्रह की दो कहानियाँ 'खजुराहो' और 'जोया देसाई कॉटेज' ऐसी भाव-भूमि पर खड़ी हैं जिस पर चर्चा करना सामान्यतः वर्जित है। विवाह के बाद स्त्रियों को अपना सारा जीवन एक पुरुष के इर्द-गिर्द समेट लेना होता है चाहे उसे वह चरम सुख मिले या ना मिले जिसकी आकांक्षा हर मन, हर शरीर को होती है। बहुगामी पुरुष जहाँ अपने शारीरिक सुख के लिए इधर-उधर भटक सकता है, पर स्त्री को यह स्वतंत्रता नहीं होती। 'हर बार, एक अधूरापन छूट जाता है, ऐसा लगता है जैसे अब यही अधूरापन नियति बन चुका है। हर बार मंजिल से दो कदम दूर ही सफर समाप्त हो जाता है... तन के नासूर तो ठीक हो जाते हैं, पर मन के नासूर कहाँ तक ठीक होते हैं... प्यास बढ़ती जा रही है बहता दरिया देख कर, भागती जाती हैं लहरें यह तमाशा देख कर, क्या अजब खेल है कि हमारे आस-पास कितने ही दरिया बह रहे हैं, मगर हमसे कहा गया है कि नहीं नियम है कि तुम्हें बस एक ही दरिया से पानी पीना है।'

ये दोनों कहानियाँ सामाजिक परम्पराओं और वर्जनाओं की सारी सीमाओं को तोड़ती दिखती हैं। संदेश यही है कि जिंदगी का चरम सुख पाने के लिए किसी से भी संबंध बनाना गलत नहीं है चाहे वह उस होटल/कॉटेज का कार ड्राइवर हो या फिर मैनेजर जिसमें अतृप्त नायिकाएँ ठहरती हैं। आखिर, वे ही उस चरम सुख से क्यों वंचित रहें जो उनका अधिकार है। इन कहानियों में निहित सच्चाइयाँ अपनी जगह हैं, शायद मन ही मन पाठक उन्हें सराहें भी, पर उन्हें स्वीकार करना और जिंदगी की इस बड़ी और वास्तविक समस्या का यह तात्कालिक समाधान कितना और कितनों के गले उतरता है, यह देखने की बात है।

'जाल फेंक रे मछेरे' कहानी इस शाश्वत सत्य पर आधारित है कि दूसरों को अपने जाल में फँसाने की प्रक्रिया में यह बिसरा दिया जाता है कि जाल फेंकने वाला खुद भी जाल में फँस सकता है। सकीना ने अपने बेटे ताहिर का रिश्ता उस घर में करने की जिद ठान रखी है जहाँ से उसे दहेज में वह सारी संपत्ति मिलने की उम्मीद है जो अंततः उस विधवा की इकलौती लड़की और उसके होने वाले पति के नाम ही होनी है। इसके लिए वह हर तरह से जाल बिछाती है, पर उसे नहीं मालूम कि वह खुद ही कैसे इस जाल में फँसती चली जा रही है।

जी नहीं, 'जूली और कालू की प्रेम कथा में गोबर' कहानी दो इंसानों के बीच की प्रेम कहानी नहीं है। यह नए आए कलेक्टर साहब की कुतिया जूली और छोटी-मोटी किसानी और मजदूरी करके पेट पालने वाले होरी और उसके जवान होते बेटे गोबर के पालतू कुत्ते कालू की प्रेम कथा है। इस कहानी में वह सब कुछ है जो किसी प्रेम कहानी वाली बॉलीवुड फिल्म में होता है। कालू प्रेमी है तो जूली प्रेमिका, दोनों प्रेम में अंधे होकर अपनी-अपनी हैसियत भूल जाते हैं। जूली भूल जाती है कि वह जिले के

सर्वोच्च अधिकारी की कुतिया है तो कालू यह कि वह गरीब किसान का पालतू कुत्ता है। कालू को अपनी हैसियत भूल जाने और गोबर को कलेक्टर के कर्मचारियों के सामने जुर्रत दिखाने का जो परिणाम मिलता है, वह रोंगटे खड़े करने वाला है। वस्तुतः यह कहानी शक्ति, अधिकार और सत्ता के मद में चूर कलेक्टर और शक्ति के सबसे अंतिम बिंदु पर खड़े उस कमजोर किसान की कहानी है जहाँ शक्ति एकदम शून्य हो जाती है।

बढ़ते मशीनीकरण और कंप्यूटरीकरण की वजह से हाथ का काम करने वाले कारीगरों और मजदूरों की कम होती जरूरत और उसके कारण उनके बेकार और बेरोजगार होने की समस्या को 'रामसरूप अकेला नहीं जाएगा' कहानी में गंभीरता से उठाया गया है। यह समस्या रामसरूप जैसे लोगों के साथ ही नहीं है, आर्टिफीशियल इंटेलिजेंस के बढ़ते प्रयोग से अन्य रोजगारों पर भी विपरीत प्रभाव पड़ रहा है। ऑनलाइन क्लासेज ने मानव शिक्षकों तक की नौकरी को खतरे में डाल दिया है। यह एक ऐसा गुबार है जिसमें सभी तरह के और सभी के रोजगार समाते जा रहे हैं। इस कहानी में जिस समस्या को उठाया गया है, वह अपनी जगह है, पर इस बात को भी नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है कि मशीनीकरण, कंप्यूटरीकरण और आर्टिफीशियल इंटेलिजेंस ने रोजगार के नए-नए अवसर भी उपलब्ध कराए हैं और शुरुआती दौर में जिन आशंकाओं ने सिर उठाया था, वे धीरे-धीरे कम होती जा रही हैं।

किन्नर बनने और किन्नर का जीवन जीने की द्रवित कर देने वाली कहानी है "नोटा जान"। किन्नरों की दुनिया रहस्यों और अंधेरों से भरी होती हैं। कितनी-कितनी बातें होती हैं, इनके बारे में। कितनी कहानियाँ हैं इनके बारे में। सच हैं या झूठ कोई नहीं जानता। यह कहानी ब्रजेश से बिंदिया बने किन्नर की कहानी है। खुशी के मौकों पर लोगों के घरों में नाचने-गाने वाले, अभद्र इशारे करके हँसने-हँसाने वाले किन्नरों के दिल में छुपा दर्द कभी सामने नहीं आ पाता। अपने घरों से दूर रहने और अपनी पहचान छुपा कर जीने को मजबूर किन्नरों के सीने में भी दिल होता है, भावनाएँ होती हैं, पर उन्हें जानने-समझने वाला कोई नहीं होता। यहाँ तक कि खुद के परिवार वाले भी उनसे दूरी बनाए रखते हैं। बिंदिया का यह कहना किसी भी संवेदनशील मन को पिघला सकता है कि "अपनी ही जिंदगी से भाग कर जाऊँगी कहाँ साहब? लौट कर तो कहीं नहीं जा सकती। सबके लिए अब मैं नोटा का बटन हो गई हूँ, किसी काम की नहीं।"

संग्रह की दो कहानियाँ 'उजियारी काकी हँस रही है' और 'हराम का अंडा' समाज में घरेलू स्त्रियों की बदहाल जिंदगी पर मर्मांतक टिप्पणी की तरह है। उजियारी काकी के लिए हँसना मना है, उसका काम है अपनी तमाम इच्छाओं को दफन करके सिर्फ पति की सेवा करना। उसकी सबसे बड़ी गलती है बहुत सुंदर होना। शंकित और हीन भावना से ग्रस्त पति की तंजपूर्ण बातें सुनने और उसे नीचा दिखाने के लिए लाई गई मौत का दंश झेलने वाली उजियारी काकी की खोई हुई हँसी सिर्फ और सिर्फ मौत ही वापस लौटा सकती थी। 'हराम का अंडा' कहानी में नूरी का हाल भी इससे बहुत अलग नहीं है। वह अपने पति को औलाद तभी दे सकती है जब उसका पूरा इलाज हो। पर उसके पति को उसका खर्चीला इलाज कराने से बेहतर लगता है कम खर्चीला दूसरा निकाह कर लेना।

पंकज सुबीर कुशल कहानीकार हैं। कहानी कहने का उनका अपना अंदाज है। वे गंभीर विषयों को भी रोचक बना देते हैं। उनकी मंजी हुई भाषा और जबरदस्त शिल्प-विन्यास कहानी का एक-एक शब्द पढ़ने के लिए मजबूर कर देते हैं। इस संग्रह की सभी कहानियाँ उनकी इस विशेषता को शिद्दत से रेखांकित करती हैं। पढ़ कर देखिए, हर कहानी आपसे कुछ-न-कुछ ऐसा कहती हुई मिलेगी जो आपको सोचने-विचारने पर मजबूर कर दे।

पंकज सुबीर
गोया देसाई कॉटेज, शिवना प्रकाशन, सीहोर(म.प्र.) मो.-7562405545

कविता

हमारे गाँव का चबूतरा
विशाल बरगद की छाँव में
मौन समाधि लिए बैठा
हमारे गाँव का यह चबूतरा
ईंट-पत्थर-गारे से बना
सिर्फ कोई निर्जीव स्थल भर नहीं है
इससे जुड़े
कई किस्से-कहानियाँ हैं
हमारे गाँव की
जिसे इसी चबूतरे पर बैठकर
हमने सुना है
अपने गाँव के बूढ़े-बुजुर्गों से
यहाँ तक कि यहाँ रहते
बहुत कुछ देखा भी है
अपनी आँखों से
और पढ़ा भी है इस पर लिखा
इसका अलिखित इतिहास
यह चबूतरा सहता है
सबके दुःखों का भार
पर नहीं बताता कभी किसी को अपना दुःख
इसी चबूतरे पर माँ सुखाती थी धान
पिताजी भी इसी चबूतरे पर
बैठ बतियाते थे गाँव घर के लोगों से
घर गृहस्थी का हाल-चाल
गाँव की पंचायत हो या राजनीति
या फिर शादी-विवाह नाच-गाना
भजन-कीर्तन
सब कुछ इसी चबूतरे पर
होता आया है वर्षों से
इसी चबूतरे पर
गाँव की अस्सी साल की एक बुढ़िया
रोज लुकटिया टेकती आती है
अपने आप से और
याद करती है
अपने गुजरे दिनों को
गाँव का एक मताल भी अक्सर
दारू पीकर आता है
और जी भरकर गालियाँ देता है
ऊपर से नीचे तक सरकार को
एक प्रेमी जोड़ा भी अक्सर
आकर बैठता है इस पर
और सबसे छुप-छुपाकर
खेलता है आँख-मिचौली
गाँव घर की महिलाएँ भी
जब आती हैं
चापाकल में पानी लेने
तब यहीं बैठकर बतियाती हैं अक्सर
एक-दूसरे के घर की चुगली करती
पूरे गाँव के किस्से
थका-हारा कोई राहगीर भी आता है
तो इसी चबूतरे पर लेटकर
उतारता है अपनी थकान
अक्सर सबका दुःख-सुख
हरता है यह गाँव का चबूतरा
देता है सबको एक नई ऊर्जा
जाति-धर्म, ऊँच-नीच, गरीब-अमीर
कभी किसी से भेदभाव नहीं करता
देता है एक समान सबको सम्मान
इसमें हमारे गाँव की आत्मा बसती है
पूरे गाँव का इतिहास छिपा है इसमें
अब यह अलग बात है कि
इसी गाँव में रहते कभी
सुनाई नहीं पड़ी तुम्हें
इसकी आत्मा की आवाज
क्योंकि तुम्हारे लिए तो सिर्फ
ईंट-गारे-पत्थर से बना
एक निर्जीव चबूतरा भर है यह!

तेज नारायण राव
सहायक प्राध्यापक, कोल्होड़िया,
पो.–भैरोपुर, पं.–चिकनियाँ,
प्रखंड– जामा, दुमका(झारखण्ड),
मोबाइल– 6207586995

शोधआलेख

नयी कविता में प्रगतिशील चेतना

डॉ. हरकेश कुमार
मोबाइल–9648946822

1943 में प्रकाशित एवं अज्ञेय द्वारा सम्पादित 'तारसप्तक' को प्रयोगशील नयी कविता की प्राथमिक अभिव्यक्ति माना जाता है। किन्तु 'तारसप्तक' एक नयी काव्यात्मक क्रान्ति का अग्रधावक नहीं बल्कि उसकी कुछ आरम्भिक प्रवृत्तियों की सामूहिक अभिव्यक्ति मात्र है। तारसप्तक के बहुत पहले निराला की रचनाओं में अभिव्यक्ति के स्तर पर छायावादी संस्कारों से रहित नवगीत के दर्शन होने लगे थे। इस प्रकार 'तारसप्तक' के प्रकाशन से पहले ही नये परिवर्तन की जोरदार हवा बह चुकी थी। इसी हवा को निश्चित और स्पष्ट रूप प्राप्त हुआ।

नयी कविता के इतिहास में 'दूसरा तारसप्तक' का प्रकाशन 'तारसप्तक' के बाद दूसरी उल्लेखनीय घटना है। ऐतिहासिक दृष्टि से 'नयी कविता' 'दूसरा सप्तक' प्रकाशन काल 1951 के बाद की कविता को कहा गया है। हिन्दी साहित्य में जिसे 'नयी कविता' कहा जाता है तथा जो प्रयोगवादी कविता की अपेक्षा अधिक कर्णप्रिय विधा है, 'दूसरा तारसप्तक' में उभरती प्रतीत होती है। नयी कविता की पहली शर्त नवीनता है। यह नवीनता रचना-विधान और सृजन-शिल्प की तथा दृष्टिकोण और विषयवस्तु की नवीनता है। समसामयिक यथार्थ से अनुप्राणित नयी भावभूमि और नये रचना शिल्प के अतिरिक्त 'नयी कविता' नये मानव मूल्यों की खोज और उनकी स्थापना की दृष्टि से भी नितान्त नवीन दिशापन्थी का सन्धान करती है।

नयी कविता में कवि अपने-अपने समय के जागरूक प्रहरी बन इन उलझी स्थितियों का विश्लेषण करते हैं और अपनी रचनाओं के माध्यम से नयी-पीढ़ी को ऐसी कुरूप विडम्बनाओं का बोध कराने के लिये प्रयत्नशील रहे। शिष्ट, शिक्षित तथा सुसंस्कृति समझे जाने वाले समाज के बड़े लोगों की मिथ्या आदर्शवादिता हमें सदैव धोखा देती रही है। उमाकांत मालवीय का यह विचार हमारी चेतना को झकझोर देता है।

"बड़े-बड़े आदर्श वाक्यों को स्वर्णाक्षरों में लिखवाकर अपने ड्राइंग रूम में दो। उन्हें अपनी आस्था, श्रद्धा एवं निष्ठा का अर्ध्य दो। उन पर अपनी कर्मठता की बलि दो। पुस्तक में लिखे उन वाक्यों को रेखांकित कर, अल्मारियों में सजा दो, इसके अतिरिक्त उनका उपयोग क्या जीवन में। बड़ी-बड़ी बात बड़े-बड़े लोगों की विलासिता हैं, यह तथ्य मैंने जनसाधारण के चेहरों पर पढ़ा है।"

हमारे समाज का सम्पूर्ण परिवेश तत्कालीन साहित्य में स्पष्ट दिखाई देता है। उसका वास्तविक चित्रण करना ही प्रगतिशील साहित्यकारों का वैशिष्ट्य है। भक्तिकाल के निर्गुण काव्य धारा के प्रतिष्ठित कवि कबीर ने तत्कालीन समाज को अपने काव्य में प्रतिबिम्बित ही नहीं किया है, बल्कि हिंदू-मुस्लिम दोनों धर्मों में उपस्थित सामाजिक विसंगतियों पर क्रूर प्रहार भी किये। इसी भांति तुलसीदास ने भी कबीर का अनुशरण करते हुए समाज की दारिद्रय स्थिति पर प्रकाश डाला –

"खेती न किसान को, भिखारी को न भीख बलि
बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी
जीविका विहीन लोग सीद्यमान सोचवश
कहैं एक-एकन को कहाँ जाई का करी।"1

इस प्रकार देखा जा सकता है कि भक्तिकालीन साहित्य के प्रादुर्भाव से ही यथार्थवादी चित्रण होते आये हैं, लेकिन प्रगतिशील चेतना का प्रस्फुटन भारतेन्दुकाल से ही माना जा सकता है।

'प्रगति' का अर्थ विकास है। प्रगति अंग्रेजी के 'प्रोग्रेस' का ही हिंदी समान्तर है। प्रोग्रेस का अर्थ है आगे बढ़ना, एक ऐसा परिवर्तन जिसमें किसी वस्तु के गुण अथवा परिणाम में वृद्धि हो। रांगेय राघव के अनुसार "प्रगति केवल राजनीतिक नहीं है। यह समग्र मानव का नया जीवन दर्शन है, जो वर्गवाद को मिटाकर मनुष्य का ऐसा सुखी समाज बना सके, जहाँ विज्ञान की सहायता से सृष्टि के रहस्यों को समझा जा सके।"2 मुंशी प्रेमचंद ने 'उन्नति' शब्द का प्रयोग 'प्रगति' के अर्थ में किया है।

साहित्य के संदर्भ में 'प्रगतिशीलता' या 'प्रतिशीलवाद' का प्रादुर्भाव सन् 1936 ई० से माना जा सकता है। सन् 1936 में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना मुल्कराज आनन्द और सज्जाद जहीर की प्रेरणा स्वरूप हुई जिसका प्रथम अधिवेशन लखनऊ में प्रेमचन्द की अध्यक्षता में हुआ। प्रेमचन्द ने साहित्य की प्रगतिशीलता पर विशेष बल दिया। मुंशी प्रेमचन्द के निम्न विचार प्रगतिशीलता के प्रमाण हैं – "हमारी कसौटी पर वही खरा उतरेगा, जिसमें उच्च चिन्तन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौंदर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाई का प्रमाण हो, जो हममें गति, संघर्ष और बेचैनी पैदा कर दे, सुलाए नहीं, क्योंकि अब और सोना मृत्यु का लक्षण है।"3 क्रमशः द्वितीय अधिवेशन में भी प्रगतिशीलता पर विशेष जोर दिया गया है।

दिल्ली में 'प्रगतिशील लेखक संघ' का तीसरा अधिवेशन किया गया। इस अधिवेशन का मुख्य उद्देश्य साहित्यकारों की प्रगतिशील चेतना पर प्रकाश डालना था।

प्रगति और प्रगतिशील चेतना का सम्बन्ध अत्यन्त निकटता का है। प्रगति का ही दूसरा नाम विकास और इस विकास के लिए निरन्तर प्रयत्न करना ही प्रगतिशीलता है।

यद्यपि हिंदी साहित्य में प्रगतिशील चेतना का प्रस्फुटन भारतेन्दु युग से माना जाता है, लेकिन पाश्चात्य साहित्य में भी सामन्तवाद एवं कैथोलिक संकीर्ण धर्म भावना आदि को समाप्त करने के लिये 15 वीं शताब्दी में आन्दोलन हुए जिसे पुनर्जागरण काल कहा गया। इसी समय से पाश्चात्य साहित्य में भी प्रगतिशील चेतना का प्रादुर्भाव हुआ।

नई हिंदी कविता जन विद्रोहों की पृष्ठभूमि से उपजी है। जन-जन विद्रोह तभी होते हैं जब व्यक्ति अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हों। व्यक्ति शासन व्यवस्था के प्रति अपनी हिंसक-अहिंसक रूप से नाराजगी दर्ज करें। 'नई कविता' की प्रमुख पहचान ही विद्रोह की कविता के रूप में हुई। बंगाल के नक्सलवाड़ी और तेलंगना के किसान-विद्रोह का साठोत्तरी कविता पर गहरा प्रभाव पड़ा। जनवादी कवियों ने उस विद्रोह को लेकर अपनी कविताएँ लिखीं। भाषाएं आन्दोलन सन् 1974 का युवा आन्दोलन, आपातकाल, असम और पंजाब की समस्या आदि घटनाओं में प्रगतिशील

चेतना का पुट दिखाई देता है। निष्कर्षतः प्रगतिशील कवियों ने प्रत्येक उस व्यक्ति की ओर समुदाय की तरफदारी की जो शोषित और पीड़ित हैं।

नई कविता के प्रगतिशील चेतना सन्दर्भ में सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, धूमिल, मुक्तिबोध, नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल आदि कवियों की प्रगतिशील चेतना को इंगित किया गया है –

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की कविताओं में प्रगतिशील चेतना – सक्सेना प्रगतिशील चेतना के प्रमुख कवियों में अपना स्थान रखते हैं। इनकी अधिकांश रचनाएँ 1960 के बाद की हैं। सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के काव्य में जनवादी चेतना लोक-जीवन से सम्पृक्त होकर अभिव्यक्त हुई हैं। इनकी एक कविता 'पथराव' शीर्षक से प्रकाशित हुई जिसमें प्रगतिशील चेतना के पुट दिखाई देते हैं –

"मैं जानता हूँ पथराव से कुछ नहीं होगा
न कविता से ही
कुछ हो या न हो
हमें अपना होना प्रमाणित करना है।"4

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की कविताओं में प्रगतिशील चेतना के एक से एक बढ़कर उदाहरण बिखरे पड़े हैं। इसमें 'भुजैनिया का पोखरा', 'कुआनों नदी', 'नये साल पर', 'गाँव की शाम का सफर', 'सुहागिन का गीत' आदि प्रसिद्ध कविताएं हैं। सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की 'गर्म हवाएं' कविता की कुछ पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं –

"गरीबी हटाओ सुनते ही
उसने मिट्टी से अपने बाल धोये
फिर उसने मिट्टी से अपनी लुगरी
घाट के पत्थर पर खूब पटकी
जब तार-तार हो गयी
और मैल झण्डे के शक्ल में बह निकला
तब वह धूप में तनकर खड़ा हो गया।"5

सर्वेश्वर दयाल की कविताओं में एक आम आदमी की पीड़ा, घुटन और संत्रास आदि के दर्शन होते हैं। अपनी परवर्ती कविताओं में सर्वेश्वर दयाल बाह्य वास्तविकता और बाह्य यथार्थ के चित्रण में विशेष रूप से उन्मुख हुए हैं, परिवेश स्रोत के साथ अपना लगाव दृढ़तर होता गया है, उनकी दृष्टि आत्मपरक से वस्तुपरक होती गई है। इनकी कविताओं में राजनीति पाखण्ड, भ्रष्ट व्यवस्था और आज की विसंगतियों का चित्रण मिलता है, साथ ही किसी प्रकार का राजनीतिक मतवाद भी नहीं मिलता है। इनकी प्रगतिशील कविताओं में जनवादी चेतना किसी दल विशेष से सम्बद्ध नहीं है।

सर्वेश्वर जनता के पक्षधर हैं, जनवादी कवि हैं, व्यवस्था विरोधी हैं। 'कुआनों नदी' ऐसा ही एक कविता संग्रह है। 'जंगल का दर्द' भाग-1 तथा भाग-2 संग्रह की सभी कविताएं मनुष्य और मनुष्य के संघर्ष की कविताएं हैं। भारतीय जनता जितनी भूख, गरीबी और शोषण से ग्रसित है उतनी ही मौसम के मार से भी त्रस्त है।

भारतीय शासन व्यवस्था में निम्नवर्ग फटे-पुराने कपड़ों में कड़ाके की ठंड सहने को विवश है और ऐसे में विवशता के आँसू भी कपोलों पर जम जाते हैं, विरोध में निकलने वाले स्वर कण्ठ में ही जमकर बर्फ बन जाते हैं।

सुदामा पाण्डेय 'धूमिल' की कविता में प्रगतिशील चेतना – धूमिल भी साठोत्तरी हिंदी कविता के स्थापित कवि हैं। धूमिल के काव्यों में विद्रोह तथा मूल्यों के संकट की जटिल अभिव्यक्ति हुई है, जो साठोत्तरी कविता की केन्द्र बिन्दु है। कवि ने ऐसा अनुभव किया कि जनता में शक्तियां नहीं हैं जो स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त भी इस सड़ती हुई व्यवस्था को समाप्त कर सके और एक नये समाज का निर्माण कर सके। इसीलिए कवि इस व्यवस्था पर करारा व्यंग्य करता है –

"हाँ यह सही है कि कुर्सियाँ वही हैं
सिर्फ टोपियां बदल गयी हैं।"6

धूमिल का काव्य संग्रह 'संसद से सड़क तक' सामाजिक यथार्थ के फलक पर ऐसे दृश्यों को लाती हैं जिन्हें एक मार्क्सवादी रूझान और लेखकीय ईमान के तर्क से संजोया गया है। इस लम्बी कविता में वर्गीय संवेदना, पूंजीवादी सुविधापरस्ती से पनपी आपसी द्वन्द्व चित्रित हैं और इस कविता के माध्यम से कवि की प्रगतिशीलता का भी जायजा लिया जा सकता है। इसी भांति यदि धूमिल की प्रगतिशीलता के आधार पर 'पटकथा' को विश्लेषित किया जाये तो स्पष्टतः कहा जा सकता है कि धूमिल का कवि मन वर्गचेतना से बंधा हुआ है। धूमिल का उदय धूमकेतु की तरह होता है जिसमें अग्नि भी है, धुआं भी है। धुआं आधुनिकता है और अग्नि प्रगतिशील चेतना। धूमिल की ऊर्जा, विक्षोभ, भाषिक नवोन्मेष देखकर थोड़ी देर के लिये निराला की याद आ जाती है पर धूमिल का एक छोर आधुनिकता से बंधा था तो दूसरा छोर अराजकता से। ये दोनों प्रवृत्तियां शुरू से ही दिखाई पड़ती हैं और अंत तक इन दोनों ने अपना रंग साथ-साथ निभाया। सन् 1967 में ही वह एक ओर आधुनिकतावादी 'कविता' लिख रहे थे तो दूसरी ओर 'मोचीराम'।

उनके तीनों संग्रहों 'संसद से सड़क तक' (1972), 'कल सुनना मुझे' और सुदामा पाण्डेय का प्रजातंत्र में दोनों प्रवृत्तियां मिलेंगी। राजकमल चौधरी की मृत्यु पर लिखी गयी उनकी कविता में आधुनिकता की विकृतियां भरी पड़ी हैं। स्त्री के प्रति उनका दृष्टिकोण भिन्न नहीं है। गाँव घर से उठाये हुए मुहावरों तथा बिम्बों से भी यह स्पष्ट है, जैसे –

"उसने जाना कि हर लड़की
तीसरे गर्भपात के बाद
धर्मशाला हो जाती है,
मासिक धर्म में डूबे हुए
लत्ते-सा लड़खड़ाया दिन"7

औरत के प्रति धूमिल के रूख और राजकमल में कोई अन्तर नहीं है। जब हम अपने गाँवों की तरफ रूख करते हैं तो हम गाँव वालों की हँसी और दर्द के अनुपात का आकलन नहीं पाते, परन्तु वे जहाँ सूखा और बाढ़ की चोट सहकर अपने अभाव भरे आंगन में तुलसी पूजा करके दुःखद मन को संयमित करते हैं वहाँ जब उनके गाँवों में धान फूटता है तो उसकी खुशियों की किलकारियां ममत्व के आंचल में सीझ जाती हैं। ऊख की मिठास और नीम की कड़ुवाहट दोनों को एक साथ महसूस करने वाले किसान गीतकार को और कमतर नहीं दिखाई पड़ते। अभाव और पीड़ा को झेलते हुए भी भारतीय संस्कृति शासत्व मूल्यों को अपने मन के गमलों में पालती-पोषती रही है। यह संस्कृति ऐसी शिखा है जो लाखों आँधियों के

थपेड़े सहकर भी अपने आंचल की ओट में प्रज्ज्वलित होती रही। नयी कविताकारों की भांति नवगीतकारों के नवगीतों में प्रगतिशील चेतना स्पष्ट दिखाई देती है। बुद्धिनाथ मिश्र लिखते हैं –

"नदी रूकती नहीं है
लाख चाहें सेतु की कड़ियां पिन्हा दें
ओढ़कर शैवाल वह चलती रहेगी
शिखा मिटती नहीं
लाख अंधेपंख से इसको घुमाओ
आंचलों की ओट वह जलती रहेगी।"8

मुक्तिबोध की कविताओं में प्रगतिशील चेतना– मुक्तिबोध प्रगतिशील चेतना के कवि हैं। मुक्तिबोध ने जन-जनता, जन-तन्त्र, मानव आदि शब्दों पर अपने समीक्षात्मक लेखों में बड़ी ही सावधानी से विचार किया है। इनका पहला काव्य संकलन 'चांद का मुख टेढ़ा' में 1959 से 1964 ई० तक की कविताएं संकलित हैं। जबकि इनके दूसरे संकलन 'भूरी-भूरी खाक धूल' में प्रायः 1949 से 1964 तक की कविताएं संकलित हैं। मुक्तिबोध की इन रचनाओं में समाज एवं शासन व्यवस्था के प्रति विद्रोह एवं आक्रोश साफ-साफ परिलक्षित हुआ है। इनकी यह प्रगतिशील चेतना इन्हें साठोत्तरी हिंदी जनवादी कविता का मील का पत्थर मानता है। मुक्तिबोध के व्यवहार एवं विचारों में मार्क्सवाद घुल-मिल गया है। इनके काव्यों में मजदूर सर्वहारा वर्ग को इसी बात का दुःख है कि परिश्रम करने के उपरान्त भी उच्च मासिक वर्ग मेरे उन अश्रुओं को नहीं देखते, जिसमें मेरी सभी आन्तरिक वेदना विद्यमान होती है। इन्हें विश्वास है कि ये पूंजीपति इनके श्रम का मूल्य चुका ही नहीं सकते। इसीलिए वे कहते हैं –

"यही दुःख है, सेवाओं की कीमत किनसे लूँ मैं।"9

मुक्तिबोध ने अपने प्रगतिशील कविताओं के अन्तर्गत सम्पूर्ण मानवता को नष्ट-भ्रष्ट करने वाले साम्राज्यवादियों की कड़ी आलोचना की है। इन्होंने इन साम्राज्यवादियों को विष से भरे सांप-सपोलों के रूप में चित्रित किया है।

नागार्जुन में प्रगतिशील चेतना – नागार्जुन अपनी रचनाओं के सम्बन्ध में कहते हैं – "प्रति हिंसा ही स्थाई भाव है मेरे कवि का"। नागार्जुन की रचनाओं की मूल प्रेरणा स्रोत एवं सम्बल यही प्रतिहिंसा ही है। नागार्जुन कहते हैं –

"जनता मुझसे पूछ रही है, क्या बतलाऊं
जनकवि हूँ मैं साफ कहूँगा क्यों हठलाऊं
... जनकवि हूँ मैं क्यों चाटूं थूक तुम्हारी
श्रमिकों पर क्यों चलने दूँ बन्दूक तुम्हारी"10

गरीबी, शोषित, पीड़ित आमजन के पक्ष में इतनी शक्ति, साहस और प्रचण्ड वेग के साथ जिन साठोत्तरी कवियों ने लिखा है नागार्जुन उनमें शीर्ष स्थान पर हैं। नागार्जुन ऐसे जनवादी कवि हैं जिन्होंने समाज के सबसे निम्न स्तर के लोगों को अपनी कविता का नायक चुना है और इन्हीं निरीह, शोषित, पीड़ित की जिंदगी को अपनी कविताओं में बहुत गहराई एवं मार्मिकता के साथ चित्रित किया है। नागार्जुन ने अपनी कविता में एक स्थान पर लिखा है – "मैं रूपक हूँ दबी हुई दूब का"। उनका काव्य वस्तुतः दबी हुई दूब का रूपक है। यहाँ 'दबी हुई दूब' निम्न, शोषित-पीड़ित वर्ग है। नागार्जुन का दुःख अकेला उनका दुःख नहीं है। उन्होंने जनसामान्य से एकाकार कर लिया था। आज के शासन प्रणाली पर तो उन्होंने तीक्ष्ण व्यंग्य किया है।

'आओ रानी हम ढोएंगे–पालकी' में शासन प्रणाली एवं राजनीति पर इनके कुठाराघात को देखा जा सकता है –

"आओ रानी हम ढोएंगे पालकी
यही हुई है राय जवाहर लाल की
रफू करेंगे फटे-पुराने जाल की।"11

नागार्जुन ने शासकों के सभी छल-छद्मों का पर्दाफाश किया है, इस व्यवस्था की सड़न से वह तो अपरिचित हैं, इसलिए बड़े विश्वास से घोषणा करते हैं – "तासों में ही बने रहेंगे अब तो राजा रानी।"

त्रिलोचन शास्त्री की रचनाओं में प्रगतिशील चेतना – त्रिलोचन शास्त्री साठोत्तरी कविता के प्रारम्भिक दौर के प्रगतिशील कवियों की श्रेणी में आते हैं। त्रिलोचन शास्त्री की कविता की बाह्य तटस्थता उनकी हिंदी कविता में अलग-सी पहचान बना देती है। इनकी 'तुम्हें सौंपता हूँ' संग्रह में 1938 से लेकर 1983 तक की कविताएं हैं। इसके अलावा इनके 'ताप के ताये हुए दिन' तथा 'धरती' नामक संग्रह में प्रगतिशील रचनाएं हैं।

त्रिलोचन की कविताओं में ऊब, निराशा, अकेलापन की गहन अनुभूति उनके गीतों एवं कविताओं को मनोवैज्ञानिक काव्य कहा है। त्रिलोचन के गीतात्मक कविताओं में यह प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है –

"मौन के सागर में
गहरे-गहरे निशिवासर डूब रहा हूँ
जीवन की जो
उपलब्धियां हैं
उससे मन-ही-मन ऊब रहा हूँ।"12

अब तक त्रिलोचन के पाँच संग्रह प्रकाशित हुए हैं –

'ताप के तापे हुए दिन', 'शब्द', 'उस जनपद का कवि हूँ', 'तुम्हें सौंपता हूँ' और 'चेती'। धीरे-धीरे पिछले दो-तीन दशकों से हिंदी कविता जिन घुमावदार रास्तों का सफर तय करती हुई जिस जमीन पर लौटी है, त्रिलोचन की कविता की भाव-भूमि वही है। त्रिलोचन प्रगतिवाद से प्रभावित होकर अपनी जनवादी चेतना को अक्षुण्ण बनाये रखने में सर्वदा सफल रहे हैं।

सन् 1960 के बाद का समय भारतीय राजनीति और समाज के उथल-पुथल का काल रहा है। त्रिलोचन शास्त्री ने भी अपनी कविताओं और सानेटों में इस काल के शोषित पीड़ित जनता की मनोदशाओं को व्यक्त किया है –

"सपने ही हैं जो मुझको भरमाते हैं
चक्कर पर चक्कर
यह चिंता वह चिंता
इतिहास यही जीवन का।"13

हिंदी कविता की प्रगतिशील परम्परा को त्रिलोचन ने पूर्णरूपेण आत्मसात किया है और अपनी रचना को प्रगतिशील रचनाकारों के बीच एक अलग-सी पहचान दी है। इसी कारण 'त्रिलोचन', 'नागार्जुन', 'केदार' मिलकर जनवादी कविता की वृहत्त्रयी का निर्माण करते हैं। त्रिलोचन में अन्य कवियों की तरह ओज एवं आक्रामकता तो नहीं, लेकिन उनमें संवेदना का ताप पूर्णतया विद्यमान है। उसके पास आम जीवन के निकट से प्राप्त शब्दकोश हैं। अतः जब त्रिलोचन 'जन की' अनुभूति 'जन के लिए' 'जन' को भाषा में व्यक्त करते हैं, तो उनका कोई जवाब नहीं होता है।

नयी कविता में विक्षोभ और विद्रोह के स्वर की बहुलता है। विक्षोभ और विद्रोह एक अवधि के बाद रचनात्मक स्तर पर अपने लिए एक सीमा बना लेते हैं, क्योंकि तब लेखक/कवि की दृष्टि विद्रोह के आलम्बन से पूरी तरह बंध जाती है और स्वतंत्र ढंग से सोच पाना बाधित होता है। इसलिए विद्रोह का आरंभिक स्थिति में महत्व निर्विवाद होते हुए भी मूल बात व्यक्तित्व को स्वाधीन भाव से परिचालित करना और पूर्व ग्रह आड़े आ सकते हैं। विद्रोह को परिभाषित करते रहने की प्रक्रिया इसीलिए महत्वपूर्ण है, क्योंकि तभी लेखक सोच पाता है कि उसे स्वयं क्या कहना है। नयी कविता के अन्यतम कवि रघुवीर सहाय ने विद्रोह के इस ठंडे ढंग को और उसकी शक्ति को बखूबी पहचाना था, जब उन्होंने कहा –

"यानी कि आप ही देखें कि जो कवि नहीं हैं
अपनी एक मूर्ति बनाता हूँ और ढहाता हूँ
और आप कहते हैं कि कविता की है
क्या मुझे दूसरों की तोड़ने की फुरसत है?"14

पर युवा लेखक में अपरिभाषित विद्रोह और आक्रोश का स्वर प्रबल हो जाता है।

नयी कविता के प्रगतिशील कवियों की कविताओं के विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि उनमें जनतन्त्र के प्रति आक्रोश के स्वर हैं।

उन्होंने शोषक एवं शोषित वर्गों को अपनी कविता का विषय बनाया है। सर्वहारा वर्ग के प्रति ये कवि पूर्णरूपेण श्रद्धावनत हैं। इसके साथ ही उन्होंने पूंजीवादी वर्ग पर भी पैने कटाक्ष किये हैं। प्रगतिशील कविता के तीसरे चरण में धूमिल जैसे कवि जनता के क्रान्तिकारी शक्ति के और समीप आते हैं। फलतः उनकी राजनैतिक चेतना और अधिक स्पष्ट एवं पैनी हो जाती है। इसमें शासक वर्ग के साथ-साथ जनता का रूप भी अधिक विविधता लिए हुए दिखाई पड़ता है। इनकी इन प्रगतिशील कविताओं में मात्र क्रान्ति की ही आवाज नहीं सुनाई पड़ती, बल्कि क्रान्ति का पूर्ण विस्तृत आयाम दिखाई पड़ता है। उनका यह संघर्ष एवं आक्रोश उनकी चरम परिणति स्वरूप आशा एवं विश्वास की लालिमा में परिणत होते दिखाई देते हैं।

नयी कविताओं के कवियों की प्रगतिशील चेतना का रूझान सर्वत्र निम्न वर्ग की ओर का रहा है। इन्होंने समाज के सबसे उपेक्षित वर्ग के प्रति ही अपनी सहानुभूति प्रकट की है। इनकी समस्त रचनाओं में जनवादी भावनाएं नयी कलात्मकता के साथ व्यक्त हुई हैं। समकालीन प्रगतिशील चेतना उन काव्यों में व्याप्त चरित्रों और मूल्यों के बदलाव को सही परिप्रेक्ष्य में सामने लाती हैं। इस प्रकार नयी कविता के कवियों का साहित्यिक रचना संसार निरन्तर प्रगतिशीलता का निर्वाह पूर्ण आस्था के साथ करता आया है।

1. नयी कविताः एक अनवरत धारा– डॉ० पार्वती जे० गोसाईं, प्रथम संस्करण 2012, ज्ञान प्रकाशन कानपुर, पेज सं० 34
2. नयी कविता एवं नवगीत– गीता अस्थाना, प्रथम संस्करण 2015, विद्या प्रकाशन, गुजैनी कानपुर, पृष्ठ 177
3. पूर्ववत्।
4. पूर्ववत्।
5. पूर्ववत्।
6. केदारनाथ अग्रवालः मार प्यार की थापे, पृष्ठ 21
7. हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास– डॉ० बच्चन सिंह तेरहवां संस्करण–2021, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, जगतपुरी दिल्ली, पृष्ठ 451
8. समकालीन कविता और नवगीत का तुलनात्मक अध्ययन, डॉ० ओमप्रकाश सिंह, प्रथम संस्करण 2010 राका प्रकाशन–इलाहाबाद, पृष्ठ 172
9. आलोचना पत्रिका जनवरी-जून, 1981 पृ० 1
10. नागार्जुनः चुनी हुई रचनाएं, भाग-2 पृ० 163।
11. आलोचना पत्रिका जनवरी-जून, 1981 पृ० 27
12. नागार्जुनः चुनी हुई रचनाएं भाग-2 पृ० 66
13. त्रिलोचन शास्त्रीः तापके ताये हुए दिन पृ० 25
14. त्रिलोचन शास्त्रीः तुम्हें सौंपता हूँ पृ० 41

कविताएं

कविताएं

प्रिया देवांगन 'प्रियू'
राजिम, जिला–गरियाबंद, छत्तीसगढ़

यथार्थ

घट चाहे माटी का हो, मोती से जड़ित या हो
मदिरा के पात्र से तो, दुर्गंध ही आएगी
कितनी प्रशंसा करो, मीठे शब्द वाणी भरो
छद्म छवि कभी यहाँ, छुप नहीं पाएगी
मन छल द्वेष गढ़े, पीठ पीछे दोष मढ़े
प्रेम कड़ी एक दिन, टूट ही तो जाएगी
करो मत बुरा कर्म, अपनाओ सत्य धर्म
आत्मा को परमात्मा से, मिलन कराएगी
प्रतिदिन राम जप, नित ध्यान योग तप
जीवन जटिल बाधा, त्वरित मिटाएगी
उपजे आनंद सुख, हृदय से मिटे दुःख
त्याग भक्तिभाव से ही, मुक्ति मिल पाएगी।

गौरीशंकर वैश्य विनम्र
117, आदिलनगर, विकासनगर
लखनऊ-226022,
मोबाइल– 09956087585

लेखनी

विश्व को दर्पण दिखाती लेखनी
ज्ञान का दीपक जलाती लेखनी
प्रेम का मनहर पढ़ाती पाठ है
शौर्य का यशगान गाती लेखनी
रूप ले लेती कभी तलवार का
मार दैत्यों को भगाती लेखनी
ध्वंस कर देती निराशा-भाव का
चेतना नूतन जगाती लेखनी
शान से ध्वज गाड़ती है सत्य का
झूठ को पल में हराती लेखनी
नवरसों से नवसृजन रससिक्त कर
प्राण को सुखमय बनाती लेखनी
प्रज्ज्वलित कर भाव-अक्षत ज्योति को
तमस जीवन का मिटाती लेखनी

समीक्षा

सिमट गये संवाद : यथार्थ से मुठभेड़

वीरेन्द्र परमार
103, नवकार्तिक सोसायटी,
सेक्टर-65, फरीदाबाद–121004,
मोबाइल–9868200085

जिस साहित्यकार के साहित्य में अपने समय की संवेदना व्यक्त नहीं होती उसका लेखन शीघ्र काल-प्रवाह में विलीन हो जाता है। हिंदी और बज्जिका के सशक्त हस्ताक्षर हरिनारायण सिंह 'हरि' के साहित्य में समकालीन सामाजिक और राजनैतिक जीवन अपनी समस्त विडम्बनाओं एवं खूबियों के साथ अभिव्यक्त हुआ है। उन्होंने छोटी-छोटी घटनाओं को आधार बनाकर काव्य रचना की है। इनकी कविताएँ मानव मन पर गहरा प्रभाव छोड़ती हैं। इनकी कविताओं में मानवीय मूल्यों को प्रतिस्थापित करने की छटपटाहट है। जीवनानुभवों से प्रेरित इनकी काव्य रचनाओं में वर्तमान साँसें लेता है और भविष्य आशावाद के पुष्प-पराग बिखेरता है। इनकी कविताएँ काल के गीत सुनाती हैं और सच्चाइयों के साथ अठखेलियाँ करती हैं। इनकी कविताएँ मानव-मन के एकांत में झाँककर भावनाओं के आरोह-अवरोह व छटपटाहट को आकार देती हैं। हरिजी के साहित्य का फलक अत्यंत विस्तृत है। वे बज्जिकांचल की माटी से गहरा जुड़ाव रखते हैं। फलतः इनके साहित्य में बज्जिकांचल की सोंधी महक और ग्राम्य जीवन की सुगंध है। इन्होंने गाँव की मूक वेदना को वाणी दी है। वे रूढ़ियों से ग्रस्त जड़ समाज में प्राण का संचार करना चाहते हैं। इनके मन में ग्रामोद्धार का सपना पल रहा है। वे जानते हैं कि गाँव के विकास का मतलब देश का विकास है। केवल आजादी मिल जाने मात्र से देश का विकास नहीं हो सकता, बल्कि कुशासन, भ्रष्टाचार और राजनैतिक प्रपंचों से मुक्ति ही देश के विकास का मार्ग प्रशस्त कर सकता है। भारत के राजनैतिक परिदृश्य और पतनशील व्यवस्था पर हरि जी के शब्दों के घातक प्रहार की अनुगूंज दूर तक सुनाई पड़ती है। दोहा मुक्तक काव्य का प्रधान छंद और साहित्य की एक लोकप्रिय विधा है जो कम शब्दों में अधिक भावराशि को समेट लेती है। इसमें संक्षिप्त और तीखी भावव्यंजना को प्रकट करने की अद्‌भुत क्षमता होती है। दोहा लिखना गागर में सागर भरने के समान है। बहुआयामी प्रतिभा के धनी साहित्यकार श्री हरिनारायण सिंह 'हरि' ने अपने दोहा संग्रह 'सिमट गये संवाद' के दोहों के माध्यम से गागर में सागर भरने का उपक्रम किया है। श्री हरि ऐसे शब्द साधक हैं जिन्होंने साहित्य की प्रायः सभी विधाओं में अपनी प्रतिभा की सुगंध बिखेरी है। उन्होंने साहित्य की जिस विधा को स्पर्श किया वह विधा उनकी सर्जनात्मक प्रतिभा से निहाल हो गई। 'सिमट गये संवाद' का आरंभ ईश वंदना से होता है। इन्होंने गणेश, माँ शारदे, माता-पिता और गुरु की वंदना करते हुए अपनी वाणी में माधुर्य की कामना की है –

"वाणी में माधुर्य दो, लेखन रस से सिक्त
गद्य-पद्य-आलोचना, शक्ति भरो अतिरिक्त।"

आजकल धर्म के नाम पर पाखंड और अधर्म का बोलबाला है। मानवता सिसक रही है और सामाजिक मूल्यों का निरंतर क्षरण हो रहा है। हरि जी ने मानवता को सबसे बड़ा धर्म बताया है। उन्होंने परोपकार को सर्वश्रेष्ठ धर्म सिद्ध किया है –

"मानवता दिखलाइए, यही उचित है धर्म
परहित से अच्छा नहीं, जग में कोई धर्म।"

'सिमट गये संवाद' के दोहों में युग-जीवन की विद्रूपताओं, विसंगतियों और विडंबनाओं को रेखांकित किया गया है। 'नेता करे न चाकरी' शीर्षक दोहों में भारत के राजनैतिक प्रपंच, नवसामंतवाद और पाखंड पर निर्मम प्रहार किया गया है –

"लोकतंत्र की कोख से, जन्मे नव सामंत
जिनसे व्याकुल हो उठे, जन-गण-मन अत्यंत
करना-धरना कुछ नहीं, राजनीति व्यवसाय
कोई इनसे पूछ ले, इसमें इतनी आय?"

भारतीय लोकतंत्र के सम्मुख सबसे बड़ा यक्ष प्रश्न यह है कि अच्छे लोग राजनीति में शामिल क्यों नहीं होना चाहते। राजनीति उन लोगों की शरणस्थली बन गई है जो दुर्जन, झूठे और अपराधी हैं। 'लोकतंत्र विकलांग है' शीर्षक दोहों में हरि जी ने भारतीय राजनीति के गिरते स्तर पर चिंता व्यक्त की है। यह संसदीय लोकतंत्र का कैसा मजाक है कि राजनैतिक दल टिकट बेचते हैं और जनता जाति, धर्म और लोकलुभावन नारों के आधार पर वोट देती है। जनता शराब, पैसे और मुफ्त राशन-पानी के लोभ में वैसे उम्मीदवारों को भी अपना भाग्यविधाता चुन लेती है जिनके हाथ खून से रंगे होते हैं। हरि जी ने अपने दोहों में नेताओं की करतूतों व सिस्टम की खामियों का पोस्टमार्टम किया है –

"उत्तम पुरुष न आ सकें, राजनीति में एक
इस संसदीय तंत्र की, विस्मयकारी टेक
टिकट बेचती पार्टियाँ, जनता बेचे वोट
तुमको क्या दिखती नहीं, सिस्टम की यह खोट।"

भारत में कहने को तो लोकतंत्र है, लेकिन यह तंत्र लोकहितैषी नहीं है। लोक का तंत्र से संबंध विच्छेद हो गया है। भारत का लोकतंत्र धनपशुओं का चरागाह बन गया है। कहने को यहाँ लोकतंत्र है, लेकिन वस्तुतः यह लूटतंत्र, वोटतंत्र, धनतंत्र और भ्रष्टतंत्र में तब्दील हो गया है –

"जीवन भर लूटा किया, रहा नहीं इंसान
लोकतंत्र ऐसा हुआ, वह तो हुआ महान"

भारत का लोकतंत्र अब पार्टीतंत्र बन गया है। पार्टी विजय को ही भारत विजय घोषित करने का प्रयास किया जा रहा है। राजनैतिक दलों ने लोकतंत्र को कैद कर लिया है। भारत का लोकतंत्र दलों के दलदल में फँसकर सिसक रहा है –

"दल के दलदल में फँसा, रहा आदमी सोच
लोकतंत्र के तंत्र में, बड़े-बड़े हैं खोंच
लट्ठम-लाठी कर रहे, मुद्दा बना किसान
लोकतंत्र में लट्ठ ले, बन बैठे शैतान"

नेताओं और पार्टियों का मुख्य ध्येय वोट लेना और सत्ता सुख भोगना मात्र रह गया है। वोट के लिए वे समाज में जातिवाद का विष घोलते हैं। 'मतलब केवल वोट से' शीर्षक दोहे भारतीय नेताओं के छद्म, पाखंड और पतनशील राजनीति का पोस्टमार्टम करते हैं –

"राजनीति टुच्ची हुई, जो दे ज्यादा बाँट
वह गुलाब-सा खिल उठे, जो बोये नित काँट

अच्छे की चलती नहीं, पकड़ लिए वे खाट
दुर्जन बैठा माथ पर, अजब निराली ठाट"

कवि का संवेदनशील मन किसानों की दयनीय दशा को देखकर बेचैन है। देश में किसानों की चिंता करनेवाला कोई नहीं है। स्पष्ट किसान नीति न होने के कारण किसान कर्ज लेने और आत्महत्या करने के लिए अभिशप्त हैं। कई दशकों से भारत में किसानों के नाम पर राजनीति की जा रही है। संगठनों और आन्दोलनों की पीठ से गुजरकर अनेक नेता संसद में पहुँच गए, लेकिन किसानों की दशा पर आँसू बहानेवाला कोई नहीं है। 'कौन किसानी अब करे' शीर्षक दोहे भारत के किसानों की व्यथा-कथा को वाणी देते हैं –

"नहीं समझ कोई रहा, इस किसान का दर्द
क्योंकर इसका हो रहा, मुखड़ा इतना जर्द
सब मिलकर हैं लूटते, लुटते नित्य किसान
संचालक इस देश के, बेच चुके ईमान"

'रावण का व्यापार' शीर्षक दोहों में पौराणिक पात्र रावण के माध्यम से व्यवस्था की दुर्बलताओं पर कशाघात किया गया है। इस युग में बार-बार मर्यादा की सीता का अपहरण किया जाता है, लेकिन मर्यादा रूपी सीता की रक्षा करने के लिए कोई राम नहीं आता। अब कोई राम नहीं है जो कलियुग के रावण का वध कर सके। हर कदम पर व्यवस्था का रावण आम आदमी की आकांक्षाओं को लील लेने के लिए तैयार बैठा है –

"रामराज्य की कल्पना, बस कल्पित आचार
लोकतंत्र में फल रहा, रावण का व्यापार"

हरि जी ने लालबहादुर शास्त्री, अमन चाँदपुरी, कैलाश झा किंकर आदि के प्रति अपनी काव्यमय श्रद्धा निवेदित की है। हरि जी ने शास्त्रीजी को भारत माता का सच्चा सपूत घोषित किया है –

"माँ के सच्चे पूत थे, वीर बहादुर लाल
लालबहादुर कर गए, माँ का ऊँचा भाल"

हरि जी शब्दों के मौन साधक हैं। इनकी कविताएँ सहज होती हैं और पाठकों के अंतर में उतर जाती हैं। हरि जी का पाखंडहीन जीवन और साहित्य के प्रति उनका निःस्वार्थ समर्पण वरेण्य है। संजय पंकज ने एक दोहे में हरि जी के व्यक्तित्व का सम्पूर्ण आकलन प्रस्तुत कर दिया है –

"मित्रों के हैं मित्र हरि, कविता-साधक मौन
गीत-गजल-कविता रमैं, गद्य रहे तब गौण"

हरि जी के दोहा संग्रह 'सिमट गये संवाद' के दोहों में जीवन का ताप और यथार्थ की खुशबू है। इन कविताओं में शब्द रूपी डंडे से विद्रूपताओं पर निर्मम चोट की गई है। ये दोहे कल्पना-लोक से निःसृत नहीं हुए हैं, बल्कि यथार्थ जीवन से प्रेरणा लेकर कवि ने युगीन सच्चाइयों को शब्दांकित किया है। यह कविता नहीं, बल्कि सामयिक यथार्थ का प्रतिबिंब है। दोहाकार ने जीवन की पाठशाला में बैठकर इन दोहों को आकार दिया है। हरि जी के जीवन के कटु अनुभवों ने दोहा का रूपाकार धारण कर लिया है। कवि ने सरल शब्दों के माध्यम से युग-जीवन की परतें खोल दी हैं। भाव और कला की दृष्टि से भी संग्रह के दोहे अत्यंत प्रभावशाली हैं।

सिमट गये संवाद, कवि–हरि नारायण सिंह, श्वेतवर्णा प्रकाशन, नई दिल्ली।

पीठ पर बेटियां
काकी अक्सर कहा करतीं
कि बाप की पीठ पर बेटे ही
होते हैं और बेटे ही
बनते हैं बाप का सहारा
बेटियाँ बाप की पीठ पर नहीं
होतीं! और ना ही वो बाद
में बनती हैं बाप का सहारा
कि, बहू मुझे अबकी बेटा ही
चाहिए! इसलिए भी कि वंश
आगे चल सके
और, थके-हारे, जले-भूने
मर-मर के खेतों में काम
करने वाले बाप का सहारा
आखिर बेटे ही तो बनेंगे
बेटियां, फूल-सी कोमल और
सुकुमारी होती हैं, कहाँ-कहाँ
बाप के साथ खेतों में जलेगी
फिर, बेटियां पराया धन
भी तो होती हैं
वो बाप की पीठ पर नहीं होती
बाप के सीने में कील की तरह
होती हैं
कई देवी-थानों में परसादी
से लेकर, मुर्गा-मुर्गी, खस्सी
पठरु गछती थीं काकी
छुटकु के लिए
कुछ, सालों बाद छुटकु आया
काकी, नाचती-झूमती इतराती
माँ की बलैयां लेतीं
माँ को अशीषतीं
दूधो नहाओ पूतो-फलौ
यहाँ भी पूत ही फल रहे थे
और, बेटियां हो रही थीं होम
बहुत सालों बाद जब, छुटकु
चला गया परदेश, पढ़ने
और, दादी पड़ीं खूब बीमार
इतना बीमार कि अपने से उठ
भी ना पाती थीं
और अस्पताल था गाँव से कोसों
दूर
तब, मैंने, अपनी पीठ पर
टांग कर पहुंचाया था
उनको अस्पताल
जब, काकी ठीक हो गई
तो, काकी मुझे अशीषती
आँखों से झरते आंसू
पोछती जाती
पश्चाताप के आंसू आँखों से
मोतियों की तरह झरते जाते
इस, बात का अफसोस
काकी को आजीवन रहा
कभी-कभी आत्मग्लानि से
मरकर मेरे बालों में हाथ
फेरती

महेश कुमार केशरी
द्वारा मेघदूत मार्केट फुसरो
बोकारो, झारखंड-829144,
मोबाइल– 9031991875

आलेख

डॉ. निशा जैन

समाज के नवनिर्माण में साहित्य की भूमिका

सार :– साहित्य समाज को संस्कारित करने के साथ-साथ जीवन मूल्यों की भी शिक्षा देता है एवं कालखंड की विसंगतियों, विद्रूपताओं एवं विरोधाभासों को रेखांकित कर समाज को संदेश प्रेषित करता है, जिससे समाज में सुधार आता है और सामाजिक विकास को गति मिलती है। यह निर्विवाद है कि साहित्य द्वारा समाज में परिवर्तन अवश्य लाया जा सकता है। विकृत साहित्य से समाज पतन की ओर तथा सद्साहित्य से उन्नति पर अग्रसर होता है। समाज और साहित्य में घनिष्ठ संबंध है। साहित्य की पारदर्शिता समाज के नवनिर्माण में सहायक होती है। वर्तमान समय में शिक्षा के प्रचार-प्रसार के कारण साहित्य पर्याप्त समृद्ध हो रहा है। साहित्य की पृष्ठभूमि को देखते हुए आशा बंधती है कि वर्तमान समय में जब समाज दिशाहीन हो रहा है, नैतिक मूल्यों का पतन हो रहा है, जीवन की विसंगतियाँ साहित्यकार को विरुद्ध लिखने के लिए बाध्य कर रही हैं। विचारणीय यह है कि वर्तमान में जो अच्छा लिखा जा रहा है, वह पढ़ा नहीं जा रहा और जो पढ़ा जा रहा है, वह निर्माण की भूमिका नहीं निभा रहा। आज साहित्य यथार्थ पर आधारित है, समाज निर्माण के लिए यथार्थ के साथ सकारात्मक सोच और मानव मूल्यों की स्थापना आवश्यक है। समाज के यथार्थवादी चित्रण, समाज सुधार का चित्रण और समाज के प्रसंगों की जीवंत अभिव्यक्ति साहित्य और समाज के नवनिर्माण का कार्य करती है। इसी संदर्भ में अमीर खुसरो से लेकर तुलसी, कबीर, जायसी, रहीम, निराला, प्रेमचंद तक की शृंखला के रचनाकारों ने समाज के नवनिर्माण में अभूतपूर्व योगदान दिया है। साहित्यकार समाज के प्रत्येक वर्ग के नजदीक होता है। आज आवश्यकता है कि सभी वर्ग यह समझे कि साहित्य समाज के मूल्यों का निर्धारक है और उसके मूल तत्वों को संरक्षित करना जरूरी है क्योंकि साहित्य जीवन के सत्य को प्रकट करने वाले विचारों और भावों की सुंदर अभिव्यक्ति है। साहित्य प्राचीनकाल से आधुनिक काल तक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता चला आ रहा है। समय के साथ मानव में जो परिवर्तन साहित्य कर सकता है वह और कोई नहीं कर सकता। साहित्य न केवल मानव में विवेक जाग्रत करता है अपितु राष्ट्र के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

प्रस्तावना :– मानव एक चिन्तनशील प्राणी है। वह समाज में जो देखता है, उस पर चिन्तन करता है, फिर उसे अपनी अभिव्यक्ति प्रदान करता है। वर्तमान समय में नित नवीन आविष्कारों एवं भौतिक संसाधनों की अभिवृद्धि के कारण जहाँ मानव रंगीन स्वप्नों के संसार में खोया हुआ है, वहीं दूसरी ओर समस्त विश्व ऐसे वीभत्स, भयावह, विनाशकारी आतंकवाद के शिकंजे में फँस गया है जिसके कारण संपूर्ण मानवता भयाक्रान्त है। साहित्य समाज को संस्कारित करने के साथ-साथ जीवन मूल्यों की भी शिक्षा देता है। हितेन सहितम् साहित्यम, साहित्यस्य भावः साहित्यम् अर्थात् जिसमें हित की भावना सन्निहित हो, उसे साहित्य कहते हैं। साहित्य जीवन की सच्ची अभिव्यक्ति है। साहित्य के अवलोकन से हमें समाज के आचार-विचार, उतार-चढ़ाव, सभ्यता-संस्कृति आदि का स्पष्ट परिचय प्राप्त होता है। साहित्य का दायरा असीमित है जिसके अन्तर्गत संस्कृति, समाज, विज्ञान, राजनीति, अर्थशास्त्र, पर्यावरण सभी आ जाते हैं। ऐसे में आज साहित्यकार का कर्तव्य पूर्व से अधिक बढ़ गया है क्योंकि अब ज्ञान एवं जीवन के जटिल व्यापारों का अत्यधिक विस्तार हो रहा है। साहित्यकार अपने समय, स्थान, परम्पराओं एवं परिवेश से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता।

विश्व साहित्य का अनुशीलन करने से प्रतीत होता है कि साहित्य दो तरह का होता है सार्वकालिक साहित्य और समकालीन साहित्य। सार्वकालिक रचना शाश्वत होती है, जिस पर भूत, भविष्य और वर्तमान का कोई प्रभाव नहीं होता किन्तु समकालीन समय में साहित्य को संघर्षों, उद्देलनों, दस्तकों और आलोचनाओं को झेलना और विवशताओं से लड़ना होता है। मानवीय संवेदनाओं से ओत-प्रोत सशक्त रचना कालजयी होकर एक स्थान पर ठहर जाती है और पीढ़ी-दर-पीढ़ी जनता उसका आस्वादन कर संरक्षण पाते हैं। ऐसी ही महान् कृतियाँ एक बार जन्म लेने के पश्चात् अपने दायरे में सीमित नहीं रहती, वे समय और ऐतिहासिक, भौगोलिक सीमाओं को लांघकर संपूर्ण विश्व की शक्ति बन जाती है।

तुलसीदास हिन्दी साहित्य के जगमगाते नक्षत्र हैं, उन्होंने अपने युग की वास्तविक परिस्थितियों का संपूर्णता से अध्ययन, मनन और चिन्तन किया था। रामचरितमानस् के माध्यम से अनेक आदर्श प्रस्तुत किये हैं। तुलसी ने एक आदर्श समाज एवं आदर्श धर्म की प्रतिष्ठा की है। पात्रों के आदर्श चित्रण द्वारा लोकहित एवं लोकमंगल की शिक्षा देते हुए सम्पूर्ण विश्व के मानवों के सम्मुख आदर्श जीवन की रूपरेखा प्रस्तुत की है। दुष्टों के दलन एवं भक्तों के उद्धार हेतु राम की अवतारणा की है। रामचरितमानस में शाश्वत साहित्य के लिए अनिवार्य सभी गुण विद्यमान हैं। शासक के कर्तव्यों का विवेचन करते हुए भी उन्होंने लोककल्याण की भावना को ही प्रधानता दी है।

"जासु राज्य प्रिय प्रजा दुखारी, सो नृप अवसि नरक अधिकारी।"

इस प्रकार कवि ने एक ओर प्रजा को सचेत किया है तो दूसरी ओर प्रजा पर अत्याचार करने वाले शासक को भी सचेत किया है। तुलसी ने अपने समय की जनता के हृदय-से-हृदय मिलाकर उसके आन्तरिक भावों की अभिव्यक्ति की है।

कबीर का काव्य आज भी प्रासंगिक है। ये एक कांतिपुरुष हैं जिन्होंने समाज के भीतरी और बाहरी दोनों पक्षों को आक्रमण का निशाना बनाया। इन्होंने देखा कि व्रत, रोजा और नमाज आदि बाहरी आडम्बरों के कारण हिन्दू और मुसलमान आपस में लड़ते-झगड़ते रहते हैं।

"पाहन पूजै हरि मिलें, तो मैं पूजूँ पहार,
ताते ये चाकी भली, पीस खाय संसार।"

कबीर ने गूढ़ दार्शनिक विवेचना में फँसने का यत्न नहीं किया, उन्होंने देखा कि मूलरुप में सब धर्म मनुष्यता, दया, परोपकार, दानशीलता, ईश्वर भक्ति, मानवीय प्रेम एवं सहयोग तथा शांति में विश्वास करते हैं, लेकिन धर्म के बाह्याचरण एवं पूजा-आराधना के प्रकारों को लेकर ही सारा विवाद एवं वैमनस्य है, अतः उन्होंने हिन्दुओं एवं मुसलमानों के उन सभी बाहरी दिखावे की निन्दा की जो मनुष्यता के विरुद्ध जान पड़ते हैं।

"कांकर पाथर जोरि के, मस्जिद लई बनाय
ता चढ़ि मुल्ला बांग दे, का बहरा भया खुदाय।"

जयशंकर प्रसाद की कामायनी एक ऐसा महाकाव्य है जो जीवन जीने की कला सिखाती है। कामायनी का प्रेरक तत्व जीवन के अर्थ की खोज

है जो इस महाकाव्य का प्रतिपाद्य विषय है शाश्वत सत्य, सत्-असत्, वस्तुओं के संघर्ष में सौन्दर्य की झलक, लोकहित और लोकानुरंजन के समन्वित रूप की प्रस्तुति और सौन्दर्योन्मुखी वृत्ति। सम्पूर्ण विश्व के लिए यह आज भी प्रासंगिक और उपादेय है। श्रद्धा सर्ग की पंक्तियाँ आज भी सम्पूर्ण विश्व को मानवता के सूत्र में पिरोकर शांति का पाठ पढ़ाना चाहती हैं।

"शक्ति के विद्युत कण जो व्यस्त विकल बिखरे हैं,
हो निरुपाय समन्वय उसका करें समस्त विजयिनी मानवता हो जाय।"

इस महाकाव्य में इड़ा बुद्धिवादी संस्कृति की प्रतीक है और श्रद्धा हृदयवादी की। श्रद्धा के उदार, पवित्र चरित्र से प्रभावित होकर नायक मनु के समक्ष परम सत्य का मार्ग प्रशस्त होता है। कामायनी का सत्य मानव मूल्यों पर आधारित है, जिन्हें अपनाकर मानव जीवन पथ पर सफलतापूर्वक आगे बढ़ सकता है।

कामायनी का नायक मनु स्वार्थ, संकीर्णता, भय और अशांति की स्थिति में श्रद्धा के सहारे ही सेवा, संयम, दान, धर्म और त्याग की ओर अग्रसर होता है। महाकाव्य मार्ग पर निरंतर चलते हुए वह शिव में परिणत हो जाता है, यही शिव अथवा शिवत्व जीवन है।

कामायनी में शाश्वत सत्यों का भरपूर उदाहरण है। श्रद्धा उनके सम्मुख दया को जीवन का केन्द्र बनाने पर बल देती है। उसका मानना है कि प्रकृति देती है, इसलिये सदा सम्पन्न रहती है, आकाश के ऊर्जा प्रदान करने से हम सचेतन बने हैं। प्रकृति के इस उदारवादी दृष्टिकोण के परिणामस्वरूप ही हमारा अस्तित्व है।

"औरों को हँसते देखो मनु हँसो और सुख पाओ,
अपने सुख को विस्तृत कर लो सबको सुखी बनाओ।"

साहित्य द्वारा समय में परिवर्तन–समाज निर्माण की प्रवृत्ति लगभग 500 वर्ष पूर्व तुलसीदास कृत रामचरितमानस में दिखाई देती है। उस स्तर का क्रांतिकारी महाकाव्य आज तक हमारे सामने उभर कर नहीं आया है। कबीर, रहीम का समाज में व्याप्त अंधविश्वास और सड़ी-गली मान्यताओं, रुचियों आदि को दूर करने में पर्याप्त योगदान रहा है। साहित्य अतीत से प्रेरणा लेता है, वर्तमान को चित्रित करता है और भविष्य का मार्गदर्शन करता है। प्रेमचन्द का किसान, श्रमिक चित्रण उस पीड़ा व संवेदना का प्रतिनिधित्व करता है जिनसे होकर आज भी शोषित वर्ग त्रस्त है। साहित्य की सार्थकता इसी में है कि वह किसी सूक्ष्मता और मानवीय संवेदना के साथ सामाजिक अवयवों को उद्घाटित करता है। साहित्य संस्कृति का संरक्षक और भविष्य का पथ-प्रदर्शक है। संस्कृति द्वारा संकलित होकर ही साकहत्य लोकमंगल की भावना से समन्वित होता है। पंत की पंक्तियाँ इस संदर्भ में कहती हैं –

"वही प्रज्ञा का सत्य स्वरूप हृदय में प्रणय अपार,
लोचनों में लावण्य अनूप लोक सेवा में शिव अधिकार।"

वर्तमान समय में शिक्षा के प्रचार-प्रसार के कारण अनेक व्यक्ति साहित्य का सृजन कर रहे हैं। आज का साहित्यकार व्यावसायिक हो रहा है। उसे समाज और देश से अधिक चिन्ता अर्थ की है। अर्थ और राजनीति ने अपने साथ काम को भी लपेट लिया है। विलासिता युक्त जीवन जीने की चाह ने मनुष्य को स्वयं के दायरे में समेटते हुए मान-मर्यादाओं एवं कर्तव्यों से विमुख कर स्वार्थी बना दिया है। स्वार्थ से प्रेरित और स्वभाव से विवश चरित्र और संस्कार के अभाव से अवश आपाधापी के संकीर्ण रास्तों में खोये हुए हम भूल जाते हैं अपने देश, समाज और परिवार को।

आज की उपभोक्तावादी संस्कृति ने व्यक्ति को आत्मकेन्द्रित बना दिया है, परिणामस्वरूप उसकी सोच संकीर्ण हो गई है। नैतिक मूल्यों का पतन हो रहा है, साथ ही मानवीय संवेदनाएं लुप्त हो रही हैं। दिन-दहाड़े होने वाले अमानुषिक कृत्य हिंसा, अशोभनीय घटनाएं शायद अब मानव मन को विचलित नहीं करती। मूल्यहीनता के इस वातावरण में मानव में सहयोग, सद्भाव, संवेदना और भाईचारे के स्थान पर असहयोग, अलगाव, असंवेदना तथा पारस्परिक विद्वेष पनपता जा रहा है। व्यावसायिक पत्रिकाओं ने, स्तरहीन समाचार पत्रों ने हमारी भाषा को रुग्ण बना दिया है और परिवेश को हाशिए पर पटक दिया है। आधुनिक परिवेश में साहित्यकार के समक्ष अनेक चुनौतियां हैं, अनेक समस्याएं हैं जिनका सामना साहित्यकार कर रहा है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् देश नित नवीन समस्याओं से घिरने लगा है, तब साहित्यकारों ने उन समस्याओं को लेकर अपनी लेखनी चलाई, विभाजन समस्या, धर्म के नाम पर खून-खराबा, स्त्री-पुरुष संबंध, संयुक्त परिवार का विघटन, नारी मुक्ति, नारी शोषण, तलाक से त्रस्त बच्चे आदि विषयों पर विचार-विमर्श हुआ। लेखक सदैव देश और समाज की स्थितियों से प्रभावित होकर ही लिखता है। आवश्यकता है नैतिक मूल्यों को समाहित किये एक वीर राष्ट्र द्वारा कर्मठ और ईमानदार राष्ट्र की छवि प्रस्तुत करने वाले साहित्य की, जिसे पाकर पाठक सादा जीवन उच्च विचार अपनाते हुए सत्य पर चलने वाले नागरिक बन पाये।

यदि हमारा साहित्य उन्नत है, समृद्धिशील है तो हमारा राष्ट्र भी विकसित होगा। राष्ट्र के जीवित रहने में साहित्य की अहम् भूमिका है। 'मुर्दा है वह देश जहाँ साहित्य नहीं है'। राष्ट्र के निर्माण में महिलाओं की भी अहम् भूमिका रही है। आजादी के समय से लेकर आज तक समाज व राष्ट्र के नव निर्माण में नारी ने पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर सक्रिय योगदान दिया है। महिलाओं की शक्ति को कभी कम नहीं गिना जा सकता। एवरेस्ट चढ़ने से लेकर अंतरिक्ष में उड़ान भरने वाली व देश की एकता में भागीदारी कर महिलाओं ने नारी शक्ति का गौरव बढ़ाया है।

महिला की क्षमता को अनदेखा करके समाज की कल्पना करना बेमानी होगा। शिक्षा और महिला सशक्तिकरण के बिना परिवार, समाज और देश का विकास संभव नहीं है। सुभद्रा कुमारी चौहान, महादेवी वर्मा, सरोजनी नायडू, उषा देवी मित्रा आदि कई लेखिकाओं ने अपने समय को अभिव्यक्ति दी है। स्वतंत्रता के बाद नारी लेखन में मुक्ति के स्वर उभरे हैं। वह नारी जिसे पुरुषों ने या तो सती-सावित्री का रूप दे रखा था या उसके स्वप्नलोक में स्त्री बस एक खुशबूदार देह थी, जिसके अंदर भावना नहीं थी, उस नारी ने अपनी पारंपरिक छवि को तोड़ा, नारी ने ही नारी की पीड़ा को शब्द दिये, उसके जीवन को, व्यथा कथा को समझा और शब्दों में अभिव्यक्त किया। दाम्पत्य जीवन के बदलते संबंध, पारिवारिक मूल्यों व मान्यताओं में बदलाव, परिवेश के प्रति सजगता, अन्याय का प्रतिरोध नीति-अनीति, घर और बाहर के दोहरे बोझ से संघर्ष इन सब तत्वों ने साहित्य के नये यथार्थ को देखा।

आज उपर्युक्त स्थितियों में भी धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के पारंपरिक मूल्यों के साथ साहित्य में भारतीय संस्कृति नैतिकता, ईमानदारी, सत्य, अहिंसा के साथ ईश्वर के अस्तित्व को भी पूर्ण रूप से देखा जा सकता है, यही वर्तमान साहित्य में नव निर्माण की भूमिका है।

चित्रण

संत दासोपंत

प्रो. डॉ. बायजा कोटुले
हिन्दी विभागाध्यक्ष, वसुंधरा महाविद्यालय घाटनांदूर,
ता. अंबाजोगाई, जिला–बीड, महाराष्ट्र,
मोबाइल–9420652970, 7020484470

अपना भारत देश पूण्यवंत संतों की जन्मभूमि और कर्मभूमि है। महाराष्ट्र में बहुत ऋषि-मुनियों ने साधना की। इसीलिए महाराष्ट्र संतों की भूमि के रूप में प्रसिद्ध है। दासोपंत महाराष्ट्र के मराठी साहित्य के प्रसिद्ध साहित्यिक संत कवि थे। दासोपंत मराठी भाषा के इतिहास में सबसे ज्यादा लेखन करने वाले संत कवि हैं। उनका जन्म भाद्रपद कृष्ण अष्टमी के दिन हुआ। वे संत एकनाथ के समकालीन थे। दासोपंत श्री दत्तप्रभु के निस्सीम भक्त थे। उन्हें संत सर्वज्ञ दासोपंत ऐसा भी कहा जाता था।

सोलहवीं-सतरहवीं शती के नाथपंचक अर्थात् संत एकनाथ जनी जनार्दन, रामा जनार्दन, विठा रेणुकानंदन और संत सर्वज्ञ दासोपंत यह थे। दासोपंत ने उम्र के पाँचवें वर्ष में उपनयन होते ही चारों वेद मुखपठन करके दिखाया था। दासोपंत के चरित्र का उल्लेख प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है। जैसे कि, "अंबाजोगाई के केशव कवि के 'एकनाथचरित्र' में, दिनकर कवि के 'भक्तमंजरी' में उनके जीवन का संदर्भ मिलता है।" उपलब्ध साहित्य से ज्ञात होता है कि दासोपंत मूल रूप से बीदर अर्थात् नारायणपेठ के रहनेवाले थे। वहाँ से उन्होंने उम्र के सोलहवें वर्ष में भगवान को पाने की तीव्र इच्छा से घर छोड़ दिया। घर छोड़कर वे हिलालपुर, डाकोलगी, प्रेमपुर, नंदिग्राम, नांदेड से मातापूर आदि जगह रहे। बाद में उन्होंने बारह वर्ष तपश्चर्या की। वे फिर से डाकोलगी और वाणी संगमी में कुछ दिन रहकर अंबाजोगाई में आकर स्थायिक हुए।

संत दासोपंत के संदर्भ में एक कहानी कही जाती है कि महाराष्ट्र के बीदर शहर में एक यवन नामक राजा राज्य कर रहा था, उसके राज्य में दासोपंत के पिता दिगंबरपंत खजिनदार थे। वह बहुत ईमानदारी से अपना काम करते थे। कहा जाता है कि एक बार उस राज्य में बहुत बड़ा अकाल पड़ा, लोगों को रोटी-पानी न मिलने के कारण तड़पते हुए मरने लगे थे। यह सब दिगंबरपंत नहीं देख पा रहे थे और उनके पास इतनी संपत्ति तो थी नहीं जिसके कारण वे पूरे लोगों में बाँट सके। इसलिए उन्होंने राजा का भंडार खोला और लोगों को अनाज और पानी दे दिया। लोगों को सुकुन मिला, पर राजा को अच्छा नहीं लगा। इसलिए दिगंबरपंत पर चोरी का इलजाम लगाते हुए उन्हें कैद किया, और बताया कि भंडार में से दो लाख रुपये का नुकसान हुआ है। वह देने के बाद ही तुम कैद से मुक्त होगे। दिगंबरपंत ने सभी रिश्तेदारों को बताया लेकिन किसी ने मदद नहीं की, दिगंबरपंत ने राजा से कहा, 'गाँव से आपके रुपये ला कर दो महीने में भर देता हूँ। मुझे इजाजत दो...' वह ईमानदार है यह राजा जानता था, फिर भी आपको मेरे पास कुछ तो गिरवी रखना होगा ऐसा राजा ने कहा। इसीलिए दिगंबरपंत अपनी खेती को गिरवी रखने के लिए तैयार हुए और अपने पुत्र दासो को खेती के कागज लेकर बुलाया। दासोपंत का तेजस्वी चेहरा देखकर राजा का मन पिघला और उसने दासो को कहा तुम्हारे पिता ने गुनाह किया है, उसकी कीमत तू क्यों भरेगा? तब दासोपंत ने जवाब दिया, 'लोगों को खाने के लिए दिया, यह गुनाह नहीं हो सकता क्योंकि वह अनाज लोगों का ही था। फिर भी आप कह रहे हैं तो दो महीने में आपके रुपये भर देता हूँ और तब तक मैं आपके पास नजरकैद के रूप में रहता हूँ। फिर राजा ने कहा कि दो महीने में अगर मुद्रा नहीं लौटा पाये तो 'दासो को मुस्लिम किया जायेगा'। यह शब्द सुनते ही दिगंबरपंत पर एक तरह का आघात ही हुआ। उन्हें कबूल था कि उन्होंने बहुत बड़ी भूल की है, पर उसकी सजा इतनी बड़ी होगी यह सोचा नहीं था। अभी-अभी शादी हुए युवा बेटे को स्वयं के हाथों से राक्षस के हाथ में दे रहा हूँ, ऐसा उन्हें लग रहा था। पर अब कोई उपाय नहीं था। इतनी बड़ी रकम वह भर नहीं सकते थे।

दासो बादशाह के नजरकैद में था। वह हर दिन झरणीनृसिंह को जाता और वहाँ स्नान-संध्या आदि किया करता था। बादशाह के भोजन आदि के लिए दिये पैसे ब्राह्मण को दान करके लौट आता था। उसके तरफ लोग करूणा की दृष्टि से देखते थे। अब वह तेजस्वी लड़का मुस्लिम होगा इसका दुःख भी उन लोगों को होता था। पर बादशाह के आगे किसी की नहीं चलती थी। दो महीने पूरे हुए, अंतिम दिनों में इधर दासो ने और उधर दिगंबरपंत और दासो की माँ पार्वतीबाई ने अब आशा छोड़ दी थी, दासोपंत अपने सात पीढ़ी से रहे कुलदेवता 'श्री दत्तात्रेय' को अंतर मन से पुकारता था। और अंतिम दिन में सूर्यास्त के समय हाथ में लकड़ी, शरीर पर मुंडास, कंधों पर घोगडी ऐसा वेश परिधान करके 'दत्ताजी पाडेवर' नामक व्यक्ति बादशाह के सामने हाजिर हुआ। 'मैं दिगंबरपंत का सात पीढ़ी से सेवक हूँ। मेरा नाम दत्ताजी पाडेवार मुझे दिगंबरपंत ने यह मुद्रा लेकर भेजा है।' ऐसा कहकर हाथ में दो लक्ष मुद्रा की चंची बजाते हुए उनके सामने डाली, और मुद्रा मिलने का कागज मांगा वह कागज लेकर वहाँ से गया। यह बात दासो को पता चली और वह समझ गया कि वह कोई सामान्य व्यक्ति न होकर स्वयं 'श्री दत्तात्रेय' थे। मैं कितना अभागा था कि श्री दत्तात्रेय का दर्शन नहीं कर सका और बादशाह कितना भाग्यवान उसको श्री दत्ता का दर्शन हो गया। मुद्रा मिलने के बाद बादशाह ने दासो को पालकी में बिठाकर भेज दिया। लोग भी बहुत खुश हुए। दिगंबरपंत और पार्वतीबाई भी खुशी से विभोर हो गये। पर खुश दिखनेवाला दासो अंदर से अस्वस्थ था। अब दासो को श्रीदत्ता के दर्शन की आस लगी, श्रीदत्ता के दर्शन के लिए व्याकुल होकर संसार का त्याग करके घर छोड़कर निकल गये। कुछ दिन यात्रा कर माहूरगढ़ में उन्होंने बारह वर्ष तपश्चर्या करके ज्ञानयोग की सिद्धि प्राप्त की।

दासोपंत को घर छोड़े बारह वर्ष हो गये। इसीलिए पार्वतीबाई दासो की पत्नी जानकी को विधवा की विधि करने के लिए वाणीसंगम पर लेकर आई। वहीं व्याघ्रेश्वर के मंदिर में 'दासोपंत' बैठे थे। उसने उन लोगों को पहचान लिया और यह कृत्य करने से रोकने के लिए संदेश भेजा। यह

संदेश किसने भेजा यह देखने के लिए और उनसे मिलने के लिए सभी लोग व्याघ्रेश्वर के मंदिर में आये। जानकी ने दासोपंत को पहचाना, सभी की पुनः मुलाकात हो गई।

दिगंबरपंत ने अपनी 'नारायणपेठी रही जहाँगिरी' अपने कारभरी के नाम कर दी और बाद में दासोपंत सभी को साथ लेकर अंबाजोगाई में गाँव के बीचों-बीच गणपति मंदिर में रहने लगे। सितोपंत गाँव के बड़े आदमी थे, वे पालकी में बैठकर देवी के दर्शन के लिए निकले। उन्होंने एक मन्नत की थी, "मुझे नजर से जो समाधि लगवायेगा उसी को मैं गुरु करूँगा।" दासोपंत और सितोपंत की नजरा-नजर हुई और सितोपंत बेहोश हो गये। सितोपंत जब शुद्धि पर आये तो उनका सर दासोपंत के चरणों पर था। सितोपंत ने दासोपंत को गुरु के रूप में स्वीकारा। बाद में सितोपंत ने उनके रहने की व्यवस्था की। आज के 'छोटे देवघर' अर्थात् दासोपंत का साक्षात् घर है। दासोपंत अपने नित्य कर्म करके नियमित लेखन करते थे। उन्होंने 20-25 वर्ष नियमित लेखन किया है। उनको एक ढबुभर पैसे के वजन के बराबर की शाई लगती थी, ऐसा कहा जाता है। माघ वदी षष्ठी शके 1537 को समाधिस्थ होकर श्री दत्त-स्वरूप में विलीन हुए। अंबोजोगाई में नृसिंहतीर्थ पर उनकी समाधि है।

संत दासोपंत का साहित्य :– संत दासोपंत मराठी साहित्य के प्रसिद्ध कवियों में से एक प्रसिद्ध कवि हैं। अपने उम्र के उत्तरार्द्ध में उन्होंने सवा लाख पद के 'गीतार्णव', सवा लाख 'पदार्पण', नउ हजार पद की 'गीतार्थबोधयंद्रिका', इसके अतिरिक्त 'उपासना' और 'संप्रदाय' नियमित रूप से चलने की दृष्टि से लिखे, भारूडे, पदे, ललिते, आरत्या, स्रोते, अष्टके नामावल्या आदि स्फुट लेखन भी किया है। 'पासोडीपर पंचीकरण' यह ग्रंथ तो मराठी साहित्य का एक चमत्कार ही कहा जायेगा। इसके अलावा मराठी ग्रंथसंपदा के साथ दशोपनिषद् पर और वेदांत ग्रंथ पर संस्कृत भाष्य और टीका उन्होंने लिखी है। "उनके प्रचंड साहित्य रचना को देखते हुए सही अर्थों में उनको मराठी साहित्य का कुबेर ही कहना पड़ेगा।"

सवा लक्ष पदों की टीका अर्थात् 'गीतार्णव'। गीता श्लोक पर स्वयं भाष्य और परमार्थ निरूपण या मुख्य विषय भूमिका स्वीकार करके विवेचनात्मक चिंतन करने वाले निबंध हैं। गीतार्णव में दासोपंत निबंधकार, प्रबोधनकार, कहानीकार के रूप में सामने आते हैं। दासोपंत गीता के श्लोक के निरूपण में रूढार्था से अलग अर्थ दिये हैं। गीतार्णव के निवेदन में बहुत विषय को सामने लाये हैं। शिवकालखंड पूर्व राजनीति विचार, कृषि धर्म, वाणिज्य धर्म, युद्ध, राजधर्म, लोकधर्म, शत्रु, मित्र ऐसे अनेक, विषय पर तात्विक विवेचन दासोपंत ने किया है। दासोपंत ने लिखा है, "राज्य है तो श्रीचे वरदान"। आगे समर्थ ने 'राज्य व्हावे ही श्रींची इच्छा' इसी शब्द में लाई। एकध्यायी गीता कही जानेवाली अठारह अध्याय पर 18000 पद लिखे हैं। गीतार्णव में विभिन्न विषय पर शास्त्रीय, तात्विक और मार्मिक चिंतन पर दासोपंत को ज्ञान अवगत था।

'गीतार्थबोधचंद्रिका' यह संक्षिप्त (8889 पदों की) टीका लिखी, "मागा गीतार्णव रचिले। ते समुद्रचि होउनि गेले। न वाचेचि कवणा उल्लंघील, शब्दार्णव।' इस पद द्वारा दासोपंत ने सामान्य लोगों की खुशी को सामने रखकर यह लघु टीका लिखी। गीतार्थबोधचंद्रिका में गीता के श्लोक पर संस्कृत भाष्य करके आगे प्राकृत निरूपण किया है।

'ग्रंथराज' यह गुरु-शिष्य के संवाद पर लिखी रचना है, जो हर एक व्यक्ति को पढ़नी चाहिए। योग संपत्ति यह 'ग्रंथराज' का मुख्य विषय है। गुरु-शिष्य संवाद के द्वारा इसमें तत्वज्ञानात्मक विवेचन दासोपंत ने किया है। इसी ग्रंथ के आधार पर बाद में समर्थ रामदास ने 'दासबोध' ग्रंथ लिखा है। 'सिद्धराज आगम' नामक इस ग्रंथ में गुरुपरीक्षा, शिष्यपरीक्षा, गुरुदर्शन, यंत्रपूजा, मानसिक पूजा कालनियम, कर्म, इसके साथ श्री दत्तं के सोलह अवतारों का विवेचन किया है।

'प्रबोधोदय' (पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध) यह मुमुक्षू के लिए लिखा हुआ ग्रंथ। वाक्यवृत्ति (गद्यात्मक और पद्यात्मक), सार्थगीता, स्थूलगीता, अवधूतगीता, पंचीकरण प्रबोध या प्राकृत रचना साथ ही प्रणव व्याख्या, पुरुषसुक्तार्थप्रकाश, गायत्रीमंत्र, भाष्य, दत्तात्रेयमाहात्म्य, सिद्धराजागमब प्रक्रिया गुरुप्रसाद, अद्वैतश्रुतिसार, गीतार्थबोध, उपनिषदार्थ प्रकाश या संस्कृत ग्रंथकृति ग्रंथसूची दिखाई गई है, पर आलोचकों को यह रचना देखने को नहीं मिली। इसके अलावा अनेक स्तोत्र, पुजाविधि दत्तात्रेय सहस्त्रनामावली, दत्तात्रेय दशनाम्, द्वादशनाम, शतनाम, गीतार्थप्रबंध स्त्रोत, शिवस्त्रोत, शोडस्त्रोत, शितज्वरनिवारण स्त्रोत, दत्तात्रेय नामावली, महापुजा, वैदिक पूजा, सिद्धमाला, शोडषवतार प्रादुर्भाव स्त्रोत, षडयंत्र आदि स्फुट रचनाओं की सूची मिलती है।

पासोडी :– विश्व की पीठ पर दासोपंत की पासोडी के समान कोई कलाकृति नहीं है। ऐसा विद्वानों का मानना है। दासोपंत ने चालीस फीट लंबा और चार फीट रूंद ऐसी पासोडी पर (एक तरह का कपड़ा), 'पंचीकरण' यह अध्यात्म विषय का प्रतिपादन किया है। आत्मज्ञान का विषय चित्रमय पद्धति से सुकर, सुबोध, सरल रीति से पासोडी में लिखा है। अश्वातवृक्ष, एकमुखी षडभुजधारी दत्त मुर्ती, शंख, चक्र, माला, कमंडलु, त्रिशुल, हंस, जीवचक्र आदि चित्र रूप से पद्यबद्ध लिखा हुआ दिखाई देता है। चित्र में से उसका कार्यकरण भाव स्पष्ट होता हुआ दिखाई देता है। पहले पद या पहले चित्र यह तय करना विद्वानों के लिए एक तरह का आह्वान है। दासोपंत के रेखाचित्र देखने के बाद लगता है कि वे चित्रकार भी थे। 'पासोडी' अर्थात् 'चित्रवाङमय, चित्रकला और 'वाङमयकला' यह दो कला का सुंदर संगम है ऐसा कहना पड़ेगा। वाङमय कलाकार के रूप में दासोपंत ने पासोडी के समान अभिव्यक्त माध्यम का प्रयोग किया और उस माध्यम से उस पर निकाले गये चित्र-वाङमय पद्धति सृजनात्मक ही कहनी पड़ेगी। दासोपंत ने अध्यात्मज्ञान बताया वह भी कलात्मक रूप से, दासोपंत ने साहित्य शारदा को अर्पण की हुई पैठण अर्थात् पासोडी की निर्मिती अंबाजोगाई के दत्त मंदिर छोटे देवघर में हुई। इस प्रकार की कलाकृति की निर्मिती के लिए अंबाजोगाई की सांस्कृतिक क्षेत्र के उच्ची अभिरूचि और उसी समान उच्चा कलाकार इन दोनों की मुलाकात हुई, यही सच्च!

पदार्णव :– पदार्णव यह सव्वालक्ष पदों का 'अर्णवच'! इसमें ओवी, अभंग, पद, गवलण, पालणा, आरती, रोजारती, नामावली, विरहिणी, चौचरणी,

प्रबंध, धवले हिदोंला कूट जाति, ध्रुवा ऐसे विविध आकृतिबंध के बहुत रत्न, हीरे, मोती, मिलते हैं। आज सिर्फ 2500 पद ही उपलब्ध हैं। उसमें अनेक भाषा के पद दिखाई देते हैं। पदार्ण के पद विभिन्न विषय से सम्पन्न हैं। अर्थात् श्री दत्त पदों की आत्मा होकर वह प्रियकर, पिता, माता, बंधु, सखा, गुरु सब कुछ है। अनेक भावानुभाव व्यक्त होनेवाली रचना में विरहिणी की रचना विलक्षण लगती है। दत्त सम्प्रदाय में विरहिणी की रचना करनेवाली श्री दत्त की पहली प्रियसी अर्थात् दासोपंत थे। अनेक पदों में से शुद्ध भक्तिभाव, वत्सलभाव, मधुराभाव, क्षमायाचना का भाव आदि व्यक्त होते हैं। सगुण-निर्गुण का वर्णन, तत्वचिंतन, अध्यात्म यह तो है ही साथ ही लेकर चलनेवाली गुरुमहिमा को व्यक्त करनेवाली, जनसंवाद, शैव-वैष्णव तथा नामगुणसंकीर्तन का ललित पद, समाज प्रबोधन के लिए दासोपंत ने लिखे हैं। इन सभी का प्रयोजन सामान्य लोगों के लिए ही था, यह ध्यान में आता है।

दासोपंत की दक्ष सम्प्रदायी दत्तोपासना :– दासोपंत के सम्प्रदाय में एकमुखी षडभुजधारी दत्तमुर्ति, दत्त के चरणों की पूजा प्राचीनकाल से आज तक वैशिष्टयपूर्ण होती है। दत्तमाहात्म्य में दासोपंत ने श्री दत्त के सोलह अवतारों का वर्णन किया है और उनका सोलह जन्मोत्सव मनाया जाता है। माघशीर्ष शुद्ध षष्ठी को दत्तात्रेय के नवरात्र का आरंभ होता है और माघशीर्ष पूर्णिमा को उसकी समाप्ति की जाती है। नौ दिन अभिषेक, षोडशोपचार पूजा, दासोपंतकृत पदगायन पद्धति के साथ कीर्तन, प्रवचन मंत्रघोष मंत्रानु-पठन और 'आनंदे दत्तात्रेय देव देव सर्वज्ञ दासोपंत स्वामी महाराज की जय।' इस नामघोष की गर्जना अखंड कानों में गूंजती है। इस सम्प्रदाय में यंत्रपूजा का बहुत महत्व है। श्री दत्तात्रेय की बीजमंत्राक्षरे ताम्रपट पर रेखांकित होते हुए सोला पंककुडी से षोडषदल यंत्र यह अवतार यंत्र साथ ही अत्रिपंचक और आदि गुरुयंत्र (चौरस) इनकी पूजा मंत्रानुष्ठान से होती है। एकादशी से पूर्णिमा को देवघर के पास ही दत्तात्रेय पालकी की मिरवणूक निकाली जाती थी। इस मिरवणूक के दरम्यान दासोपंत द्वारा लिखित मिरवणूक के पदों का गायन किया जाता था। चतुर्दशी और पूर्णिमा दो दिन में जन्मोत्सव होता है। पूर्णिमा के जन्म के बाद श्री दत्तामूर्ति के सामने बड़े-बड़े सभागार के नीचे रंग पर दासोपंत कृत ललित यह लोकनाट्य के समान अविष्कृत कला का प्रकार दिखाया जाता था।

ललिते :– ललित से उन्होंने विभिन्न रूपक का सृजन किया। जैसे कि 'गोंधल', 'जोगवा', 'भुत्या', 'दिवटया', 'गौलण', 'मुंठे', 'हिजडे', 'गारूड', 'सकालशेटी', 'वैरागी', 'बैरागन', 'जोगी', 'जोगण', 'बाल-संतोष', 'वासुदेव', 'पीर-फकीर', 'मामी' आदि। लोकसंस्कृति के उपासक पर आधारित ललित पदे, पंथीपंथ के उपासना मार्ग पर साधक पर ललितपदे, कर्म विधि पर ललित पदे, विभिन्न व्यावसायिक पर ललितपदे, पारिवारिक रिश्तों पर ललित पदे आदि का समावेश होता है।

संपादकीय के विषय तत्कालीन परिस्थिति के समान सामाजिक, धार्मिक, राजकीय होने चाहिए ऐसा लगता है। 'देवघर के रंगमंच पर अभिव्यक्त होने वाला यह चरित्र बहुजन से लेकर अभिजन तक सभी के मनोरंजन और प्रबोधन करनेवाला है।' 400 साल पुरानी देवघर रंगमंच पर से नाटक प्रसारित हुए। वे संगीत नाटक के स्वरूप में होते थे।

संगीत :– दासोपंत के दक्ष संप्रदाय में उपासना परम्परा में पदसंगीत का अनन्य महत्व था। उनके पदार्णव अर्थात् नाट्यसंगीत, नृत्य इनका भरमार ही था। पदार्णव के पद में दासोपंत के संगीत का आधार है। अभिजात, उपशास्त्रीय और सुगम संगीत के रूप में यह रचना है। अभिजात संगीत पर आधारित रचना में रागाधारित विभिन्न पद रचना प्रबंध चतुरंग प्रबंधचौताल, प्रबंध जाति, रागमाला, विलंबित ताल की रचना आदि का समावेश है। कुल 86 राग और ग्यारह ताल का उल्लेख उपलब्ध 'पदार्णव' के पदों में दिखाई देता है।

मध्युगीन संगीत शास्त्र के ग्रंथ में तानसेन का दरबारी संगीत का उल्लेख मिलता है, लेकिन उसी समय के दासोपंत के मंदिर परम्परा के प्रबंध गायकी का उल्लेख नहीं मिलता, यह हमारा दुर्भाग्य है। शास्त्रीय, उपशास्त्रीय संगीत पर आधारित बहुत रचनाएं हैं। साथ ही सुगम रचना भी दिखाई देती है। 400 साल पुरानी दासोपंत की मंदिर परम्परा की संगीत उपासना अर्थात् मराठावाडा के अंबाजोगाई के देवघर के रंगमंच के अमूल्य ऐसा सांगीतिक कार्य है।

कुलमिलाकर दासोपंत का यह दक्ष सम्प्रदाय अर्थात् भागवत भक्ति का ललित कलाविष्कार ही है। आध्यात्मिक, तात्विक होकर भी गीत-संगीत, नृत्य वाङमय, चित्र-शिल्प इस ललित कला के रूप में हुई दत्त-सम्प्रदाय की स्थापना विलक्षण, अभिनव और वैशिष्टपूर्ण लगती है। मौखिक परम्परा से 400 साल पुरानी अभिजात संगीत का जिंदा स्रोत आज भी दासोपंत के दोनों देवघरों में नित्य पूजा, अर्चना और अवतार जन्मोत्सव, मार्गशीर्ष नवरात्र उत्सव सभी दासोपंत के वंशज 'गोस्वामी' और शिष्य मिलकर करते हैं।

दासोपंत का व्यक्तित्व बहुआयामी स्वरूप का था। अंबाजोगाई के दक्ष सम्प्रदाय की उपासना पद्धति ललित कलामय हुई। अंबाजोगाई का 'देवघर' यह साहित्य-संगीत-चित्र इस कला का स्रोत है। कला के सम्पन्न और समृद्ध सांस्कृतिक केंद्र अर्थात् मराठवाडे की अंबाजोगाई ही है।

बीड जिला के अंबाजोगाई के संत कलाकारों ने एक धर्मसंप्रदाय का कलामंच समृद्ध और संपन्न किया। यह व्यावसायिक रंगमंच और लोकमंच इनके उत्तम सम्मेलन के होते थे। लोगों की ललित कला की पहचान और मनोरंजन पे शिक्षा हेतु ललित कलामयी उपासना करनेवाला यह संत कलाकार है। उच्चवर्ग और निम्नवर्ग इनमें कलासेतु को बांधनेवाला संत दासोपंत है। 400 साल पुरानी ललित कला के माध्यम से दक्ष संप्रदाय साहित्य से लोकशिक्षा, लोकजागरण और लोकरंजन करनेवाला यह संत एक श्रेष्ठ कवि, चित्रकार, उत्तम साहित्यिक कीर्तनकार, नाटककार, रंगकर्मी, साहित्यकार बहुभाषिक, बहुग्रंथकार थे। संत पुरुषोत्तम, समाज शिक्षक, अभिजात संत कलाकार थे। इन सभी में रहकर भी किसी में नहीं 'अहंब्रम्हास्मि' यह अद्वैत तत्व जाननेवाला इस तत्व से एकरूप होनेवाला ब्रम्हस्मि सकल-कलागुणनिधि योगी, सिद्ध-साधक, सर्वज्ञ दासोपंत! बाद में लोग दासोपंत को श्री दत्त के सतरहवें अवतार के रूप में देखने लगे हैं। मराठी वाङमय में साथ ही महाराष्ट्र के सांस्कृतिक परम्परा में संगीत-नृत्य-नाट्य साहित्य, चित्रकला के प्रांत में दासोपंत का योगदान और भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है।

आलेख

संतों सहज समाधि भली

डॉ. अरुण कुमार वर्मा
बेलहरामऊ, राजा बाजार, जौनपुर(उ.प्र.)
मोबाइल–9754128757

कहा जाता है जहाँ से धर्म की सीमा समाप्त होती है वहीं से अध्यात्म की शुरुआत होती है। कबीरदास जी ने जिस सहज समाधि की बात कही है वह आध्यात्मिकता की चरम परिणति है। धर्म का तंत्र यह चाहता है कि पुरोहितवाद जस-का-तस कायम रहे। यह कमोवेश सभी धर्मों के साथ है। लोग अपने सहज मानवीय विवेक को त्याग, अस्मिता, आस्था और भावना के षडयंत्र का शिकार होते रहे हैं। कबीरदास इसी षडयंत्रकारी व्यवस्था के विरोधी थे। वे धर्म के नहीं बल्कि धार्मिक कर्मकांड और आडम्बरों के विरोध में खुलकर सामने आए। उनका यह विरोध किसी एक धर्म से नहीं था, न ही किसी एक समाज से था। उन्होंने देखा कि हमारी धार्मिक मान्यताएँ ईश्वर को बाहर खोजने की सलाह देती हैं इसलिए लोग अंधविश्वास का शिकार हो जाते हैं। इससे मुक्ति के लिए उन्होंने 'निज ब्रह्म विचार' और 'आंखिनी देखी' को महत्व दिया है। धार्मिक आडम्बरों के विरोध की यात्रा में निकले कबीरदास किस मान्यता को लोगों के सामने लाना चाहते थे, प्रस्तुत आलेख इसी की पड़ताल की ओर एक कदम है।

कबीर के जीवन दर्शन, भक्ति के स्वरूप और सामाजिक मान्यताओं पर बहुत सारे विद्वान रचनाकारों ने अपने मंतव्य व्यक्त किए हैं। कबीर की भक्ति का स्वरूप लोगों के समक्ष जिस रूप में आना चाहिए था वह कार्य अभी भी अधूरा है। आडम्बरों के प्रति उनका विरोध और विद्रोह तो जग जाहिर है परंतु विरोध के बाद भक्ति का कौन-सा स्वरूप समाज के सम्मुख रखना चाहते थे जिसमें वे डंके की चोट पर कहते थे 'हम न मरब मरिहैं संसारा' के अमरत्व का विचार लोगों के सामने आना बाकी है। इनके समकालीन और गुरुभाई पीपा ने लिखा है कि कबीरदास के कारण ही कलियुग में भक्ति बच पाई है नहीं तो लोक, वेद और कलयुग ये तीनों मिलकर इसे रसातल पहुँचा देते –

"जो कलि नाम कबीर न होते
तो लोक, वेद, कलयुग मिलिकरि भगति रसातल देते।"

संत पीपा का यह कथन वजन रखता है। भगति को रसातल में जाने से रोककर क्या वे किसी संप्रदाय का प्रवर्तन करना चाहते थे? इसके भी संकेत नहीं मिलते हैं कि वे किसी भी पंथ या संप्रदाय के विरोधी थे। वे अपने अनुयायियों के विषय में भी कहते पाये गए हैं कि 'साखी शब्दहि गावत भूले आतम खबरी न जाना।' कबीर दास जी सबका विरोध करते हुए सब के थे। 'एक निरंजन अलह मेरा' के संकेत से पूरी मानव जाति को एकता के सूत्र में पिरोने के अभिलाषी थे। कबीर की वाणी से संवाद करने के लिए वैष्णव, शैव, शाक्त, जुलाहा या अन्य किसी संप्रदाय का होना आवश्यक नहीं है। उनकी वाणी से संवाद करने के लिए सिर्फ मानव होना जरूरी है। इनके संदर्भ में मुक्तिबोधजी लिखते हैं "कबीर की कविता से आप संवाद करें तो देखेंगे कि वह आपके अनुभवों, सरोकारों और गहरी अनुभूतियों की कविता है। यह जीवन के एकदम प्राथमिक तथ्यों–प्रेम और मृत्यु की, व्यक्ति की चिंताओं और आकांक्षाओं की तथा सामाजिक सरोकारों की कविता है।"

मानवीय संवेदना की इतनी गहरी स्वीकारोक्ति के बाद भी समाज उनके जीवन दर्शन को उस अनुपात में न अपना सका जितना होना चाहिए था। इसके कई कारण हैं। पहला यह कि वे निर्गुण मार्गीय ज्ञानाश्रयी शाखा में विश्वास रखते थे। 'निर्गुण राम जपहु रे भाई' की पुकार उपासना के साथ समकक्षता का भी संदेश है। किसी भी धार्मिक संस्था का प्रमुख अपने अनुयायियों को भाई कह कर नहीं संबोधित करता। ज्ञानमार्गीय शाखा में ज्ञान का तात्पर्य अन्तर्ज्ञान से है जो सहज ही बिना किसी प्रत्यक्ष साधना के आन्तरिक विकास की यात्रा का मार्ग होता है। इसलिए इसे सहज ज्ञान कहा गया है। इसे ही कबीरदास जी ने 'ब्रह्म गियान' कहा और इसी से सहज समाधि की ओर अग्रसर हुए –

"अब मैं पाइबो रे पाइबो रे ब्रह्म गियान
सहज समाधै सुख मैं रहिबो कोटि कलप विश्राम।"

बिना प्रत्यक्ष अनुभव के इस ज्ञान का प्रचार-प्रसार कठिन था। सहज भक्ति का तीर तो वह है जिसको लगता है वही जानता है दूसरे की समझ में नहीं आता। इसके विपरीत सगुण स्वरूप का गुणगान आसान था। बहुत सारी लीलाओं का वर्णन साहित्य और समाज में भरा पड़ा है। कर्मकाण्डों से ज्यादा प्राप्ति का प्रलोभन और दिखावे एवं कुछ करने की प्रवृत्ति ने समाज को अपनी ओर ज्यादा आकर्षित किया।

दूसरा प्रमुख कारण धर्म में आडम्बरों का स्थान का होना, जिसके कारण अंधविश्वासों का सहारा लेकर पुरोहितवादी व्यवस्था ने जनमानस को धर्मभीरू बना दिया था। कर्मकाण्ड और बाह्य आडम्बरों के आधिपत्य ने भक्ति के मूल को नष्ट कर दिया। कालान्तर में सिर्फ कर्मकाण्ड ही बचा, भक्ति गायब हो गई। धर्म में झूठे आश्वासन का खूब स्पेस है। कबीरदास जी सर्वप्रथम लोगों के अंदर बसे डर को निकालने की ओर अग्रसर हुए "निर्भय भया कछु नहीं व्यापै, कहै कबीर दीवाना।" पुरोहितवादी व्यवस्था के कर्मकांडों में फंसकर भक्ति का मूल नष्ट होने लगा। भक्ति की मूल स्थापना की वास्तविकता का परिचय जनमानस से कराते हैं –

"भगति दुलेही राम की नहिं कायर का काम
सीस उतारे हाथ करि सो ऐसी हरिनाम।"

भक्ति में कबीरदास इस संकल्प की ओर बढ़ने का संदेश लेकर आए थे लेकिन पुरोहितवादी व्यवस्था तो मन रंगने पर बल न देकर रंगे कपड़े पर आ गई।

निर्गुण भक्ति अहेतुकी भक्ति है। इसमें भक्त मोक्ष की कामना त्यागकर ईश्वर का प्रेम और उसकी कृपा प्राप्त करना चाहता है। इसमें सतगुरु की महिमा का विशेष महत्व है। लोक-वेद से मुँह मोड़कर अलौकिक ईश्वरीय प्रकाश की तरफ सतगुरु ने ही मोड़ा है – "पीछे लागा जाई था लोक वेद के साथि/आगे थे सतगुरु मिल्या दीपक दीया हाथि।" अहेतुकी भक्ति में बिना सतगुरु की कृपा के एक भी कदम बढ़ा नहीं जा सकता और यह तभी संभव है जब चेला समर्पित भाव से गुरु के बताए रास्ते पर चलता है। इसके विपरीत जो भक्ति लोक में व्याप्त थी, उसमें गुरु की कमी नहीं थी

– 'घर-घर मंतर देत फिरत हैं महिमा के अभिमाना।' कहकर स्वयं इसकी पुष्टि कबीरदास जी ने की है।

कबीरदास जी को लोगों ने जाना पर माना नहीं। इनकी ईश्वरीय अवधारणा निराकार होने के कारण लोगों की पहुँच में सहजता से नहीं आ सकी। 'गूंगे केरी सर्करा, खाए और मुसकाय' में सबको आनंद नहीं आ रहा था क्योंकि भक्ति दूसरों की नजर में खुद को दिखाने या दिखावा का इसमें कोई स्थान नहीं है, इसके विपरीत धर्मगुरु दिखावा एवं चमत्कार से ही लोगों को आकर्षित कर रहे थे। सामाजिक स्थितियाँ भी इसके अनुकूल नहीं थीं। तत्कालीन समाज दो वर्गों में बँटा था। एक था सुविधा सम्पन्न–राजा-महाराजा, सुल्तान, अमीर, सामंत, सेठ और साहूकार। दूसरा–दलित, किसान, मजदूर, सैनिक, राज्य कर्मचारी और परंपरागत छोटे धंधे–व्यापार वाले। प्रथम वर्ग निर्गुण ब्रह्म का समर्थन इसलिए नहीं करता था कि वह समाज में प्रतिष्ठित और सम्पन्न था। यदि वे इस भक्ति को अपनाते तो उनकी प्रतिष्ठा दाँव लगने का डर था क्योंकि कबीरदास कोई बड़े धर्मगुरु, मठाधीस तो थे नहीं। दूसरा वर्ग सुविधा सम्पन्नों के ही ईश्वरीय अवधारणा से संचालित था। वह ईश्वर को उन्हीं की आँखों से देखने का अभ्यस्त था क्योंकि वहाँ उनके बड़े-बड़े आश्वासन पूरे होने के दावे थे भले ही वे झूठे हों लेकिन परेशान व्यक्ति को इससे बढ़कर और क्या चाहिए। तभी तो कबीरदास जी को कहना पड़ा – 'साँच कहन तो मारन धावै, झूठे जग पतियाना।' कबीरदास के उपरांत इनके मत को अनुयायियों ने आगे बढ़ाने का कार्य किया परंतु वे लोगों तक पहुँचने में असमर्थ रहे। स्वयं कबीरदास जी को हिन्दी साहित्य में स्थान मिलने की राह कितनी दुष्कर रही। इसकी समझ हर साहित्य प्रेमी को है, तब इनके अनुयायियों की सामाजिक स्वीकृति का अंदाजा लगाया जा सकता है।

प्रस्तुत आलेख का दूसरा पक्ष कबीर की भक्ति के स्वरूप पर प्रकाश डालना है। कबीरदास जी ने स्वयं स्पष्ट किया है कि वे भी लोक और वेद के पीछे चल रहे थे परंतु सतगुरु के मिलने से इनका मार्ग प्रशस्त हुआ जिसके कारण इनकी भक्ति के मूल में सहज आध्यात्मिकता का पुट मिलता है। इन्होंने इसकी प्राप्ति के लिए निर्गुण वैष्णव को चुना है –

"कबीर के संगी दोई जण, एक वैश्नव एक राम
वो है दाता मुकति का वो सुमिरावै नाम।"

कबीर की साधनागत शब्दावली में ठेठ वैष्णव नाम–केशव, गोविन्द, मुरारी तथा पौराणिक दार्शनिक विचारों का परिचय इनके पदों में मिलता है। इस्लामी आस्था के शब्द अल्लाह, खालिक आदि का प्रयोग देखने को मिलता है परंतु बीच-बीच में वे आगाह भी कराते हैं – 'राम नाम सब कोई बखानै, राम नाम का मरम न जानै।' वे दो टूक शब्दों में हिन्दू और मुसलमान दोनों की तत्कालीन भक्ति मान्यता को नकार देते हैं – "एक निरंजन अलह मेरा। हिन्दू तुरुक दुहु नहिं मेरा।" धार्मिक मान्यताओं का इतना निडर और बेबाक आलोचक शायद ही भारतीय परंपरा में कबीर जैसा कोई होगा। वे किसी भी शर्त पर मानव को बाँटने के हिमायती नहीं थे परंतु एक धर्म सदा ही दूसरे धर्म की बुराई पर खड़ा होना चाहता है। बहुदेववाद ही मानवी अलगाव का प्रमुख कारण है। जिस पर वे कहते हैं – "भाई रे दो जगदीश कहाँ से आया, कहु कौने बौराया।" इनकी भक्ति भावना को लक्ष्य करते हुए डॉ. नगेन्द्र जी ने लिखा है "एक ओर रहस्यवाद के भावनात्मक पक्ष को उद्घाटित करने वाले पदों में श्रृंगार रस की निर्मल धारा है तो दूसरी ओर सत्य की अनुभूति और ज्ञान की गंभीरता भी है।"

कबीर के राम परमतत्व, परमसत्ता, पारब्रह्म परमेश्वर हैं, पर प्रश्न उठता है उस परम सत्ता की उपासना उन्होंने कैसे की? 'कबीर सुमिरन सार है बाकी सब जंजाल' उस ब्रह्म के स्मरण की बात इन्होंने सदैव कही है। फिर प्रश्न उठता है कि उस परम सत्ता का ध्यान कहाँ किया जाय? क्या किसी मंदिर में स्थापित करके या तीरथ व्रत में? उन्होंने इसके उत्तर में कहा है – "ज्यूँ नैनों में पुतली त्यूँ खालिक घर मांहि। मूरख लोग न जागहीं बाहर ढूँढत जाहिं।" उन्होंने उन लोगों की भी निन्दा की है जो किताबों में ईश्वर को खोजते हैं – 'पढ़ि-पढ़ि पंडित वेद बखाणै, भीतर हुती बसत न जाणै।' लोग खोजते-खोजते जन्म गँवा देते हैं, वह तो अपने ही अंतर में व्याप्त हैं – 'ब्रह्म खोजत जनम गंवायौ, सोई राम घर भीतरि पायौ।' कबीरदास की बातों को माना जाय तो उन्होंने कहा है कि उस परम सत्ता को ध्यान के द्वारा घट के भीतर ही खोजने पर पाया जा सकता है – 'बाहरि खोजत जनम गंवाया, उनमनी ध्यान घट भीतरि पाया।'

कबीर की भक्ति सहजमार्गी भक्ति है। इनके दोहे और पदों में बार-बार सहज समाधि, सहजै सुमिरन, सहजै सहज समाना, सहज मिले अविनाशी बहुत बार आया है। इसका अर्थ यह है कि कर्मकांड और आडम्बर से मुक्त भक्ति के सहज मार्ग पर कबीरदास अग्रसर थे। वे किसी मत या मार्ग का प्रवर्तन नहीं करना चाहते थे। उनका लक्ष्य पैगम्बर के रूप में खुद को स्थापित करना नहीं था इसलिए उन्होंने घर-घर मंतर देने का कार्य नहीं किया। परमतत्व से एकाकार की दिशा में जो तत्व इनको प्राप्त हुआ उसे अपने अनुयायियों को बताना अपना कर्तव्य समझा। सहज साधना के द्वारा इनका आत्मज्ञान इतना विस्तीर्ण हो गया था कि मूल सच्चाई तक पहुँच सके, इसलिए सारे कर्मकांड और आडम्बर इन्हें मिथ्या लगने लगा। ये तन के जोगी नहीं मन के जोगी बन गए। इनका अभिमत है कि यदि आप मन के जोगी हो जायेंगे तो सिद्धि सहजता से मिल जायेगी –

"तन का जोगी सब करै मन का बिरला कोई
सब सिद्धि सहजै पाइये जो मन का जोगी होई।"

कबीरदास जी ने शब्द नहीं शब्द की साधना पर बल दिया है। जहाँ शब्द की साधना होती है वहाँ किताब नहीं बल्कि एक शब्द ही परमतत्व हो जाता है। इसलिए वे पोथी नहीं बल्कि ढाई आखर प्रेम को पढ़ने की सलाह देते हैं – "संतो शब्द साधना कीजै, जाहि शब्द में राम प्रकट भै सोई शब्द लिखि लीजै।" वे किताब नहीं बावन आखर में ब्रह्म को साध कर उसके सुमिरन की बात करते हैं – "कबीर पढ़िबा दूरि करि, पोथी देहु बहाई/बावन आखर सोधि के रामनाम लौ लाई।" उन्होंने संन्यासियों के लिए ध्यान की बात कही है – "पंडित मति पढ़ि पुरान, जोगी मति धरि धियान।"

कबीरदास बार-बार सुमिरन और ध्यान की बात करते हैं। यह ध्यान हृदय में अवस्थित ईश्वर के ध्यान से है। भारत में ध्यान की परंपरा बहुत प्राचीन है। पतंजलि के अष्टांग योग में ध्यान का स्थान प्रमुख है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि में ध्यान और समाधि की बात कबीर ने कही है और उनका संकेत इसी ध्यान और समाधि की ओर था। प्राचीन समाज में ध्यान और समाधि ऋषि-मुनियों और संन्यासियों के लिए था परंतु कबीरदास जी ने इसे सहज बनाते हुए गृहस्थों

के लिए सुलभ बनाया। वे जानते थे कि इसकी तरफ बढ़ने से वास्तविकता का संचार होगा और आडम्बर स्वतः ही समाप्त हो जायेगा। कबीरदास जी ने ध्यान की जिस परम्परा को आगे बढ़ाया उसमें हृदय में अवस्थित ईश्वर का ध्यान करने पर बल दिया गया है –

"रे मन बैठ कितै दिन जासी। हृदय सरोवर है अविनाशी॥"

कबीरदास जी ने उस परम तत्व को हृदय के भीतर प्रकाश रूप में बताया है। यह प्रकाश इन्हें गुरु ने दिखाया था और यह उसे ही दिखाई देता है जिसकी लय उस परम तत्व से लग जाती है –

"हिरदे भीतरि दव बलैं धुआँ न परगट होई
जाके लागी सो लखै की जिन लाई सोई॥"

कबीरदास हृदय से ध्यान करने पर दिव्य प्रकाश की बात करते हैं। वह दिव्य प्रकाश हृदय में ईश्वर का एहसास है। आज भी ध्यान में प्रकाश को स्वीकारा जाता है – 'अभि अंतर मन रंग समाना/लोग कहै कबीर बौराना।' ध्यान की उस अवस्था में परम तत्व के दर्शन को स्वीकार करते हुए लिखते हैं – 'मंदिर माँहि भयो उजियारा, ले सूतो आपन पीव पियारा।' ईश्वर के ध्यान की बात कबीरदास बार-बार करते हैं – 'अनहद बाजै निर्झर झरै उपजै ब्रह्म गियान। आवगति अंतर प्रगटै लागै परम धियान।' उद्धृत कथनों से स्पष्ट हो जाता है कि कबीरदास ने अपनी उपासना में ध्यान को प्रमुख स्थान दिया है और लोगों को ध्यान के द्वारा अन्तर्मन की यात्रा की ओर ले जाना चाहते थे। उनका यह ध्यान सहज ध्यान था जिसके करने के लिए पर्वत, गुफा और कन्दराओं में जाकर ध्यान लगाने की बात नहीं करते। यह ध्यान घर-गृहस्थी के कामों में संलग्न रहते हुए सहजता से किया जा सकता है।

श्री रामचंद्र मिशन के तृतीय गुरु श्रद्धेय पार्थ सारथी राजगोपालाचारी जी की पुस्तक 'हृदय का अभिमान' के अध्ययन से कबीर की मान्यताओं का दर्शन होता है। गुरुदेव ने धर्म और अध्यात्म पर विचार व्यक्त करते हुए लिखा है 'इतिहास में हम पाते हैं कि धर्म ने ही अधिकांश मानव जाति को हिंसा के लिए भड़काया है क्योंकि हर धर्मों में पूजा के लिए उनके अलग-अलग देवता एवं पूजा विधान होते हैं। अपने अनुयायियों पर अपनी पकड़ बनाए रखने के लिए हर धर्म को अपने तामझाम को न केवल बड़ी कड़ाई से पालन करने के लिए जोर देना पड़ा साथ ही दूसरे धर्मों के देवताओं का विचार लाने तक निषेध किया गया। दूसरी ओर अध्यात्म ईश्वर को कोई नाम नहीं देता, उसे किसी गुण से विभूषित नहीं करता और न ही मनुष्य के दिमाग में उपजे बनावटी देवी-देवताओं की दावेदारी की अपेक्षा करता है, बल्कि मनुष्य का ध्यान उस अनन्त परमतत्व की ओर आकर्षित करता है जो सारी सृष्टि का स्रोत है। इसी पुस्तक के अन्तर्गत गुरुदेव ने स्पष्ट किया है कि अष्टांग योग में सिर्फ ध्यान का अनुपालन करने से बाकी समस्त अवयव (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार/धारणा) स्वतः नियंत्रित हो जाते हैं। ये समस्त अनुभव जन्य तत्व कबीर वाणी में भी विद्यमान है। उन्होंने इसी अनुभव के द्वारा धर्म से आगे बढ़कर अध्यात्म को सामान्य जन तक लाने का प्रयास किया। इसके लिए उन्हें धर्म के ठेकेदारों से किस तरह से लड़ना पड़ा होगा, इसका अंदाजा सहज ही लगाया जा सकता है।

कबीरदास जी ने जिस ध्यान और समाधि की बात कही है वह सहज है। भले ही उन्होंने नाथों के हठयोग की शब्दावली जैसे अनहद नाद, इड़ा, पिंगला, सुसुम्ना, सहसदल कमल, त्रिकुटी आदि शब्दों का प्रयोग किया हो परंतु वे चिल्ला-चिल्ला कर कहते रहे – "सहज सुलभ मिले रघुराई।" कबीरदास जी के संबोधन में संतों, साधो, भाई जैसे शब्दों का प्रयोग किया गया है जो कि स्वयं में सहज, सरल और आत्मीय प्रेम से सराबोर है। वे बार-बार हृदय की निर्मलता की बात करते हैं। वे खुद ठगा जाने की बात करते हैं परंतु दूसरे को ठगने का संदेश कभी नहीं देते। मन का मैल और हृदय की चंचलता को दूर कर हृदयरूपी दर्पण को मांजने की बात करते हैं जो हृदय में जमा संस्कारों या छापों को हटाने की ओर संकेत है। श्री रामचन्द्र मिशन में हृदय की सफाई का संकेत दिया है "जो दर्शन देख्या चाहै तौ दरपन माजत रहिए।" वे हृदय में कपट और चतुराई को स्वीकार नहीं करते –

"रोजा किया निवाज गुजारी बंग दे लोग सुनावा
हिरदै कपट मिले क्यूं साईं क्या हल काबै जावा
चतुराई हरि न मिलै ए बाताँ की बात
एक निसप्रेही निराधार का गाहक गोपीनाथ।"

कबीरदास की सहज साधना इस स्तर तक पहुँच गई थी कि वे 'अहमब्रह्मास्मि' की अवस्था तक पहुँचे साधक थे। 'बूंद समानी समुद्र में सो कत हेरी जाय। लाली देखन मैं चली मैं भी हो गई लाल' तथा 'हम न मरब मरिहैं संसारा।' की अनुभूति परमसत्ता के नजदीक की अनुभूति है, इसलिए उनका हृदय मानवीय करुणा के लिए तड़प उठा है और इनका प्रेम हाट में बिकने वाला नहीं बल्कि सिर दे कर ले जाने वाला है –

"प्रेम न खेती उपजै, प्रेम न हाटि बिकाई
राजा परजा जेही रूचै सिस दै सो लेजाई।"

कबीर की साधना इतने चरम पर पहुँच गई थी कि माया-मोह का संसार इनको छू तक नहीं पाता। जीवन की अनुभूति इनको वास्तविकता के धरातल पर लाती है। आज हम जो बटोर का संसार निर्मित कर लिए हैं वह हमें किसी रूपों में संतुष्ट नहीं होने देता। अर्थ के पीछे भागता मानव अब हांफना शुरू कर दिया है और फिर भी रुकने का नाम नहीं ले रहा है। वे ऐसे मानव को सचेत करते हुए कहते हैं – "कहै कबीर अंत की बारी, हाथ छाड़ि जैसे चलै जुआरी।" 'हंसा जाई अकेला' का नारा देकर उन्होंने सब को चेता दिया है कि कितना ही ऊँचा भवन, माल असबाब यहाँ जोड़ लो परंतु जाना खाली हाथ है – "कहै कबीर चेतहु रे भाई, हंस गया कछु संगि न जाई।" धर्म में भक्त, आराध्य से कुछ पाने के लिए ही उपासना करता है लेकिन इस संदर्भ में उनका मत अलग है – "जो मांगे सो भगत न होई।" त्याग की ऐसी अवस्था, सत्यपरक अनुभव जन्य स्पष्ट वाणी, साधना की उच्चतम अवस्था से ही आ सकती है। त्याग की ऐसी वाणी महान आत्मा के द्वारा ही निकल सकती है –

"चाह गई चिंता गई मनुआ बे परवाह
जाको कछु नहिं चाहिए सोई शहनशाह।"

कबीरदास की साधना का प्रमुख लक्ष्य सहज समाधि है। इनकी सहज समाधि प्रत्येक अवस्था में परमसत्ता से एकाकार होने की अवस्था है। अपने समस्त कर्मों को उस परमसत्ता पर समर्पित करना ही सच्ची भक्ति है। मुख से जो भी निकले वह ईश्वर का नाम और सुमिरन हो, खान-पान भी उस परमसत्ता की पूजा हो अर्थात् जीवन के समस्त कार्य व्यापार उस ईश्वर को समर्पित हो। यह सहज समाधि के द्वारा सब के लिए सुलभ है।

ध्यान और सुमिरन की अवस्था में हम नित-प्रतिदिन अपना आंतरिक विकास करते आते हैं। हृदय में ईश्वर के ध्यान का अभ्यास नियमित करने से व्यक्ति आध्यात्मिकता के पथ पर प्रशस्त होगा। वह उस अवस्था की ओर अग्रसर होगा जैसा कि उन्होंने सहज समाधि की चरम अवस्था का उल्लेख अपने पद में किया है –

संतो सहज समाधि भली

निष्कर्षतः कबीर के जन्म की अवधारणा, धार्मिक आडम्बरों पर कुठाराघात तथा सामाजिक कुरीतियों पर उनके विद्रोही रूप और निडर व्यक्तित्व की झलक एवं इनके साहित्यिक एवं भाषागत योगदान पर आलोचकों ने विस्तार से चर्चा की है। जिस सहज साधना से इनके व्यक्तित्व का विकास हुआ है या यूँ कहें कि जिस सहज साधना ने इन्हें इस योग्य बनाया, उस पर प्रकाश डालना अभी बाकी है। इस आलेख के माध्यम से इनके साधनागत स्वरूप की एक झलक प्रस्तुत करने का छोटा-सा प्रयास है। इनकी भक्ति का सहज रूप निश्चित ही भारत के संदर्भ में महत्वपूर्ण है। कबीरदास जी ने इस सहज भक्ति के द्वारा धार्मिक शोषण से बचने का महत्वपूर्ण हथियार दिया है परंतु दुर्भाग्य यह है कि वह लोगों तक पहुँच नहीं पाया। उनकी यह साधना पद्धति लोगों को अमीर बनाने का जरिया नहीं है, न ही यह किसी के संकट को टालने का मंत्र है परंतु यह लोगों को सहजता से दुःख और सुख को जीने का कौशल प्रदान करेगी। आज ध्यान की परंपरा बढ़ी है। लोगों का झुकाव भी बढ़ा है लेकिन उसमें वे सामान्यजन नहीं जिसको संतों, साधो तथा भाई कहकर कबीरदास बुलाते थक गए। हृदय में ईश्वर का ध्यान करने की यह पद्धति बहुत ही वैज्ञानिक और व्यवहारिक है। यह आंतरिक समझ विकसित करने में सहायक है जिससे सारे आडम्बर सारहीन हो जायेंगे और व्यक्ति मानवीय करुणा से भर जायेगा। इसकी सहजता और सरलता बिना किसी निषेध के सर्वजन्य सुलभ है। यह आलेख पाठकों को कबीरदास की सहज साधना पद्धति से परिचय कराने तथा 'संतों सहज समाधि भली' की अवधारणा विकसित करने में सफल होगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

कविताएं

गरिमा सक्सेना
अनन्तपुरा, बंगुलोर,
मोबाइल– 7694928448

(1)
नये वर्ष में जारी रक्खें
उम्मीदों की चहल-पहल
नये वर्ष में नया बहुत कुछ
आओ देखें आँखों से
उड़ने को तैयार रहें हम
अपने मन की पाखों से
तोड़ आज प्रतिबंध कोह का
झाँक रहे किरणों के दल
उम्मीदों की चिड़ियाँ चहके
मन में नव उत्साह लिए
आगे हम सब बढ़ते जाएँ
नई जीत की चाह लिए
आओ मिलकर आज लगाएँ
खुशियों की दो-चार फसल
हाय! हाय! करते रहने से
कब किसने कुछ पाया है
पीट लकीरें केवल हमने
खुद को ही भरमाया है
श्रम से ही बस हो पाएगा
सिर्फ सुनहरा अपना कल।

(2)
कोहरे की बढ़ गई हैं टहनियाँ
मौत का माहौल है
कोहरे की छांव ऐसी
सूर्य भी निस्तेज है
देह ऐसी गल रही ज्यों
भीग गलता पेज है
आग खोजे, कँपकँपाती हड्डियाँ
मौत का माहौल है
गांव की पगडंडियों के
स्वप्न हैं फुटपाथ पर
सूर्य घर्षण से उगाना
चाहते हैं हाथ पर
पेट में गीली पड़ी हैं लकड़ियाँ
मौत का माहौल है
राजधानी ओढ़ बैठी
छद्म, छल का आवरण
रिस रहे हैं घाव मन के
हो रहा नैतिक क्षरण
कब खुलेंगी, धूप देने खिड़कियाँ
मौत का माहौल है।

(3)
सुर्ख लावा हो गए हैं पाँव
तपती रेत में
गाँव ने हैं कर्ज बोए
मौत की फसलें उगाईं
अंजुरी-भर प्यास तड़पीं
आस ने चीखें दबाईं
आज फिर सपने पड़े हैं
पाँव मोड़े पेट में
हाँक फिर वैसी लगी है
पक्ष बस प्रतिपक्ष में है
सत्य पर सब जानते हैं
स्वार्थ केवल अक्ष में हैं
शाकभक्षी फिर मरेंगे
समय है, आखेट में
चेतना, बदलाव क्या बस
ताज का बदलाव ही है
जीत कैसी, जीत है यह
हार का ठहराव ही है
देखना फिर उग न आएँ
नागफनियाँ खेत में।

आलेख

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः

सुभाष चन्द्र झा
पूर्व विशेष सचिव,
बिहार प्रशासनिक सेवा,
मोबाइल– 9431208428

नारी एक ऐसा शब्द है जो संसार के अस्तित्व की व्याख्या करता है और सृजनात्मक शक्ति का प्रतीक है, जिसके बिना संसार की कल्पना करना असंभव है। नारी शब्द में इतनी ऊर्जा और ऊष्मा समाहित है कि इसका उच्चारण ही मन-मस्तिष्क को भीतर तक झंकृत कर देता है। यह नारी ही है जिसे माँ, यामिनी, माता, स्त्री, मही आदि नामों से संबोधित किया जाता है। यह शक्ति मानव की ही नहीं, अपितु समस्त मानवता की जन्मदात्री है। इसी कारण नारी मानवता के आधार रूप में प्रतिष्ठित समस्त मानवीय मुद्दों की, मूल्यों की, संस्कारों की जननी है, आधारशिला है, स्रोत है। यही कारण रहा है कि इतनी गुरुतरा व महनीया शक्ति का वर्णन हमारी इस गौरवमयी संस्कृति में प्रायः हर कालखण्ड में विवेचित हुआ है।

प्रत्येक युग में सभ्यताओं के आवर्तन-विवर्तन में प्रत्येक संस्कृति ने यह उद्घोषित किया है कि नारी सृष्टि की नियोजिका शक्ति है, अखिल ब्रह्मांड की आधारशिला है। अखिल ब्रह्मांड को नियोजित-नियमित व संचालित करनेवाले अपने दिव्य स्पन्दनों से स्पंदित करने वाले उस विधाता की मूल प्रतिकृति है–नारी। वैदिक सभ्यता, संस्कृति और साहित्य के निर्माण में नारी का महती योगदान रहा है। वैदिक साहित्य में संहिता ब्राह्मण ग्रंथ स्मृति काल अरण्यक उपनिषद् तथा रामायण काल, महाभारत काल, स्मृति काल, पौराणिक काल, बौद्ध साहित्य, अपभ्रंश साहित्य, सिद्ध साहित्य, नाथ साहित्य आदि तथा मध्यकालीन हिन्दी साहित्य से लेकर आधुनिक साहित्य तक नारी स्वरूपों का विस्तार से विवेचन मिलता है। इस छल-प्रपंचमय जगत में जब भी मनुष्य ने स्वबोधगम्यता की प्राप्ति की तथा उसने उस अप्रतिम ऊर्जा के प्रांत आभार प्रकट करने का यत्न किया तो अनायास ही मानव के मुख से ये पंक्तियाँ निःसृत हो उठीं कि–

"त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बंधुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम् देव देव॥" (गीता)

अर्थात् हे विधाता! तुम ही माँ हो! सबसे पूर्व प्रयुक्त हुआ यह शब्द भी स्वयंमेव इस सृष्टि को, सृष्टि संचालक ब्रह्मा को 'माँ' शब्द से संबोधित कर इस शब्द की अवर्णनीय महत्ता को समुद्घाटित कर देता है। जब हम किसी सांसारिक विपत्ति या किसी कृत्य से खिन्न-आहत हो जाते हैं तो बरबस हमें एक ही शक्ति की याद आती है और वह है – 'माँ'। भयावह क्षणों और जीवन के वैपरित्य में अनायास याद आया यह शब्द हमें नवीन ऊर्जा और चेतना से संपृक्त कर देता है।

स्त्री को गूढ़ भावों से युक्त होने के कारण भूमि से भी अधिक श्रेयस्कर कहा है, पूर्ण वंदन किया है–"जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।" (वाल्मीकि रामायण युद्धकांड)

पृथ्वी सूक्त का प्रथम मंत्र उन धर्मों की गणना करता है जिसमें पृथ्वी धारित है। इस प्रथम मंत्र में ही कहा गया है–

"सत्यं बृहद्ऋतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवीः नः कृणोतु॥"
(अथर्ववेद–12.11)

अर्थात् सत्य, वृहद्, ऋतम, उग्रता, दीक्षा, तप, ब्रह्म, यज्ञ यह धर्म के सात अंग पृथिवी को धारण करते हैं और यह पृथिवी हमारे भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालों की रक्षिका व पालिका है। सर्वथा इन्हीं शब्दों में अपनी पत्नी के रूप में नारी जाति की प्रशंसा में गा रहा है–

"यस्यां भूतं समभवत् यस्यां विश्वं इदं जगत्।
तामद्य गाथां गास्यामि स्त्रीणां यदुत्तमं यशः॥"

जिसमें हमारे कुल का बीता हुआ युग, भूतकाल उज्ज्वल रहा है, नहीं-नहीं, हमारे वंश की ही नहीं अपितु हमारे समाज और राष्ट्र का भूतकाल उज्ज्वल रहा है और भविष्य भी उज्ज्वल रहेगा और वर्तमान भी जिनसे उज्ज्वल है। उन गाथाओं को गा-गाकर ऐ, नारी-जाति! हम तेरा यशोगान करते हैं। (वैदिक संहिताओं में नारी-स्वामी दयानंद सरस्वती के विचार वांङमय मधुपर्क में वर्णित विचार)

अगर संस्कृत वाङमय में वर्णित स्त्री के विभिन्न रूपों की बात करें तो जीव का माँ से ज्यादा सामीप्य या तादात्म्य अन्य किसी से हो ही नहीं सकता। इसका कारण है कि अन्य सभी शब्द कण्ठ का विषय है– कण्ठ से निकलते हैं जबकि 'माँ' की ध्वनि आत्मा से सीधे गुंजायमान होती है। संभवतः इतनी आत्मीयता से, इतनी रूह से निकलनेवाली यही प्रभावी शब्द है इसलिए उस परम् तत्व, सत्ता या शक्ति को मानव ने पहली बार मातृस्वरूप में स्मरण किया और अनन्तर उसे पिता, बंधु, मित्र, धन, धान्य, सम्पदा आदि शब्दों से संबोधित किया। यही कारण है कि महाकवि कालिदास ने स्त्री-शक्ति को बारम्बार प्रणाम किया है–

"वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थ प्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ॥

अथात् जगत् के माता-पिता(पितरौ) भवानी, शंकर, वाणी और अर्थ की भांति एकीभूत है, संपृक्त है, उन्हें वंदन करता हूँ, प्रणाम करता हूँ।

इसी क्रम में महाकवि तुलसीदास का कथन भी द्रष्टव्य है–

"जगत् मातु-पितु संभु-भवानी"
(बालकाण्ड–रामचरितमानस)

जीवन की सर्जक स्त्रियों को वेद सर्वोच्च सम्मान और सम्पूर्ण अधिकार प्रदान करते हैं। यदि कभी ऐसा हो कि धरती से सभी पुरुष लुप्त हो जाएं, तब भी समाज जिन्दा रहेगा क्योंकि कई स्त्रियों के गर्भ में जीवन पल रहा होगा। परन्तु यदि कभी सारी स्त्रियां विलुप्त हो जाएं तो धरती से जीवन ही मिट जाएगा। माँ, बहन, पत्नी और बेटी हमारे जीवन में ईश्वर की सर्वोत्तम देन है। एक सुखी समृद्धशाली समाज बनाने के लिए स्त्रियों की करुणा, बुद्धिमत्ता और सबका ध्यान रखने की उनकी विशेषता कितनी आवश्यक है। एक सुशिक्षित नारी समस्त समाज का निर्माण करती है और

अगर स्त्रियाँ अशिक्षित रह जाएँ तो समाज में आसुरीपन बढ़ जाता है। नारी मनुष्य की प्रथम शिक्षिका है और उस महान् सहनशक्ति का प्रमाण है जो मानव समाज के अस्तित्व के लिए अतिआवश्यक है।

महिला : शब्द भी जिसकी महिमा का वर्णन नहीं कर सकता, वाणी जिसकी गरिमा का वर्णन नहीं कर सकती, शब्द जिसकी महिमा को बांध नहीं सकते, जिसका व्याख्यान सृष्टि का कण-कण कर रहा है, जो अपने त्याग, बलिदान, व्यक्तित्व से अपने अस्तित्व का आभास कराए यह विरोधाभासी है। नारी सृष्टि की अनमोल रचना है जो कोमल होते हुए भी विशाल मन, अद्वितीय तन व सहनशीलता की प्रतिमूर्त्ति है। अपनी मधुर मुस्कान से जीवन के हर पल की कटुता व प्रसन्नता को जीती वह न केवल स्वयं का जीवन व्यतीत करती है बल्कि परिवार की हर खुशी व दुःख को आँचल में समेट कर दायित्व के लिए कुर्बानियां देती आई है।

अपने श्रेयस से किसी एक दिन को नहीं, बल्कि हर दिन के लिए नारी अपने महत्व को दर्शाती है। इत्र की खुशबू के समान संसार का कोना-कोना नारी की उपलब्धियों की गाथा गा रहा है। जीवन के कष्टों को मौन होकर सहन करती है तो चंडी-सा प्रहार करना भी जानती है। नारी हर पल नए रूप का दर्शन करवाती है। जो नारी का तिरस्कार करते हैं वे ये नहीं जानते कि नारी ही सृष्टि की सर्जक शक्ति है। सूर्य के प्रकाश-सा ही है नारी का जीवन। जिस प्रकार सूर्य न निकले तो अंधेरा छा जाता है, वैसे ही नारी एक प्रकाश स्रोत है जिसके बिना परिवार, समाज व राष्ट्र की आँखें धूमिल हो जाती हैं।

नारीः तू विधाता की अनमोल रचना है, कोई भी तेरा सानी नहीं, नारी में ही सारी सृष्टि समायी है। नारी शक्ति की चेतना का प्रतीक है, प्रकृति की प्रमुख सहचरी भी है जो जड़स्वरूप पुरुष को अपनी चेतना प्रकृति से आकृष्ट कर शिव और शक्ति का मिलन कराती है, साथ ही संसार की सार्थकता सिद्ध करती है। नारी के बिना नर का जीवन अधूरा है। इस अधूरेपन को दूर करने के लिए और संसार को आगे चलाने के लिए नारी का होना जरूरी है।

नौ दिवसीय शिव महापुराण कथा में नारी को देवी का रूप माना जाता है और उनकी पूजा भी की जाती है। नारी के पास जीवन बनाने की शक्ति है। पौराणिक ग्रंथों में नारी को आदि देवी-शक्ति के रूप में पूजनीय माना गया है और सभी शास्त्रों व धर्मग्रंथों में नारी के पारिवारिक-सामाजिक महत्व को स्वीकारते हुए परम आदरणीय माना गया है।

समस्त रस भावों का सारांश और संस्कार है नारी, दया ममता करुणा का शृंगार है, नारी काव्य रस का भंडार व अलंकार है। जीवन का आधार व सार है। सरस्वती तो कभी लक्ष्मी, अन्नपूर्णा तो कभी तुलसी नारी में ही समायी है सृष्टि सारी। वैदिक तथा पौराणिक ग्रंथों से स्पष्ट होता है कि भारतीय संस्कृति में अपरिमेय शक्ति नारी ही सृष्टि का अस्तित्व है।

इतिहास के गह्वरों में गोते लगाने से स्पष्ट होता है कि ऋग्वेदकालीन समाज पितृसत्तात्मक होते हुए भी नारी के प्रति उदार दृष्टिकोण रखता है। आर्यों के देवता समूह में शामिल अनेक स्त्रियां इसका उदाहरण हैं। स्त्री ने उस समय ब्रह्म ज्ञान की शिक्षा भी अर्जित की और ऋचाओं की रचना भी की। इस काल में लोपमुद्रा, रोमसा, घोषा, सूर्या, अपाला, मैत्रेयी,गार्गी, विलोमी, सावित्री, यमी, विश्वंभरा, श्रद्धाशती, देवयानी आदि नामों के उल्लेख मिलते हैं जिन्हें उनकी विद्वता के आधार पर ही ऋषिका या ब्राह्मणी कहा गया है। ब्रह्मवादिनी और सघोद्वाहा भी तत्कालीन ज्ञानार्जन करनेवाली स्त्रियों के प्रकार थे। अपनी विद्वता के कारण ही रामायणकालीन परिवार पैतृक परिवार थे। सीता, तारा, कैकेयी, मंदोदरी के प्रसंग इस काल की विदुषी महिलाओं की श्रेणी में मिलते हैं। महाभारत काल में स्त्री की परिस्थिति में कुछ बदलाव देखने को मिलते हैं। बौद्ध साहित्य की अनेक जातक कथाएं नारी के सतीत्व के आदर्श को प्रतिष्ठित करती हुई नजर आती हैं।

प्रसिद्ध सूफी संत जायसी ने भी नायिका को परमात्मा शब्द से संकेतित किया है। स्पष्ट है भारतीय संस्कृति में नारी को सारी सृष्टि की अधिष्ठात्री माना गया है। पूरी सृष्टि ही स्त्री है क्योंकि इस सृष्टि में दया, दाक्षिण्य, बुद्धि, शुद्धि, शक्ति, शांति, लज्जा, करुणा, इच्छा, तृष्णा, श्रद्धा, चेतना और लक्ष्मी आदि अनेक रूपों में स्त्री ही संव्याप्त है। इन्हीं अनेक विधि मानवीय आदर्शों की पूर्णता को संतुलित करने से ही नारी भावप्रधान हृदय की स्वामिनी होती है। वास्तविकता तो यह है कि नारी हृदय का ही प्राधान्य परिलक्षित होता है नारी बुद्धि में भी, तभी तो गर्भाधान से लेकर पालन-पोषण तक अनिर्वचनीय असीम वेदनाओं और कष्टों में भी उसे अद्वितीय आनंद की अनुभूति होती है। उसी का प्रतिफल है कि वे एक नवीन सृष्टि की सृजक बन जाती हैं। सृजन की इस प्रक्रिया में वे कोई व्यावसायिक या हिसाबी दृष्टि न रखते हुए सानन्द इसे पूर्णता प्रदान करती हैं। हृदय या भाव प्रधान होने के कारण ही उसका अंतःकरण अनेक बार पति, पुत्र या परिजनों द्वारा की गई अनेक प्रताड़नाओं के बावजूद भी वह सभी के प्रति शुभशंसा या कल्याणमयी कामना करती नजर आती है।

जयशंकर प्रसाद ने 'कामायनी' में इसी तत्व को समुद्घाटित किया है–

"नारी जीवन का चित्र यही,
क्या विकल रंग भर देती है।
स्फुट रेखा की सीमा में,
आकार कला को देती है॥"

भारतीय संस्कृति में नारी का उल्लेख जगत्-जननी, आदि शक्ति-स्वरूपा, ज्ञान-स्वरूपा, सृष्टि-अधिष्ठात्री के रूप में किया गया है। संहिता ब्राह्मण, अरण्यक उपनिषद्, स्मृतियों व पुराणों में नारी को इसी रूप में चिह्नित किया गया है। विश्व की सभी सभ्यताओं व संस्कृतियों में संभवतः भारतीय सभ्यता ही ऐसी है जिसमें स्त्रियों को देवी, शक्ति या पुरुषों से सौ गुना ज्यादा वंदनीया-पूजनीया बताया गया है। भारतीय जीवन मूल्यों की संकल्पना व प्रकृति की अवधारणा के केन्द्र-बिन्दु में स्त्री ही है। हमने भूमि को माता कहा, गौ को माता कहा, गंगा-यमुना-सरस्वती प्रभृति नदियों को भी माता शब्द से संबोधित किया है। गायत्री मंत्र जिसे हम पवित्र स्तुति मानते हैं उसमें भी माँ गायत्री की आराधना है। अन्नपूर्णा स्थूलांश की संचालिका खाद्यान्न की देवी है। ध्यानमंत्र 3/56 मनुस्मृति में कहा गया है :

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।

यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः॥"

जिस कुल में नारियों की पूजा-अर्चना, सम्मान-संस्कार होता है, वहाँ देवताओं का वास होता है। उस कुल में दिव्य गुण, दिव्य योग और उत्तम संतान होते हैं और जिस कुल में स्त्रियों का आदर नहीं होता वहाँ मानो उनकी सब क्रिया निष्फल है। सारे अच्छे कर्म निष्फल हो जाते हैं। 3/57 मनुस्मृति में कहा गया है–

"शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम्।
न शोचयन्ति तु यत्रैता वर्धते तहि सर्वदा॥"

जिस कुल में स्त्रियां अभिलाषा भोगती हैं, वह कुल शीघ्र ही नष्ट हो जाता है और जहाँ स्त्रियाँ बनी रहती हैं वह कुल सदैव फलता-फूलता और समृद्ध रहता है। परिवार की पुत्रियाँ, वधुएँ, नवविवाहिताएँ आदि जैसे निकट संबंधियों को 'आमी' कहा गया है। जिस परिवार में स्त्रियाँ जैसे माँ, पत्नी, बहन, बेटी आदि दुःख से भरी होती हैं, उस परिवार का बहुत विनाश होता है, जिस परिवार में ये शोक नहीं मनातीं वह परिवार सदैव समृद्ध रहता है।

भाव स्पष्ट है कि जिस स्थान पर नारी की उपेक्षा हो वहाँ कोई मंगल कार्य सम्पन्न नहीं होता, परन्तु जहाँ नारी की देवीय रूप से स्तुति की जाती है, देवता भी प्रसन्नतापूर्वक उस स्थल पर सुशोभित होंगे। इसी कथ्य को पल्लवित करते हुए महर्षि गर्ग कहते हैं –

"यद् गृहे रमते नारी लक्ष्मीस्तद् गृहवासिनी।
देवताः कोटिशो वत्सः न त्यजन्ति गृहं हि तत्॥"

जिस घर में सद्गुण भूषित नारी आनंदपूर्वक निवास करती है, उस घर में निरंतर लक्ष्मी का वास होता है। हे वत्स! कोटि देवता भी ऐसे घर का त्याग नहीं करते हैं।

मनुष्य जीवन के सर्वांगीण समुत्कर्ष एवं निःश्रेयस के लिए आधारभूत श्री, ज्ञान, ऐश्वर्य तथा शौर्य की अधिष्ठात्री नारी रूपों में अवतरित देवियों को ही माना गया है। वैदिक काल से ही हमारे देश में नारी को पूज्या मानते हुए उसकी बहुविध स्तुतियां की गई हैं। यही कारण है कि भारतीय संस्कृति में 'अर्द्धनारीश्वर' का आदर्श स्पंदित रहा है। सौन्दर्य और भाव के इस सागर को अगर हर कालखंड अपने भीतर समाहित कर ले तो वर्गभेद के प्रति हिंसा शामित हो जाएगी। अधुनातन समय में भी इसी आदर्श की परिणति त्रिदेवियों में विद्यमान है। संतति को विद्या संस्कार देते समय उसका सरस्वती रूप उद्घाटित होता है, गृह संचालन व गृह स्वामिनी की कुशलता में उसका लक्ष्मी रूप तथा पापियों व दुष्टों का संहार करते समय उसका दुर्गा रूप प्रकट हो जाता है। यहाँ तक कि किसी भी शुभ या मंगल कार्य को नारी की अनुपस्थिति में निष्फल ही माना गया है।

वेद, उपनिषद् एवं स्मृतियों में अनेक प्रमाण हैं कि मानव जीवन पद्धति में नारी विधाता की सर्वोत्तम परिकल्पना मानी गई है। सनातन काल से नारी को इस सृष्टि में अतुलनीय प्रभुत योगदान है। उपनिषद् सृष्टि को स्त्री की अनुपस्थिति में अपूर्ण मानते हैं। वहीं सृष्टि की संपूर्णता या रिक्तता का हेतु स्त्री को ही माना गया है–

"अयमाकाश स्त्रियाः पूर्यते।" (वृहदारण्यकोपनिषद्–1.43)

इसी संदर्भ में ऋग्वेद का कथन है कि स्त्री ही ब्रह्मा है–"स्त्री हि ब्रह्मा कमूविध।" इसी संदर्भ में वेदवाणी ने यह भी उद्घोषित किया है कि –

"त्वं विश्वा सरस्वती।" (ऋग्वेद–2.41.17)

हे विदुषी! तुझ देवी पर सब जीवन आश्रित है, क्योंकि तू ही सरस्वती रूपा है। भारतीय संस्कृति में मंत्रद्रष्टा ऋषियों ने नारी को गौरवशाली व्यक्तित्व प्रदान किया है। अतः वैदिक काल नारी का अति अभिनंदनीय एवं उज्ज्वल रूप प्रस्तुत करता है–

"विराडियं सुप्रज्ञा अत्यजैषीत्।" (अथर्ववेद–14.2.74)

स्त्री शक्ति रूपा है, यह वही स्त्री है जो सृष्टि के पोर-पोर में कभी कोंपल बन खिलती है, तो कभी फूल बन महकती है। उसका समर्पण स्तुत्य है। स्त्री की इसी विशेषता को रेखांकित करते हुए यजुर्वेद कहता है –

"इडे रन्ते हण्ये काम्ये चन्द्रे ज्योतिअदिते सरस्वती मही विश्रुति।
एता तेअधन्ये नामानि देवेभ्यो मा सुकृतं ब्रूतात्॥" (यजुर्वेद–8.43)

इस मंत्र में स्त्री को संबोधित करते हुए कहा गया है कि हे स्त्री! तू स्तुति योग्य, उत्तम वाणी युक्ता, रमणीया, पूजनीया, कमनीया, चन्द्रवत्, आह्लादकारिणी, श्रेष्ठ शील से प्रकाशमान ज्योति के समान अज्ञानांधकार को अपने दिव्य गुणों से दूर करनेवाली, दीनता एवं हीनता के भावों से रहित, गौरवमयी परंपरा से परिपूर्ण, विविध गुणों से मंडित, विविध विधाओं में प्रवीण ये तेरे नाम हैं! नारी को इस मंत्र में ताड़ना ना करने योग्य, पूजनीया-वंदनीया कहा गया है।

ऋग्वेद भारतीय नारी को सुनृता अर्थात् मधुर एवं सत्य वचन की प्रेरिका तथा सुमति अर्थात् सम्यक् मति प्रदात्री के रूप में चित्रित कर रहा है –

"योदयित्री सुनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम् यज्ञं दधे सरस्वती।"
(ऋग्वेद–1.3.11)

ऋग्वेद नारी को सुतामिका–उत्तम लाभ अर्थात् महेश्वर्य को प्रदान करानेवाली घोषित करता है।

"उवे अम्ब सुलामिके चर्थवाङ्य भविष्यति।" (ऋग्वेद–10.87.7)

वेद में नारी को सुभद्रिका अर्थात् श्रेष्ठ कल्याणदायिका लक्ष्मी कहा है।

"सुभद्रिका कम्पीलवासिनीम्।" (यजुर्वेद–23.18)

यजुर्वेद के अनुसार स्त्री दानशीलता ऐश्वर्यवती एवं सिर पर पगड़ी के समान आदरपूर्वक धारण करने योग्य है।

"सस्नासि इंद्राप्रभा उष्णीष" (यजुर्वेद–383)

स्मृति ग्रंथों में भी कहा गया है कि –

"प्रजनार्थ महाभागाः पूजाहां गृहदीप्तयः।
स्त्रियः श्रयस्य गेहेषु न विशेषोस्ति कश्चन॥"

अर्थात् उत्तम संतानों को जन्म देने हेतु जिनका निर्माण हुआ है, ऐसी महान भाग्यशालिनी, पूजनीया और घर की शोभा कहलानेवाली स्त्रियां हैं। वे ही साक्षात् लक्ष्मियां हैं। अतः स्त्री और लक्ष्मी में कोई अंतर नहीं है।

"उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परिपालनम्।
प्रत्यहं लोकयात्रायः प्रत्यक्षं स्त्री निबन्धनम्॥"

अर्थात् संतान को जन्म देने, जन्मे हुए का पालन-पोषण करने और दैनिक लोक व्यवहार का स्त्री ही प्रत्यक्ष एवं मूल आधार है।

"अपत्यं धर्मकार्याणि शुश्रूषा रतिरूत्तमा।
दाराधीनस्तथा स्वर्गः, पितृणामात्मानश्च॥"

अर्थात् संतानों का निर्माण, धर्मकृत्य सेवा और उत्तमरति तथा अपना और पिता आदि का विशेष गुण-सुख ये सब कार्य स्त्री पर ही निर्भर है। महाभारत के उद्योग पर्व में भी कहा गया है–

"पूजनीयाः महाभागाः पुण्याश्चे ग्रहदीप्तयः।
स्त्रियः श्रियो गृहस्योक्तास्तस्माद्रष्टया विशेषतः॥"

अर्थात् पूजा योग्य, अतिभाग्यशालिनी, पुण्य कर्मवाली और गृह की शोभा बढ़ानेवाली स्त्रियों को ही घर की लक्ष्मी कहा गया है। अतः नारियों की विशेष रूप से रक्षा की जानी चाहिए।

इसी प्रकार महाभारत में भी स्त्रियों को सत्कार योग्य बताते हुए वेदव्यास कहते हैं कि–

"पूज्या लालयितव्याश्च स्त्रियो नित्यं अनाधिपः।
स्त्रियो यत्र हि पूज्यते, रमन्ते तत्र देवताः॥
अपूजिताश्चं यत्रैताः सर्वास्तत्राऽफलाः क्रिया।
तद्य चैतत्कुलम नारित यदा शोचन्ति जामयः॥"

अर्थात् हे राजन! स्त्रियों का सदा सत्कार करना चाहिए और इन्हें लाड़-दुलार-प्यार से रखना चाहिए। जहाँ स्त्रियों का सत्कार किया जाता है वहाँ दिव्य गुण संपन्न आत्माएँ जन्म लेती हैं और जहाँ स्त्रियों का सत्कार नहीं होता, वहाँ सब क्रियाएँ निष्फल हो जाती हैं, उसका परिवार नष्ट हो जाता है। वहाँ पत्नी, बहू आदि स्त्रियाँ शोकामग्न रहती हैं। कुटुम्ब की अवधारणा के स्त्री के योगदान-अवदान के संदर्भ में यह भी कहा गया है कि –

"न गृहं गृहमित्याहुगृहिणी गृहमुच्यते।
गृहं तु गृहिणीहीनं कान्तारादतिरिच्यते॥"

यानी भवन को घर नहीं कहते हैं अपितु गृहिणी(गृहनारी) ही घर कहलाता है। जो घर गृहिणी से विहिन है, वह तो जंगल से भी बढ़कर सूना है।

इन्हीं गुणों के कारण महात्मा गाँधी भी स्त्री को अबला कहना उसका अपमान मानते हैं। संभवतः इसी कारण राधाकृष्णन कहते हैं कि नारी हर हाल में पुरुष की शिक्षिका है। स्त्री के कारण हमारी सभ्यता, संस्कृति, व्यक्तित्व, भूत, वर्तमान और भविष्य सदा-सर्वदा सुरक्षित रहेगा। वह श्रद्धा की भांति विनम्र है, मैत्रेयी गार्गी की भांति बौद्धिक एवं राधा मीरा की भाँति प्रेमिल। वह उसी प्रेम मार्ग की घोर पोषिका है–पथिक है जिसके प्रेम में निश्छल तर्कों से उद्धव जैसे योग के परमज्ञानी भी निरूत्तर हो जाते हैं। स्त्री से ही जीव है, जीवन है, पुरुष है और ब्रह्मादि सुचारू रूप से चलायमान हैं। स्त्री के इन रूपों और प्रदेय को, समर्पण को स्मृति में रखते हुए ही वेद, उपनिषद् स्मृतियां आदि अनेकानेक लोकग्रंथ उसे ईश्वर की संज्ञा देते हैं।

महान चीनी दार्शनिक लाओत्से ने स्त्री तत्व को असाधारण महत्व दिया है। ओशो ने स्त्रैण गुणों का बहुत सम्मान किया है। ओशो कहते हैं जहाँ पहाड़ है वहाँ घाटियां होती ही हैं लेकिन घाटी की खासियत देखो। पहाड़ तो बनते-नष्ट होते रहते हैं, पर घाटी नष्ट नहीं होती। घाटी सिर्फ दो पहाड़ों के बीच दिखाई देती है। यह जगह पहाड़ों के न रहने के बाद भी उतनी ही बनी रहती है। घाटी का अर्थ है नकारात्मक अस्तित्व। अंधकार की भी वही हस्ती है। हम अंधकार को पैदा नहीं कर सकते, न ही उसे नष्ट कर सकते हैं। जब हम दीया जलाते हैं तो अंधकार केवल छिप जाता है। जब प्रकाश चला जाता है, तब वह मौजूद ही रहता है।

घाटी की आत्मा कभी नहीं मरती, वही स्त्री रहस्य है। स्त्रैण शक्ति में सृष्टि का गहरा रहस्य है।

जीवन में जो भी रचनात्मक है, कलात्मक है, प्रेमपूर्ण और संगीतमय है वे सब स्त्रैण गुण हैं। आज तक स्त्री को समझना इसलिए मुश्किल हुआ है क्योंकि अस्तित्व को समझने की सारी कोशिशें पुरुषों ने ही की हैं। उनकी बुद्धि तब तक स्त्री को समझ नहीं पाएगी जब तक उनके भीतर ये सारे स्त्रैण सुलभ गुण विकसित नहीं होंगे। आज स्त्रैण गुणों की इतनी जरूरत है जितनी शायद कभी नहीं थी।

ओशो कहते हैं स्त्री प्रेमातुर होती हैं, पुरुष कामातुर। स्त्री जन्म-जन्मांतर तक अपने प्रेमी का इन्तजार कर सकती है, पुरुष नहीं कर सकता।

ओशो स्त्री-रहस्य को उद्घाटित करते हुए कहते हैं–स्त्री पुरुष को अप्रत्यक्षतः उकसाती भर है परन्तु कभी आक्रमण नहीं करती, बुलाती है पर आवाज नहीं लगाती चिल्लाती नहीं। उसका बुलाना भी बड़ा ही मौन है। वह सब तरफ से घेर लेती है, पर पुरुष को पता भी नहीं चलता। साहस व सहनशक्ति उसका सबसे बड़ा रहस्य है। उजड़ी दुनिया बसाती है, जीवन संवारती है, स्वयं पर आ जाए तो जिन्दगी उजाड़ भी देती है।

स्त्री बहुत संवेदनशील और भावुक होती है, उन्हें बड़ी सावधानी से संभालना होता है। वह वीणा के तार के तार की भांति होती है। जब कोई कुशल वीणा वादक छेड़ेगा तभी उसमें मधुर स्वर, तरंगें उत्पन्न होती हैं। अधिक कल्पनाशील, भावनाप्रधान, अंतर्ज्ञान से प्रेरित होती है। स्त्री पैसिव होती है और वीनस से आई होती है। अपने आत्मसम्मान, अपने मूल्य, अपनी उपयोगिता को सर्वोच्च महत्व देती है।

स्त्री रहस्यमयी होती हैः स्त्री के जज्बात और रहस्य समंदर से भी ज्यादा गहरे होते हैं। जो सहन करने की शक्ति स्त्री में है, पुरुष में कदापि नहीं। भावनात्मक रूप से किसी भी संबंध से जुड़ी रहती है। उसकी सोच में संवेदना का संचार होता है। सृष्टि की जनक स्त्री अस्तित्व की माटी है। जरूरत पड़ने पर निडर, साहसी, अडिग भी होती है।

हर स्त्री के अंदर अपार मातृऊर्जा होती है, जो बहुत शक्तिशाली है। सृजन करने की अद्भुत क्षमता उसे प्रकृति ने प्रदान की है। नारी शरीर मातृत्व की क्षमता को सँभालने के लिए डिजाइन किया गया है जिसमें गर्भधारण, प्रसव, स्तनपान प्रक्रियाएँ शामिल हैं। स्त्री अपनी कोमल भावनाओं को किसी को नहीं कहती और चाहती है सामनेवाला बिना बोले ही उसकी भावनाओं को खुद समझ जाए। स्त्री सुरक्षित, स्पेशल, खूबसूरत और मूल्यवान के साथ प्रशंसित महसूस करना चाहती है।

स्वतः सिद्ध है कि प्रेम ही नारी का संपूर्ण अस्तित्व होता है, रिश्ते बनाने-निभाने में माहिर होती है, किसी भी रिश्ते में भावनात्मक रूप से जुड़ जाती है। ज्यादातर रिलेशनशिप में नारी ज्यादा समर्पित और वफादार होती है। उनके शरीर में ऑक्सीटॉसिन लव हार्मोन की मात्रा अधिक होती है। उसके मस्तिष्क में सेरिब्रल कोर्टेक्स बहुत अधिक होता है, इसलिए दिमाग ज्यादा तेज चलता है। उनकी आँखों की सतह अधिक दिखाई देती है। शरीर में ज्यादा इलास्टिन होता है जिससे शरीर ज्यादा ही फ्लेक्सेबल होता है। कान किसी भी आवाज के प्रति ज्यादा संवेदनशील होता है, हाई

फ्रिक्वेंसी साउंड सुनने में ज्यादा सक्षम होती है। स्पर्श के प्रति अधिक संवेदनशील होती है।

साइंस के अनुसार नारी शरीर में फॉक्स पी2 प्रोटीन ज्यादा पाया जाता है, जो लैंग्वेज प्रोटीन है, इसलिए ज्यादा बोलती है, ऐसा उनमें एक्स-एक्स क्रोमोजोम के कारण होता है। सूंघने की क्षमता अधिक होती है। उनका पूरा शरीर, पूरी त्वचा अधिक संवेदनशील होती है और उनमें संवेदी तंत्रिका तंत्र अधिक होते हैं। उनकी आँखें अधिक बड़ी, आँखों की कोठरियाँ अधिक चौड़ी, पलकों का मुँह भी बड़ा होता है, ऐसा स्ट्रोजेन के उच्च स्तर के कारण होता है। स्त्री हमेशा पुरुष से कम उम्र और ज्यादा सुन्दर दिखाई देती है। उनकी आँखें उनके मन का दर्पण होती हैं, आँखों को देखकर बहुत-सी जानकारी मिल जाती है, उनकी आँखें बोलती हैं—सब कुछ स्वतः बयां कर देती हैं। पुरुष की आँखें सीधे आपकी ओर देखती हैं जबकि महिला की आँखें बगल से, झुकी-झुकी पलकों के माध्यम से ऊपर की ओर देखती हैं, उनकी छिपी हुई आँख क्लासिकल होती है, दोनों आँखों के बीच की दूरी अधिक होती है। गर्दन पतली, लंबी, बड़ी होती है, सिर छोटा और आँखें बड़ी। महिला की आँखें अधिक नवजात होती हैं। भावनात्मक विश्वास, अंतरंगता उनकी जरूरत होती है।

इस प्रकार विज्ञान, बायलॉजी, साइकोलॉजी हर प्रकार से कुदरत ने स्त्री को पुरुष की तुलना में अधिक सौंदर्य-श्री प्रदान किया है, श्रेष्ठतर बनाया है।

गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं कहा है—

"कीर्तिः श्रीर्वाक्यः नारीणां स्मृतिर्मेधा कृतिः क्षमा।"

(गीता के 10वें अध्याय का 34वां श्लोक)

अर्थात् स्त्रियों में कीर्ति, श्री, वाक्, स्मृति, मेधा, धृति और क्षमा जैसे दैवीय गुण मैं स्वयं ही हूँ।

वंशवृद्धि ही स्त्री-समागम का प्रमुख उद्देश्य है। (ऋग्वेद—7/34/20, अथर्ववेद—14/2/14, 37, 39, पारस्वांगृह्य सूत्र झेपक कंडिका—1/70, रामायण—1/36/21, महाभारत शांति पर्व—1/10/23, विष्णुधर्मोत्तर पुराण—2/12.2/24, वराहपुराण— 142/33-4, भागवत महापुराण—11/5/13, महाभारत उद्योग पर्व—39-76)

केवल वासना की शांति के लिए मैथुन को अपराध तथा कर्मपुराण—30/9/18 में ऐसा करनेवाले के जीवन को निष्फल बताया गया है। श्रीमद्भागवत पुराण के अनुसार(10/22/26 ईश्वरार्पण बुद्धि से काम-सेवन से मुक्ति हो जाती है वरना मनुष्य इस कांचन जीवन को कांच बना कर अपने ही पैरों पर अपने ही हाथों कुल्हाड़ी मारते हैं।

स्त्री के गुण— संवेदनशीलता, पूर्वाभास, दया, सहजता, कोमलता, कामुकता और प्रेम विरासत में मिले हैं। स्त्री माँ होती है, इसलिए वह सर्वश्रेष्ठ है। विश्व के सभी पुरुषों को स्त्रियों ने जन्म दिया है। स्त्रीत्व अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि इसका उपयोग समाज द्वारा एक दायरे में रखने के लिए किया जा सकता है।

दुर्गा सप्तशती में नारी शक्ति स्तुति अर्गला स्तोत्र और किल्कम् स्त्री महात्म्य जैसे अध्यायों का पाठ निष्ठापूर्वक किया जाता है। अनगिन विशेषताओं के कारण ही स्त्री को स्त्री धन, स्त्री रत्न की संज्ञा दी गयी है।

दुर्गा सप्तशती के पांचवें अध्याय में श्लोक 16-76 तक स्त्री की विभिन्न दैवीय शक्तियों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है।

"न गायत्र्याः परो मन्त्रो न मातुर्दैवतेपरम्।"

चाणक्य नीति के इस श्लोक का अर्थ है अन्न और जल के दान समान कोई कार्य नहीं, द्वादशी के समान कोई तिथि नहीं, गायत्री के समान कोई मंत्र नहीं और "माँ से बढ़कर कोई देवता नहीं।"

स्त्री माँ होती है, इसलिए वह सर्वश्रेष्ठ है।

तैत्तिरीय उपनिषद्ः 'मातृ देवो भवः' कहकर उपनिषदों ने माँ को सर्वोपरि बतलाया जबकि मनुस्मृति में माँ को पिता से सौ गुना बड़ा बतलाया गया है। रामचरितमानस में बाबा तुलसीदास कौशल्या माँ के श्रीमुख से कहलवाते हैं—

"जौ केवल पितु आयषु ताता। तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता॥"

यानी वन गमन की आज्ञा यदि केवल पिता ने दी हो तो मत जाओ।

माता के बारे में जितना कहा जाए उतना कम है। कोई भी मूल्य या वस्तु माता का ऋण चुकाने में असमर्थ है। हमारे धर्मग्रंथों और शास्त्रों में माँ की महिमा का बखान करते हुए माँ को ईश्वर तुल्य कहा गया है। इसलिए ऐसा कहा गया है कि भगवान हर स्थान पर आपकी मदद करने नहीं पहुँच सकते इसलिए उन्होंने माँ बनाया।

नारी सृष्टि की सबसे खूबसूरत संरचना है। नारी ही तो है, जो इस धरती पर जीवन को लाती है और उस जीवन का पालन-पोषण भी करती है। नारी के बिना संसार में जीवन की परिकल्पना भी नहीं की जा सकती है। कहने में नहीं आता 'नर शक्ति', हमेशा 'नारी शक्ति' ही कहा जाता है। 'शक्ति' पर्याय हमेशा नारी के साथ ही लगाया जाता है, शक्तियों की पूजा देवी रूप में ही होती है, देव रूप में नहीं। नारी शक्ति की चेतना का प्रतीक है।

देवी भागवत् के अनुसार—

"देवीं मायां तु श्रीकामः।"

नारी समस्त श्रेष्ठ और मांगलिक कार्यों की देवी-शक्ति है।

चाणक्य नीति के अनुसार – नारी पुरुष की तुलना में अधिक समर्थ, साहसी और बुद्धिमान होती है, चालाक, जीवंत और सूझबूझवाली होती है, मुश्किल-से-मुश्किल समय में भी आसानी से निकल जाती है, अधिक सामंजस्यपूर्ण होती है, अधिक शुद्ध अंतःकरण की होती है, तर्क की अपेक्षा अपने अंतःज्ञान, कल्पना और भावना पर अधिक भरोसा करती है।

नारी : जैसे धरती पर जीवन का उत्कीर्ण, उत्कर्ष है, नौनिहाल की नींव है, एक विश्व विरासत, जीवन धरोहर है। शक्ति ही संसार का संचालन कर रही है। शक्ति के बिना शिव भी शव समान है। चेतनाशून्य माना गया है। जिस दिन से आपकी उत्पत्ति होनी शुरू होती है उसी दिन से नारी शक्ति आपके साथ होती है। आदिशक्तिस्वरूपा नारी में बचपन से ही भोलापन, सहनशीलता, सुकुमारता, लावण्य-माधुर्य, लज्जा, मर्यादा, त्याग, उदारता होती है।

नारी से ही नर होता है।

भारतीय उपासना में स्त्री तत्व की प्रधानता पुरुष से अधिक

बताई गई है। नारी शक्ति की चेतना का प्रतीक है, प्रकृति की प्रमुख सहचरी भी है। वह पुरुष को अपनी चेतना से आकृष्ट कर शिव और शक्ति का मिलन करती है और संसार की सार्थकता सिद्ध करती है।

दुर्गासप्तशती में – "त्वमेव संध्या सावित्री त्वंदेवि जननी परा" का उल्लेख है। ऐसे अनेक श्लोकों के द्वारा शक्ति के शाश्वत् स्वरूप का वर्णन किया गया है।

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' के शक्ति की पूजा काव्य में भगवती आदिशक्ति नारी की स्तुति और महिमा है। छत्रपति शिवाजी ने भगवती भ्रमरतपा भवानी की आराधना से शक्ति अर्जित कर अत्याचारियों को परास्त किया। महाराणा प्रताप द्वारा भगवती चामुण्डा की विशेष आराधना का उल्लेख है।

नारी : अपरिभाषित, अद्‌भुत, स्वयं में सम्पूर्ण। कहीं जिसमें नहीं कोई कमी, रूप-सौन्दर्य सम्पन्न, हर गुण से पूर्ण। अनोखी रचना ईश्वर की। खुद उसके सजदे में झुकी सारी जन्नत, सारा ऐश्वर्य-वैभव। उसी से घर-संसार पूरा है। मृत्यु से लड़कर जीवन औलाद देती है, हर पीड़ा, हर दुःख हर लेती है, सुख के लिए बलिदान देती है। स्त्री है देवी शक्ति, मर्यादा की मूरत, जो दिखता नहीं अब तक उस भगवान की सूरत। पृथ्वी पर प्रेम की मधुर आंच है, रस-माधुर्य का स्रोत है, सृष्टि में जीवन की पवित्र कोख है, रचना कला की प्रेरणा है, सूर्य की ऊष्मा है, चांदनी की शीतलता है, जीवन की सुगंध और मिठास है, हर्ष है हमारे जीवन का।

गरुड़ पुराण के अनुसार – "हर घर में क्यों पैदा नहीं होती बेटियां? कैसे होता है लक्ष्मी का जन्म?" अर्जुन के इस प्रश्न का उत्तर भगवान श्रीकृष्ण ने इस प्रकार दिया है –

"अगर किसी के घर पुत्र का जन्म होता है, तो वह उसका भाग्य है लेकिन अगर किसी के घर पुत्री का जन्म होता है तो वह उसके सौभाग्य की बात है। जो स्त्री-पुरुष पूर्व जन्म में पुण्य कार्य करते हैं उन्हें ही पुत्री-रत्न के माता-पिता होने का परम् सौभाग्य मयस्सर हो पाता है।"

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं – "सबके भाग्य में बेटियां नहीं होतीं।"

सृष्टि के रचयिता पहले से ही जानते रहते हैं कि कौन बेटियों के लिए अच्छे माँ-बाप हो सकते हैं। धन होते हुए भी कुछ लोग ऐसे होते हैं जो बेटियों का भार सह नहीं सकते जबकि कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो गरीब होते हुए भी बेटियों को परमात्मा का प्रसाद मानकर बड़े ही प्रेम से पाल-पोस लेते हैं। बेटियों के जन्म के लिए भगवान् ऐसे ही घरों को चुनते हैं जो बेटियों का भार खुशी-खुशी निर्वहन-संवहन कर सके। और सही तरह से उनका पालन-पोषण, संरक्षण कर सके। ये भगवान के स्वयं का खास चयन होता है।

महाभारत में स्त्री-भ्रूण हत्या को कृष्ण ने सबसे बड़ा पाप कहा है। हिन्दू धर्म में बेटियों को लक्ष्मी रूप माना गया है। नवरात्रि में कन्या-पूजन का विधान है। हर किसी को भगवान् बेटी के माता-पिता होने का सौभाग्य प्रदान नहीं करते। माता लक्ष्मी हर किसी के घर नहीं आती।

कृष्ण कहते हैं – वह बेटियां ही हैं जो सृष्टि को चलाती हैं। जिस दिन इस सृष्टि में बेटियों का जन्म होना बंद हो जायेगा, उस दिन सृष्टि का विनाश हो जायेगा। लक्ष्मी ऐसी ही है जो आपको, आपके परिवार को धन-सम्पदा, वैभव-समृद्धि की वृद्धि करती है। वह दो घरों की लक्ष्मी होती है। बेटियां भगवान का दिया अनमोल तोहफा होता है जो किसी भी अन्य धन से कहीं ज्यादा बड़ा धन होता है। बेटा तो एक ही कुल को चलाता है, बेटियां दो-दो कुलों को रोशन करती हैं।

वस्तुतः 'नारी-कृति' पर स्वयं परमात्मा के हस्ताक्षर होते हैं।

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता।"

नारी उस सूत की तरह होती है, जो बिना किसी चाह के, बिना किसी कामना के, बिना किसी पहचान के अपना सर्वस्व खोकर भी किसी के जान-पहचान की मोहताज नहीं होती है। और शायद इसीलिए दुनिया राम के पहले सीता को और श्याम के पहले राधा को याद करती है। अपने को विलीन करके पुरुषों को सम्पूर्ण करने की शक्ति भगवान् ने स्त्रियों को दी है।

स्त्री जल की तरह होती है जिसके साथ मिलती है उसका ही गुण अपना लेती है। स्त्री नमक की तरह होती है जो अपना अस्तित्व मिटा कर भी अपने प्रेम-प्यार तथा आदर-सत्कार से परिवार को अच्छा बना देती है। स्त्री माला में सूत-सी होती है जो अगर टूट जाये तो सारे फूल इधर-उधर बिखर जाते हैं।

कोई भी मानव जन्म बिना माँ के संभव नहीं है। भगवान् के बाद दूसरा नाम माँ का है जो नौ महीने बच्चे को गर्भ में रखती है। वो माँ ही थी जिसके कारण हम सभी आज हैं।

नारी, धरती, नदी और गाय को माता मानकर पूजा जाता है क्योंकि वह जीवन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है और उसमें समाहिता, संजीवनी शक्ति और सौभाग्य की प्रतीक है। वह समाज में परिवार की रक्षक और संरचना का एक अभिन्न हिस्सा है जो समृद्धि और समाज के विकास में मदद करती है। नारी का सम्मान करना और समर्थन प्रदान करना हमारी जिम्मेदारी है।

नारी अनंत रूपों में हमारे जीवन और आध्यात्मिक ऊर्जा का केन्द्र है। जहाँ नारी की पूजा होती है उस घर में हमेशा एक सकारात्मक ऊर्जा बरकरार रहती है जो कि एक देवी ही कर सकती है।

नारी के प्रति श्रद्धाभाव हमारी संस्कृति की पहचान है –

"मातृवत् परदारेषु, परद्रव्येषु लोष्ठवत्।
आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति सः पंडितः॥"
"सर्वमंगल मांगल्ये शिवे सर्वार्थ साधिके"...

इस श्लोक के साथ जब देवी दुर्गा की आराधना शुरू होती है तो नारी शक्ति का अहसास होता है। उस शक्ति का जिसकी बदौलत समाज में परिवर्तन आया है। युग बदला है, काल बदला है। समाज की सोच बदली है।

जब-जब ईश्वर ने अवतार लिया है तब-तब उनकी शक्ति उनकी माया उनके साथ आई है।

रवीन्द्रनाथ टैगोर की कविता :– "सुन्दरता की तलाश में मैं देश-देशांतर घूमा, पर मुझे पता नहीं था कि मेरे घर के पीछे एक धान की बाली पर टिके एक ओस की बूंद में अद्‌भुत सौन्दर्य है और सबसे बड़ा सौन्दर्य घर के भीतर माँ की ममता में है।"

"महिलाओं के अधिकार मानव अधिकार हैं।"

दुनिया को नारीवादियों की जरूरत है क्योंकि नारी ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ कलाकृति है। भाष्यकार महर्षि पतंजलि के अनुसार–

"स्तास्यति अस्था गर्भ इति स्त्री"

वेदों में नारी का गौरव अनेक प्रकार से वर्णित है –

"स्त्री ही ब्रह्मा वभूषित"–ऋग्वेद 8/33/9

जिस प्रकार ब्रह्मा को ज्ञान-विज्ञान की श्रेष्ठता में सर्वोच्च स्थान दिया जाता है, उसी प्रकार नारी को ज्ञान-विज्ञान में निपुण होने के कारण ब्रह्मा बताया गया है।

छायावादी कवि जयशंकर प्रसाद ने नारी को अति सुन्दर शब्दों में परिभाषित किया है –

"नारी तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रजत नग पग
तल में
पीयूष स्रोत-सी बहा करो जीवन के सुन्दर समतल में"

भला इससे श्रेष्ठ व्याख्या और क्या हो सकती है?

नारी : धरती आसमान से परे, देवताओं के सम्मान से परे, सम्पूर्ण ब्रह्मांड में लोक-परलोक में व्याप्त है, पर्याप्त है। जीवन और संसार है। इसके बिना जीवन संभव नहीं। सम्मान है, अभिमान है। स्वयं ब्रह्मा की माया-छाया है। जितना जानोगे, उतना उलझोगे। पूज्य देवी है। स्नेह और ममता की प्यारी। भावना और एहसास में सबसे न्यारी। एक सुनहरी अनुभूति और शक्ति का स्वरूप। चाहत की पराकाष्ठा। मचलते मनों और धड़कते दिलों की आस्था। सहानुभूति व आत्मीय लगाव। नफरत व आलोचना का अलगाव। प्रेम का बड़ा प्रारूप। स्वयं में सम्पूर्ण है नारी!

वैदिक आम्नाय के सिद्धान्तानुसार – नारी को सर्वत्र प्रथम् स्थान दिया गया है। (लेडीज फर्स्ट) नारी में समाहित है संजीवनी शक्ति और वह सौभाग्य का प्रतीक है। नारी सृष्टि की सबसे खूबसूरत संरचना है, नारी ही धरती पर जीवन लाती है, उनका पालन करती है, नारी बिना संसार में जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती, नारी के जरिये ही सृष्टि चलती है।

भगवती देवी शर्मा (अखण्ड ज्योति) के अनुसार – नारी सर्वदा नर्मदा नदी के समान निर्मल व पूजनीय होती है क्योंकि नारी ही साक्षात् लक्ष्मी है। उन्हीं को स्वभावतः निश्छल अंतःकरण प्रदान किया गया है। नारी में नर की अपेक्षा सहृदयता, दयालुता, उदारता, सेवा, परमार्थ एवं पवित्रता की भावना अधिक है।

"रेरेव निर्मला नारी पूजनीया सदा मता।
यतो हि सैव लोकेऽस्मिन् साक्षात् लक्ष्मी मताबुधैः॥"

नारी एक शब्द भर नहीं है, है एक संपूर्ण एहसास। नारी के अस्तित्व से ही मनुष्य का अस्तित्व है। माता का प्रेम अधिक सात्विक और उच्च स्तर का होता है। माता अधिक उदार, करुणापूर्ण, वात्सल्यपूर्ण होती है, पिता से अधिक महिमामयी होती है माता।

इस सृष्टि में संपूर्ण परा-अपरा विद्याएं नारी के ही भेद हैं।

"वध सर्वास्तवदेविभेदः स्त्रीः
सर्व समलानकास्तु
त्वयेकया पूरितमंत्रपूसैक्ति स्तुतः स्तव्य"

शाक्यों में वर्णित है – गायत्री सर्वतोन्मुखी समर्थता की अधिष्ठात्री है नारी।

अपना कल्याण करने वाली माता की निन्दा न करें, न उन्हें कठोर वाणी से कभी अपमानित करें, न उनका जी दुखाएं क्योंकि माता समान संसार में कोई होता ही नहीं।

जगदम्बामयं पव्य स्त्रीमातेम विशेषतः।

नारी माँ को जगदम्बा का स्वरूप मानें।

"स्त्रीणा निन्दां प्रहारतः कोटिल्यप्रियं वाचः।
आत्मनो हितमान्विच्छन्द देविं भक्तो विवर्जयेत्॥"

राम हमारे घरों में आए इसलिए कौशल्या की जरूरत है। कृष्ण का अवतार देवकी की कोख ही कर सकती है। कर्ण, अर्जुन, भीम के पुनः दर्शन करने हों तो कुन्ती तैयार करनी पड़ेगी। हनुमान चाहिए तो अंजनी तलाश करनी होगी। अभिमन्यु का निर्माण कोई सुभद्रा ही कर सकती है। शिवाजी की आवश्यकता हो तो जीजाबाई का अस्तित्व पहले होना चाहिए। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी नारी नर की अपेक्षा अधिक सशक्त होती है।

एस्ट्रोजन हॉर्मोन के कारण महिला अधिक शांतिप्रिय, सहनशील, समंजनकारी होती है, नर्म स्वभाव की होती है इसलिए उनमें हृदय रोग की संभावना कम होती है। उनके शरीर की हड्डियाँ अधिक हल्की और पतली होती हैं जिससे शरीर में अधिक लचीलापन होता है। प्रसव की पीड़ा को सह लेती है। उनमें पाया जानेवाला प्रोटीन इम्यूनोग्लोबिन एम० के कारण शरीर की प्रतिरोधक प्रणाली अधिक मजबूत होती है। उनके फेफड़े अधिक प्रतिरक्षित होते हैं जिससे अधिक ऑक्सीजन ग्रहण करती है, साँस अधिक चलती है, नाड़ी भी अधिक गतिशील रहती है। स्नायु अधिक संवेदनशील होने से मस्तिष्क को ज्यादा तेज गति से संदेश मिलते हैं। मस्तिष्क के कुछ भागों में ब्लड फ्लो अधिक तीव्र होता है जिससे स्मृति पुरुष से बेहतर होती है। भावनात्मक शब्दों को अधिक याद रखती है। औसत आयु पुरुष से अधिक होती है। जन्म के कुछ हफ्तों तक पुरुष की अपेक्षा अधिक मजबूत व स्वस्थ होती है।

नारी प्राकृतिक रूप से समस्या की निवारक होती है। सारी स्थितियों को एक साथ पूरी दक्षता से संभाल लेती है और किसी को एहसास भी नहीं होने देती। ईश्वर ने नारी को बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी। कोमल होते हुए भी स्त्री तन-मन से पुरुष से अधिक मजबूत है। मातृत्व के रूप में इतना सृजन कर लेती है कि और कोई सृजन करने की जरूरत नहीं रह जाती। एक जीवित व्यक्ति को बड़ा करना सबसे बड़ा सृजन है। आन्तरिक सम्पदा में भी नारी नर से कहीं अधिक बढ़ी-चढ़ी है। उसका अपमान नहीं, सम्मान किया जाना चाहिए। क्योंकि ईश्वर की जन्मदात्री भी नारी ही रही है। बच्चों की प्रथम गुरु माँ ही होती है। बच्चों में संस्कार भरने का काम माँ(नारी) द्वारा ही किया जाता है। नारी के उत्थान से ही धर्म-संस्कृति का उत्थान हो सकता है।

माँ पुतलीबाई ने गाँधीजी में श्रेष्ठ संस्कारों का बीजारोपण किया था जिस कारण उनका व्यक्तित्व विराट् व अनुपम है।

इतिहास गवाह है – देवी अहिल्याबाई होलकर, मदर टेरेसा, इला भट्ट, सुचेता कृपलाणी, सरोजिनी नायडू, महादेवी वर्मा, राजकुमारी अमृत कौर, अरुणा आसफ अली, कस्तूरबा गाँधी, इन्दिरा गाँधी जैसी प्रसिद्ध महिलाओं ने अपने मन, वचन व कर्म से सारे संसार में अपना नाम रोशन किया है। अतः नारी को उचित सम्मान दिया जाना चाहिए।

आलेख

कबीर काव्य में विद्रोह

डॉ. अमर सिंह वधान,
3150, सेक्टर 24-डी, चंडीगढ़
मोबाइल–9876301085

कबीरदास के जन्म, शिक्षा, पारिवारिक जीवन, काव्य सृजन और जीवन दृष्टि के संबंध में प्रचलित विभिन्न दन्तकथाओं, जनश्रुतियों, मतों, अनुमानों एवं वाद-विवादों की शल्यक्रिया यदि न भी की जाए तो इतना विश्वासपूर्वक अवश्य कहा जा सकता है कि वे एक विधवा ब्राह्मणी के पुत्र थे, जिसने लोक-लज्जा की रक्षा के लिए उन्हें लहरतारा तालाब के समीप फेंक दिया था और इस अवस्था में उन्हें नीरू और नीमा जुलाहा दम्पत्ति ने उठा लिया था। इसी दम्पत्ति द्वारा पालित एवं वर्धित यह असहाय शिशु हिन्दू और मुस्लिम दोनों जातियों के संस्कारों से सुसिंचित होकर विश्व पटल पर एक युग प्रवर्तक के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। आगे चलकर यही बालक कबीर के रूप में संपूर्ण मानवता के शुभांशु के तन्तुवाय बनते हैं। वे विद्वान नहीं; साधक थे, पोथी पंडित या अध्येता नहीं; ज्ञानी थे और बुनकर का काम करते हुए भी परमार्थिक जीवन में रमे हुए थे। यह तथ्य भी स्पष्ट कर दें कि लोई उनकी शिष्या मात्र थी, स्त्री नहीं, जैसा कि कबीर पंथी साधुओं की आज भी मान्यता है। दरअसल, लोई एक बनखंडी बैरागी की पोष्य पुत्री थी, जिसे उसने कोई ऊनी चादर में लिपटा हुआ पाया था। कबीर की भक्ति और निस्पृहं भावना देखकर वह उनके साथ रहने लगी थी। लेकिन कबीर की 'मेरी बहुरिया को धनिया नाउ' (रागु आसा 36) और बूढ़ा बन्सु कबीर का पारिवारिक जीवन स्त्री और पुत्र से भरपूर था। वैसे 'धनिया' नाम के स्थान पर कई जगह 'धोई' नाम भी मिलता है।

कबीर के व्यक्तित्व और कृतित्व के विविध पक्षों, उनकी दार्शनिकता, क्रान्तिकारिता एवं प्रासंगिकता पर विद्वानों ने बड़ा गुणात्मक तथा अनुसंधानपरक कार्य किया है। विदेशी विद्वानों ने भी कबीर काव्य को अपनी मूल्यांकनपरक दूरबीनों से परखने के स्तुत्य प्रयास किये हैं, लेकिन उनके काव्य में सामाजिक एवं व्यवस्थागत विद्रोह का पक्ष अपेक्षाकृत अछूता ही रहा है। कुछ जिम्मेदार आलोचकों एवं लेखकों ने कबीर की विद्रोह चेतना को 'आक्रोश', 'क्रान्तिकारिता', 'शूरवीरता', 'असहमति', 'निषेध', 'इंकलाब' जैसे शब्दों में उलझाया अधिक है, निखारा कम है। जबकि विद्रोह मानव मन की वह आन्तरिक ऊर्जात्मक मनोवृत्ति है, जिसकी प्रकृति अन्याय, असमानता तथा आततायी शक्तियों के विरुद्ध घोर संघर्ष करने की प्रेरणा देती है। अपने अधिकारों के प्रति सजगता, स्वातंत्र्य, मुक्ति कामना, दासता की यातना से टकराना विद्रोह की आंतरिक संघटना के मूल तत्व हैं, जो इसकी नींव डालते हैं। इसमें कोई शक नहीं कि विद्रोह विचार और विवेक का विषय है, जो अन्ततः मूल्य चेतना और संघर्ष चेतना से जुड़ा हुआ है।

यूँ तो किसी सीमा तक 'आक्रोश' को भी विद्रोह का एक अन्य तत्व माना जा सकता है, लेकिन आक्रोश समग्रतः विद्रोह नहीं है। प्राकृतिक परिवर्तन की स्थिति में भी एक विशेष प्रकार का तनाव, दबाव एवं आक्रोश विद्यमान रहता है। वैचारिक चिंतन में परिवर्तन की प्रबल कामना एक विशेष प्रकार के संघर्ष को जन्म देती है। इस संघर्ष की स्थिति में जो ऊष्मा पैदा होती है, वही वैचारिक संघर्ष की भाषा में 'आक्रोश' कहलाती है। जबकि विद्रोह की भावना, जिसे हम कबीर में देखते हैं, मिथ्या, अन्यायपूर्ण, ढोंगी और आततायी स्थिति से सामना करने पर निष्पन्न होती है। जब व्यक्ति दासता की मनोवृत्ति से उभरने तथा समानता की भूमि पर अपने अधिकारों के प्रति सजग होकर संघर्षरत होता है, तभी विद्रोह का शिलान्यास होता है। विद्रोही व्यक्ति की सच्चाई, उसकी मानवीयता, न्यायप्रियता और उन्हें प्राप्त करने एवं उसका पथ दृढ़ करने के लिए निरंतर कार्य करने के निकष पर पहचानी जाती है। उल्लेखनीय है कि समाजशास्त्रियों ने आक्रोश, क्रोध, वैर तथा विद्रोह में प्रकृतिगत भेद किया है। "विद्रोह में, विद्रोही के मन में व्यक्तिगत लाभ और हानि का भाव या संवेग नहीं होता। यदि विद्रोह आत्मगत असंतुष्टि या व्यक्तिगत कुंठा से उत्पन्न हुआ है तो उसे विद्रोह नहीं, 'नाराजगी', 'अमर्ष' या 'आक्रोश' कहा जाएगा।"

क्षुद्र विद्रोह की स्थिति में विद्रोही निजी इच्छा-अनिच्छा की न चिंता करता है, न उस पर अधिक विचार करता है। उसका मन, तो लक्ष्योन्मुख होता है। कबीर की सत्यता, मानवता, न्यायप्रियता और पक्ष सुदृढ़ता उनके विद्रोही तेवर के संदर्भ में बड़ी सहजता से पहचानी जाती है। कबीर का साहित्य, उनका आत्मसंघर्ष, व्यक्तिगत इच्छाओं से ऊपर उठता हुआ लक्ष्योन्मुख होता चला जाता है। उसमें पीड़ित मानवता का दर्द और अन्यायी शक्तियों के विरुद्ध संघर्ष करने की प्रेरणा है। एक विद्रोही संत कवि के रूप में कबीर मानवीय चेतना, अवस्था, भावना एवं आदर्शों के संवाहक हैं। उनके लिए जीवन की सार्थकता, दूसरों के लिए जीने में है। यही वजह है कि उनका विद्रोह एक सनातन, एक निरंतर रहने वाली मनोदशा अथवा आत्मस्थिति है। यह ठीक है कि मानव विरोधी कार्यों, घटनाओं का सामाजिक व्यवस्थाओं का विरोध विद्रोही की शाश्वत नियति है। लेकिन इसके बरक्स कबीर का विद्रोह ध्वंसपरक प्रवृत्ति न होकर मूल्यपरक प्रक्रिया अथवा मूल्य चेतना है। उनका विद्रोह सत्ता प्राप्ति का हथियार नहीं, अपितु मनुष्य की पूर्ण मुक्ति का संघर्ष है। इस संदर्भ में शिवकुमार मिश्र का कहना वाजिब है, "सामाजिक जीवन का संपूर्ण इतिहास आश्चर्यजनक एवं महान परिवर्तनों का इतिहास है", फिर महान परिवर्तन भी तो विद्रोह के बाहुबल से ही संभव होते हैं।

कबीर की कविता एक युगान्तरकारी रचना है, जिसे देश-काल की सीमाओं में बाँधा नहीं जा सकता। इसमें समय की अन्य परंपराओं को छिन्मूल करने की शक्ति है और जीवन में जागृति लाने की अपूर्व क्षमता। जरा गहराई में उतरकर देखें तो "हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल में कबीर ने जितने साहस और निर्भीकता से परंपरागत हिन्दू धर्म के कर्मकाण्ड से संघर्ष लिया, उतनी ही निडरता और हिम्मत से भारत में जड़ पकड़ने वाली इस्लाम की नवीन साम्प्रदायिक भावना से लोहा लिया।" उन्होंने दोनों धर्मों की अधार्मिकता पर कुठाराघात किया और एक नए सम्प्रदाय का सूत्रपात किया, जो 'संत मत' के नाम से प्रख्यात हुआ। इस संप्रदाय ने शास्त्रीय जटिलताओं को सुलझाकर धर्म को सरल और जीवनमय बना दिया। इसमें दो राय नहीं कि कबीर संत पहले थे, कवि बाद में। उन्होंने धर्म के व्यापक रूप को सुबोध बनाने के लिए काव्य नियोजित किया। यही वजह है कि कबीर में धार्मिक दृष्टिकोण प्रधान है, काव्यगत दृष्टिकोण गौण। लेकिन जीवन में गहरी पैठ होने के कारण उनकी कविता में विद्रोह के स्वर अनुगुंजित होने लगे। उनके काव्य में ओज होने के कारण जीवन-जागरूकता और विद्रोह का मार्ग प्रशस्त हुआ। विद्वानों का मानना है कि कबीर के नाम से पाई जाने वाली रचना अधिकांशतः उनके प्रथम 'शिष्य' धर्मदास द्वारा ही लिखी गई है। बाद में कबीर पंथ साधुओं ने अपनी ओर से बहुत-सी रचनाएँ लिखीं और संत कबीर में अपनी प्रगाढ़ श्रद्धा होने के कारण उन्हें कबीर के नाम से ही प्रचारित

किया। मसि, कागज और कलम न स्पर्श करने वाले इस संत ने पुस्तक ज्ञान का सदा तिरस्कार किया। उन्होंने जीवन और संसार पर चिंतन कर उपदेश किए। लेकिन 'बीजक' और 'साखी' ग्रंथों की प्रामाणिकता चिंत्य है।

यह सही है कि कबीर का काव्य अधिकतर मौखिक ही रहा है, जो गुरु के मुख में अधिक प्रभावशाली है, पुस्तक में नहीं। हैरत नहीं कि कबीर पंथ में पुस्तक का महत्त्व गुरु से अपेक्षाकृत कम है। उनकी मान्यता है कि सतगुरु का उपदेश 'कर्ण विभूषण' के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए, पुस्तक पाठ से नहीं। सर्वेक्षण साक्ष्यों के अनुसार जोधपुर राज्य पुस्तकालय में कबीर संबंधी आठ हस्तलिखित ग्रंथ प्रतियाँ उपलब्ध हैं। कबीर के नाम से आज जो ग्रंथ हमारे सामने हैं, उनके विषय में एक बात तो निश्चित है कि वे एक ही रचनाकार द्वारा नहीं लिखे गए, क्योंकि उनमें शैली की बहुत भिन्नता है। जबकि कबीर का दृष्टिकोण धार्मिक सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार था, काव्य शैलियों का निर्माण नहीं। उल्लेख्य है कि नागरी प्रचारिणी सभा, बनारस की खोज रिपोर्ट के अनुसार सन् 1901 से सन् 1922 तक की खोज में कबीर द्वारा रचित 85 प्रतियों की सूची मिलती है। स्वतंत्र ग्रंथों की संख्या 56 अनुमानित की गई है। श्री गुरु ग्रंथ साहिब में कबीर की साखियों (श्लोकों) की संख्या 243 है, जबकि कबीर ग्रंथावली में केवल 192 हैं। इसी प्रकार श्री गुरु ग्रंथ साहिब में कबीर की पद संख्या 228 है, जबकि कबीर ग्रंथावली में 222 है। स्पष्ट है कि कबीर ग्रंथावली में 36 साखियाँ और 6 पद नहीं हैं, जो श्री गुरु ग्रंथ साहिब में विद्यमान हैं। आश्चर्य नहीं कि श्री गुरु ग्रंथ साहिब में मौजूद कबीर के काव्य-पाठ को अधिक प्रामाणिक माना जाता है, क्योंकि यह अपने स्वाभाविक रूप में वर्तमान है और इसका पंजाबी संस्कार नहीं हुआ। ऐसा मालूम पड़ता है कि गुरु अंगददेव जी ने तत्कालीन अधिक प्रामाणिक पाठ संग्रह किया होगा और उसको उसी रूप में अपनी नवीन लिपि (लंडा लिपि) में लिख दिया।

यह भी गौरतलब है कि कबीर के 40 पद और 60 साखियाँ ऐसी हैं, जिन्हें विद्रोह की रचनाएँ कहा जा सकता है, शेष तकरीबन 5000 रचनाएँ भक्तिपरक हैं। इनमें न कर्कशता है और न ही दम्भ का ज्वार। यहाँ तो कबीर स्वयं को 'राम का कुतवा' कह रहे हैं और सबसे प्रिय बोलने का आग्रह करते हैं। उनकी रचना में कई रंग देखने को मिलते हैं। यथा—अक्खड़पन, समाज चेता का, कटुक्तिकार का, एकदम भाव विभोर होकर आत्म समर्पण का, गहरी रहस्य चेतना का, प्रेम के तन्मय भाव का और चरम वैराग्य का भी। तभी तो राम स्वरूप चतुर्वेदी कह ही देते हैं, "इन सभी रंगों में उनकी कला सक्रिय है और पूरी-पूरी संश्लिष्ट। इतना वैविध्य कम रचनाकारों में मिलेगा।" इतिहास गवाह है कि कबीर को अपने निर्भीक धार्मिक विश्वासों के कारण सिकन्दर लोदी से संघर्ष लेना पड़ा था, टकराना पड़ा था। इस तरह हिन्दी के पहले बड़े कवि कबीर के कृतित्व का एक बड़ा अंश हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष को प्रशमित करने पर खर्च हुआ। फिर हिन्दी का बड़ा महाकाव्य 'पद्मावत' भी इसी हिन्दू-तुर्क द्वन्द्व की कथा कहता है। ताज्जुब नहीं कि इन सभी प्रसंगों में साम्प्रदायिकता की भावना कहीं नहीं है। न हिन्दू कवि चन्दरबाई में, न मुस्लिम कवि मलिक मुहम्मद जायसी में और न कवि कबीरदास (ना हिन्दू—ना मुसलमान) में।

कबीर बड़े कवि वहाँ हैं, जहाँ वे अपने ही अंतर्जगत का वैविध्य संधान करते हैं और उसी से जीवन की विराटता सिरजते हैं। उन्होंने अपेक्षाकृत कम सामग्री से अपेक्षाकृत अधिक की रचना की है। जाहिर है कि यह अधिक कठिन कवि कर्म है, जिसका निर्वाह कबीर ने साहस से किया है। 'कबीर पढ़े-लिखे नहीं थे', 'उन्हें सुनी-सुनाई बातों का ज्ञान था', 'वे मूलतः समाज सुधारक थे'—ऐसी उक्तियाँ कबीर के काव्य विवेचन, मूल्यांकन और उनकी विद्रोही चेतना की परख-पहचान में अप्रासंगिक बिन्दु ही हैं। यहाँ स्मरण करा दें कि निराला सिर्फ प्राइमरी स्कूल तक शिक्षित थे, लेकिन उनके अध्यात्म गुरु विवेकानंद विद्वान थे। इसी तरह कबीर के गुरु रामानंद बड़े पंडित और विद्वान थे। इन दोनों ने कविताएँ भी लिखी हैं। परन्तु कबीर की तुलना में, रामानन्द और निराला की तुलना में विवेकानन्द का काव्य उल्लेख योग्य नहीं हो पाता। समाज सुधारक की भावना या हिन्दू-मुस्लिम एकता कबीर के लिए एक प्रमुख मिशन था, जिसे उन्होंने अपनी काव्य संवेदना और विद्रोही अनुभूति में ढाला। कबीर की विद्रोही कविता के बनने और उत्कृष्ट रूप में निखरने का कारण उनमें तरह-तरह की विरोधी मनोदशाओं और उनसे जुड़ी काव्य भाषा के स्तरों की रगड़ है।

निस्संदेह, कबीर का विद्रोह एक मजबूत विचार पर मजबूती से टिका हुआ है। इसमें भावुकता, स्नायुविकता एवं रोमांटिकता का जरा भी अंश नहीं है। इसमें तो संघर्षशीलता है, सजगता है, निर्भीकता है, सामाजिक बदलाव के लिए सृजनात्मक सक्रियता है, कारगर हथियारोन्मुखता है, वैचारिक भित्ति है और है संवाद-जिरह भी। कबीर की वैचारिकता का आग्रह उनके विद्रोह को भयावह तंत्र से टकराने की शक्ति देना है। इसी टकराहट और संघर्ष के परिणामस्वरूप जो यातना जन्म लेती है, वह विद्रोह को वैयक्तिक से सामूहिक बनाती है। यही सामूहिकता वैचारिक धरातल पर जहाँ कबीर के विद्रोह को सक्रिय और गतिशील बनाती है, वहीं उसे सपाट और सरलीकृत होने से बचा लेती है। विचार औजार मात्र नहीं है, यह तो सक्रिय वैचारिक सत्ता है। कहना न होगा कि कबीर का विद्रोह वैचारिक सत्ता पर टिका हुआ है और इसीलिए उसकी कारगर सामाजिक भूमिका भी सधी हुई है। कबीर ने अपने अंदर के सत्ता पुरुष को खड़े पाया था ताकि व्यवस्थागत बाहरी सत्ता पुरुष उसे देखकर दहशत खाए। इसी बिन्दु से कालान्तर में कार्ल मार्क्स अपने 'वर्ग संघर्ष' सिद्धान्त की बुनियाद एवं ढाँचा तैयार करते हैं।

कबीर के समग्र साहित्य की राह से गुजरने पर यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि वे क्रान्तिकारिता के मुकाबले विद्रोहात्मकता का रूप ही अख्तियार करते हैं, कदाचित् इसलिए कि क्रांति की मूल प्रकृति संघर्ष और परिवर्तन पर आधारित है। यह सामाजिक संगठन में एक आकस्मिक आमूल बदलाव है, जो समाज की बुराइयों का नाश करते हुए व्यक्तिगत चरित्र को प्रभावित करने के साथ-साथ जीवन कला में उन्नति लाती है। क्रांति में भीड़ की हिंसा, शासक वर्गों की हत्या तथा शासन के तख्ते को उलटा देने की आकस्मिक एवं प्रचंड प्रतिक्रिया होती है। इस संदर्भ में फ्रांसीसी क्रांति, रूस की बोल्शेविक क्रांति और ब्रिटिश औद्योगिक क्रांति को देखा जा सकता है। समाज में जब कभी सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक असंतोष असहनीय हो जाता है, तब क्रांति का जन्म होता है। अन्याय के प्रति आक्रोश, क्रोध और घृणा की ज्वाला एक समय में संगठित होकर क्रांति के रूप में भड़क उठती है। क्रांति सामूहिक प्रयास का परिणाम होती है, इसलिए इसमें नेतृत्व की आवश्यकता रहती है। "कबीर का विद्रोह वही कर सकता है, जो जोखिम उठा सके, जिसे अपनी व्यक्तिगत क्षमता में अत्यांतिक विश्वास हो।" कबीर जोखिम उठाते हैं और सामाजिक-व्यवस्थागत बुराइयों-विसंगतियों पर साहसपूर्वक प्रहार करते हैं। उनके विद्रोह की मूल्य चेतना परंपरागत मूल्यों के स्थान पर नए मूल्यों की स्थापना की ओर उन्मुख है।

कबीर का काव्य साक्षी है कि उनका विद्रोह एक मूल्यपरक प्रक्रिया है, जो पुराने मूल्यों का अस्वीकार और नवीन मूल्यों का सृजन करती है। कबीर जानते थे कि नए मूल्यों का अन्वेषण अपने समय की स्थितियों से संघर्ष करते हुए भी किया जा सकता है। उनके लिए किसी बने-बनाए मूल्य ढाँचे का कोई अर्थ नहीं है। वे अपने समय की स्थितियों से जूझते हुए, सामाजिक यथार्थ से टकराते हुए हर बार नए सिरे से अपने लिए मूल्यों को अर्जित करते हैं, उन्हें जीवन यथार्थ की कसौटी पर कसते और अन्वेषित करते हैं। यह सच है कि आधुनिक विद्रोहात्मक मानसिकता का संबंध इन्हीं अर्जित मूल्यों से है, जिन्हें यथार्थ के टकराव की स्थिति में उपलब्ध किया जा सकता है। कबीर विद्रोह को एक मूल्य के रूप में और एक कारगर हथियार के रूप में इस्तेमाल करते हैं, क्योंकि जीवन यथार्थ की स्थितियों की संगति की संभाव्यता मौजूद है। आगे चलकर कामू ने भी मूल्यों को यथार्थ जीवन से अर्जित करने की बात कही है, "मूल्य किसी संस्था, सत्ता-प्रतिष्ठान, धार्मिक मठ या दर्शन की पोथी से प्राप्त नहीं किए जा सकते। उन्हें हर हालत में जीवन स्थितियों में से अर्जित करना होता है।" कबीर का सामाजिक दर्शन, सत्ताओं और व्यवस्था तंत्रों के प्रति नई एवं पैनी दृष्टि, समय की रुग्ण स्थितियों और संदर्भों से जूझने का जज्बा, सामाजिक यथार्थ से टकराने का साहस, समाज के लिए नए मूल्यों की तलाश और उन्हें जीवन वास्तविकता की कसौटी पर कसना आदि तथ्य कबीर को आधुनिक विद्रोहात्मक मानसिकता से लैस करते हैं। उनका विद्रोही स्वर निश्चित रूप से विचार, विवेक, मूल्य चेतना और संघर्ष चेतना से जुड़ा हुआ है। कबीर के विद्रोह की अभिव्यक्ति सामाजिक स्थितियों के प्रति जागरूकता और धार्मिक सामाजिक रुढ़ियों के उन्मूलन की तीव्र छटपटाहट के रूप में अभिव्यक्त हुई है।

कबीर को अपने समय में जो बुराइयाँ दृष्टिगत हुईं, उनमें विषमता का विलास है, असत्य और अन्याय की क्रीड़ा है। लेकिन पाखंडी और दंभी लोग उसे वेष द्वारा छिपाने का प्रयत्न करते हैं। कबीर उनको चेतावनी देते हैं कि उनका यह मिथ्याचार उनकी मुक्ति नहीं होने देगा –

"मूंड मुंडाये जो सिधि होई, स्वर्ग ही भेड़ न पहुँची कोई।
व्यंद राखि जे खेलै है भाई, तो पुसरै कौण परम गति पाई॥
पढ़ै गुनै उपजै अहंकारा, अघधरं डूबै बार न दारा।
कहे कबीर सुनहु रे भाई, राम नाम बिन किन सिधि पाई॥"

कबीर ने सत्य के शोध में अपना जीवन व्यतीत किया था। अज्ञान के विरुद्ध उन्होंने घोर युद्ध किया था। हिन्दू-मुस्लिम दोनों पर इन्होंने व्यंग्यों की बाण वर्षा की, जिससे दोनों तिलमिला उठे। जब सुल्तान के दरबार में उनकी शिकायतें पहुँचीं, तो कबीर ने बेधड़क सुल्तान का सामना किया –

"अहो मेरे गोविन्द तुम्हारो जोर। काजी बकिवा हस्तीतोर।
तीनि बार पतियारो लीना। मन कठोर अजहुँ न पतीना।"

कबीर जन्म से हिन्दू थे या मुसलमान, यह महत्वपूर्ण नहीं है, महत्वपूर्ण यह भी नहीं कि वे किस धर्म में मरे। महत्व की बात जानने वाली यह है कि भाषा और साहित्य का किसी धर्म विशेष से अनिवार्य संबंध नहीं होता। संस्कृति से होता है, जिसे धर्म का सत् कह सकते हैं। संस्कृति घोल में धर्म का तत्व जितना हल्का होता जाएगा, संस्कृति की प्रभविष्णुता की मात्रा उतनी बढ़ती जाएगी। एक स्थिति में संस्कृति धर्म से प्रबलतर हो जाती है। इस दृष्टि से महत्वपूर्ण यह है कि धार्मिक रूढ़ियों का जहाँ कबीर ने सर्वत्र जमकर खंडन एवं विरोध किया, वहीं सूक्ष्म धर्म चेतना उनमें बराबर अन्तर्व्याप्त रही। वे धर्मान्तरण का विरोध करने में चूकते नहीं हैं –

"काजी, तैं कवन कतेब बखानी
पढ़त-पढ़त केत्ते दिन बीते गति एकौ नहीं जानी
सकति सनेह पकरि, करि सूनति मैं न बदउंगा भाई
जौ रे खुदाई तुरुक मोहिं करता तौ औरति कौं का कहिए
अरध सरीरी नारि न छूटै तातैं हिन्दू रहिए
हिन्दू तुरुक कहाँ तैं आए किन एह राह चलाई
दिल महिं खोजि देखि खोजा दे भिस्ति कहाँ तैं आई
छंड़ि कतेब राम भजु बउरो जुलुम करत है भारी
कबीर पकरी टेक राम की तुरुक रहे पचिहारी।"

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने निबंध 'कविता क्या है?' में कबीर की सर्जनात्मक निर्भीकता के विषय में लिखा है, "यों समग्रतः कबीर में एक बुनियादी निर्भीकता का स्वर सर्वत्र मिलता है, उनके रचना विधान में और चिंतन में भी। यह निर्भीकता जैसे उनके यहाँ एक सर्जनात्मक मूल्य धारण कर लेते हैं। आश्चर्य नहीं कि कबीर कविता और गाली के विरोधी सिरों को एक-दूसरे से बड़ी कलात्मकता से मिला देते हैं। 'मुला मुनारै क्या चढ़हि...। जे तू बामना...' को कविता में रूपान्तरित कर देना, यह कबीर के निर्भीक रचना विधान की ही उपलब्धि है। यहाँ डांट-फटकार भी और गाली भी जो कबीर की विशिष्ट रचनात्मक क्षमता का उज्ज्वल उदाहरण है। दरअसल, सामाजिक चेतना कबीर के सजग व्यक्तित्व के असंतोष की उपज है, जहाँ मध्यकालीन व्यवस्था को नकारा गया है। उन्होंने अपने समय-समाज पर तीखे आक्रमण किए। उनकी वाणी निर्मम है – 'मेरा तेरा मनुआ कैसे एक होए रे/ मैं कहता आंखिन की देखी, तू कहता कागज की लेखी, पंडित बात बदले झूठा' आदि।

इस सत्य तथ्य के सबूत मौजूद हैं कि नाम पंथियों के तत्काल बाद के दौर में कबीर ने पाखंडी पूजा-अर्चना, कर्मकांडी जीवन पद्धति, व्रत, उपासना और पुरोहितवादी रूढ़ियों को चुनौती दी थी। यह भी खुला ऐतिहासिक सच है कि नौंवी सदी के शंकराचार्य और अन्य भाष्यकारों के वर्णवादी पुरोहितवादी चिंतन पर सिद्धों, नाथों और कनकटे साधुओं से विरासत में मिली थी। वर्णभेद, जाति व्यवस्था, ऊँच-नीच, छुआछूत आदि को लेकर सिद्ध-नाथ कबीर से बहुत पहले हिन्दू समाज की कड़ी आलोचना कर चुके थे। रूढ़ि ध्वंस की परंपरा को और पैना बनाते हुए कबीर ने निचले जाति समूह में आत्मगौरव का भाव जगाया। कमलेश्वर ने अपने एक लेख 'जनजागरण के आदि प्रवर्तक कबीर' में लिखा है, "कबीर मानव मुक्ति की परंपरा के विद्रोही कवि हैं। कबीर ने कहीं यह नहीं कहा कि तुम 'इस' पर विश्वास करो। उन्होंने लगातार यही बताया कि तुम 'किस' पर विश्वास मत करो। वे बताते हैं कि जड़तामूलक अन्याय केन्द्रित व्यवस्था ने जो कुछ सिरजा है, उसमें से क्या-क्या छोड़ दो। कबीर निषेधवादी सकारात्मक कवि हैं। वे नकारात्मक मुद्रा में सकारात्मक बात करते हैं। वे प्रतिरोधी हैं।"

प्रगतिवादी कबीर ने आपस में सभी भेदभावों के विरुद्ध जेहाद छेड़ा था। उनका विद्रोह समस्त सामंती आचार-विचारों और संस्कृति के प्रति समाज के दलित और त्रस्त वर्गों का विद्रोह है। वे सभी बाह्य आडंबर और पाखंड के विरुद्ध थे। उन्होंने राम और रहीम, मुल्ला और पांडे का भेद नहीं माना। उनका विद्रोही हृदय तत्कालीन वर्णाश्रम-धर्म पर अवलंबित सामंती हिन्दू समाज, शासन व्यवस्था और सामाजिक व्यवस्था पर तीव्र आघात करता है। सुकरात के समान कबीर भी शासकों का कोपभाजन बने। झूठा रोजा, झूठी ईद जैसे वाक्यों से क्रुद्ध होकर बादशाह सिकन्दर लोदी ने कबीर को

जंजीरों में बँधवाकर गंगा नदी में फिंकवा दिया, किन्तु कबीर किसी प्रकार बच गए। उनका जीवन और काव्य भारतीय सामंती व्यवस्था की रूढ़ियों, पाखंडों, आडंबरों और मिथ्याचार के प्रति विद्रोह की भावना से भरा है। प्रयाग नारायण त्रिपाठी ने सही लिखा है, "कबीर की साहसिकता और मौलिकता इस बात में है कि उन्होंने अपने अनुभूत सत्य की प्रतिष्ठा के लिए धार्मिक पाखंड, अंधविश्वास और संकीर्णताओं पर करारी चोट की।" कबीर ने तीखे स्वर में कहा कि यदि परमात्मा मूर्ति में रहता है, मंदिर में उसका निवास है और अल्लाह मस्जिद में रहता है, तो दूसरे स्थानों में किसका वास है, उनका स्वामी कौन है –

"अल्लाह एकु मसीति बसतु है, अवर मुलक् किसु केरा।
हिन्दू मूरति नाम निवासी, दुहुमति ततु न हेरा।"

कबीर संघर्षशील व्यक्ति थे और संघर्षों की दहकती भट्ठी में पककर ही कबीर कंचन बने। अन्याय और पाखंड के कारण उत्पन्न हुई जीवन की विषमताओं की उन्होंने कटु आलोचना की। वे समाज की बुराइयों को निकालकर फेंक देना चाहते थे ताकि एक आदर्श समाज की प्रतिष्ठा हो सके। छाप तिलक बनाकर लोगों को वंचित करने वाले आडंबरी वैष्णवों की कटुतम आलोचना करके उस आडंबर के कारण को वे सामने लाते हैं। उनकी दृष्टि में वेशभूषा और आडंबर वैष्णव वेश में नहीं है, हृदय और आचरण में है, प्रेम और सरल व्यवहार में है। कबीर ने पीरों, मुरीदों, दरवेशों को टोका तथा उनके व्यर्थ एवं घृणित कार्यों की ओर संकेत करते हुए उन्हें इस प्रकार फटकारा –

"रे दिन खोजि दिलहर खोजि, ना परि परेसानी मांहि
महल काल अजीज औरति कोई दस्तगीरी क्यूँ नांहि
पीरां मुरीदां काजियां मुलां अरु दरवेस
कहाँ थे तुम किनि कीये, अकलि है सबनेस"

तत्कालीन धर्म के विकृत रूप ने कबीर को सबसे अधिक प्रेरित किया। उनकी वाणी का अधिकांश धार्मिक विकृतियों की धज्जियाँ उड़ाने में ही व्यय हुआ। उनके समय में एक भी धर्म विकृति से मुक्त नहीं था। कुप्रथाओं, रूढ़ियों, कुत्साओं, अंधविश्वासों, आडंबरों आदि ने मौलिक मानव धर्म को ध्वस्त कर दिया था। उनके अनुसार जो धर्म संकीर्णता से मुक्त तथा समता पर आधृत है और जिसका मूल सत्य और अहिंसा से पुष्ट है, वास्तव में वही धर्म है। इसीलिए कबीर ने धार्मिक बाह्याडंबरों तथा कुरीतियों के प्रति विद्रोह किया। उन्होंने लोगों को तमतमाते शब्दों में समझाया कि 'मनुष्य' तो मात्र पानी का बुलबुला है, गोचर संसार नश्वर है और सत्य नहीं है। माया की भर्त्सना करते हुए उसे ठगिनी, डाकिणी और सर्पिणी जैसे निन्दात्मक शब्दों में व्याख्यायित किया। उन्होंने माया को समस्त संसार को भ्रमित करने वाली निरूपित किया। यह हमारी बुद्धि को विकारमुक्त बना देती है। उन्होंने लोगों को सचेत किया कि जिस प्रकार अन्धकारमयी रात्रि में रज्जु को देखकर सर्प का आभास होता है और उस मिथ्याभास से मनुष्य सर्प के द्वारा डंक मारने के भय से भयभीत हो जाता है, जबकि यथार्थ में साँप जैसी वस्तु होती ही नहीं –

"ज्यों रजनी रजु देखत अंधियारी, उसे भुवंगम बिन उजियारी
झूठ देखि जीव अधिक डराई, बिना भुवंगत डसी दुनियाई
रजनी गत गई रवि प्रकासा, भरम करम धूं केर विनासा।"

धनिकों और निर्धनों के मध्य इस विशाल अंतर को देखकर कबीर अत्यधिक क्षुब्ध थे। इसीलिए उन्होंने पूँजीपतियों तथा विलासी जीवन व्यतीत करने वालों के प्रति विद्रोह प्रकट किया। उन्होंने देखा कि धनी लोग निर्धनों को ब्याज पर पैसा देकर उनका आर्थिक शोषण करते हैं। उनके हृदय में निर्धनों के प्रति किसी भी प्रकार की सहानुभूति नहीं है। कबीर ने धन-संग्रह को इसलिए बुरा कहा, क्योंकि इसके कारण ही मनुष्य का मनुष्य से संबंध टूटता है, भाई-भाई में, पिता-पुत्र में वैर उत्पन्न हो जाता है। सामाजिक सर्वोदय के पक्षधर कबीर का मानना है कि व्यक्तिगत संपत्ति के अधिकार से समाज में अनेक तरह की असमानताएँ एवं समस्याएँ पैदा होती हैं, जिससे संपूर्ण जन-समुदाय का अहित होता है। कबीर के समय में सामाजिक विकास के लिए कोई संगठित व्यवस्था नहीं थी। कोई साधु-संन्यासी बनकर घूमने लगता, तो कोई पुजारी बनकर मंदिर या मठ में जा बैठता। कबीर ने ऐसे लोगों को कामचोर व्यक्ति कहा। सामाजिक उत्कर्ष की दृष्टि से इन व्यक्तियों का कोई सहयोग एवं योगदान नहीं था। वन में जाकर जीवन यापन करने वाले तथा आश्रम में रहकर षटकर्म करने वाले पाखंडियों की कबीर ने कड़ी आलोचना की –

"बनहि बसै का कीजिए
जो मन नहीं तजै विकारा।"

स्पष्ट है कि कबीर स्वयं कर्मवादी थे, जो कर्म करके परिश्रम की कमाई पर जीना चाहते थे। उन्होंने इस अपार संसार में कर्म को सार के रूप में पाया था। उनका कहना है कि जीवित रहते हुए कुछ करना संभव है, लेकिन यह अन्धा संसारी जीव कर्म के महत्व को नहीं समझता –

"जीवित ही कुछ कीजै
हरि राम रसायन पीजै
कहे कबीर जब धंधा
काहे न चेतहु अंधा"

कबीर ने ऊँचे स्वर में कहा कि जागने वाला कहीं भी और कभी भी जाग सकता है। जागने के लिए उसे जंगल की ओर भागने की आवश्यकता नहीं है। चिंतन कहीं भी किया जा सकता है। गृहस्थ आश्रम में उपजा चिंतन अनुभूति प्रधान होता है, उसमें यथार्थ की सच्चाई अधिक होती है। इसीलिए वे गृहस्थ को अधिक महत्व देते हैं –

"बनह बसे का कीजिए, मन नहीं तजे विकार
घर बन तत सम जिन कीया, ते बिरला संसार।"

कबीर अपने युग की सामाजिक विषमता को एकता में परिणत करना चाहते थे। वे समाज में ऊँच-नीच के भेदभाव तथा वर्ग भेद को मूलतः नष्ट करना चाहते थे। उनके जीवन का मुख्य लक्ष्य मानव-मात्र में समता एवं एकता स्थापित करना था। उन्होंने समाज की समस्याओं को देखा था, परखा था और स्वयं भी समाज की प्रताड़नाओं के दौर से गुजरे थे। यही कारण है कि वे सामाजिक अन्याय, आर्थिक असमानता तथा सामाजिक दुर्व्यवस्थाओं के प्रति विद्रोह कर उठे –

"बड़ा भया तो क्या भया, जैसे पेड़ खजूर
पंछी को छाया नहीं फल लागे अति दूर
दिन भर रोजा रहत हैं, राति हनत हैं गाय
यह तो खून वह बन्दगी, कैसे खुशी खुदाय
बकरी पाति खाति है, ताकि काढ़ी खाल
जे नर बकरी खात है, तिनका कौन हवाल
पोथि पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोई
ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होइ

कबीरा खड़ा बाजार में लिए लुकाठी हाथ
जो घर फूंके आपना सो चले हमारे साथ
कंकड़ पत्थर जोड़कर मस्जिद लई बनाइ
तापर मुल्ला बांग दे क्या बहरा भया खुदाइ
चलती चक्की देखि के, दिया कबीरा रोय
दो पाटन के बीच में, साबित रहा न कोय
मूड़ मुड़ाए हरि मिलें, सब कोई लेई मुड़ाय
बार-बार के मूड़े ते, भेड़ न बैकुंठ जाय।"

उपर्युक्त पंक्तियों से जाहिर है कि अपने विद्रोही स्वर में कबीर ने अपने परिवेश, तत्कालीन व्यवस्था, सामाजिक-धार्मिक स्थिति एवं मनुष्यता के बीच की खाई के प्रति न तो मूक स्वीकृति की मुद्रा अपनाई और न ही उसके अनुकूलीकरण की कोशिश की। व्यवस्थागत एवं सामाजिक ताकतों के विरुद्ध जूझना, टकराना और संघर्ष करना उनका एक निश्चित उद्देश्य था कि मानवीय जिंदगी अधिक सुखी और अर्थवान बने। इसीलिए उन्होंने हिन्दू और मुसलमानों को उनके पाखंडों एवं मिथ्याचारों के लिए नहीं बख्शा भले ही वर्गीय स्वार्थों के तहत शोषकों-उत्पीड़कों ने कबीर की असहमति और विद्रोह की आवाज को कुचलने के लिए अपनी दमन शक्ति का निर्मम इस्तेमाल किया। फिर भी जाँबाज कबीर व्यवस्था के उत्पीड़न और दमन के सामने असहाय नहीं बने रहे। वे तो व्यवस्थागत बदलाव एवं धार्मिक कुरीतियों के उन्मूलन के लिए मानसिकता की तैयारी में उत्तरोत्तर संलग्न होते गए। उन्हें मालूम था कि सामाजिक व्यवस्था, शासन तंत्र से कहीं अधिक व्यापक और पुख्ता होती है। इसीलिए मानवीय जिंदगी को जीने के काबिल बनाना उनका सीधा निशाना है।

कबीर में जहाँ चेतना की मौजूदगी थी, वहीं दिशा और लक्ष्य का बोध भी, जो उनकी सामाजिक परिवर्तन क्षमता के लिए बड़ा कारगर सिद्ध हुआ। उनके सामने के भ्रष्ट समाज और उनके इच्छित समाज में मौजूद तनाव की स्थिति उनके विद्रोह की बुनियाद तैयार करती है। नतीजतन उनके विद्रोह की चोटों से व्यवस्था की ईंटें खिसकने लगती हैं। कहा जा सकता है कि कबीर ने अपने सामाजिक परिवेश के प्रति सक्रियता एवं विद्रोही की भूमिका ही स्वीकार की और सामाजिक बदलाव की अपनी इच्छा का कतई विरेचन नहीं होने दिया। वे गहरे में समझते थे कि मध्यकालीन सामंती समाज में धार्मिक व्यवस्था और सामाजिक व्यवस्था में गठबंधन है, उनके मकसद भी एक ही हैं। इसीलिए वे सामाजिक रूढ़ियों एवं मूल्यों पर निर्मम प्रहार करते हैं। उन्होंने व्यवस्था की जड़ सामूहिकता, जाति व्यवस्था, रूढ़ धार्मिकता और रूढ़िबद्ध मान्यताओं पर विद्रोहात्मक प्रहार किया और उसी दिशा में विद्रोही हल चलाया। कबीर का केन्द्रीय विचार था कि जिस विषय-वस्तु को शासक व्यवस्था की पक्षधरता में इस्तेमाल किया जा सकता है, उसी को बदलाव की चेतना का माध्यम भी बनाया जा सकता है। तभी तो वे निजी जीवन के संकटों से गुजरते हुए वैयक्तिक चेतना से सामाजिक चेतना की ओर अग्रसर हुए, क्योंकि अपनी जिंदगी में भी उन्हें समाज के अन्तर्विरोधों और सवालों से जूझना पड़ा था।

कबीर के आभ्यन्तरण से तपा हुआ स्वर सदैव निकलता रहता था कि सही और सार्थक मानवीय अस्तित्व की दिशा में समाज को स्वच्छ एवं स्वस्थ बनाना जरूरी है। इसलिए उन्हें जब-जब और जहाँ-जहाँ अवसर मिला, उन्होंने राजनीतिक विरोध, सामाजिक व्यंग्य तथा विद्रोह की धार को कुंद और भोथरी नहीं बनने दिया। कबीर वाणी में मनुष्य की अपराजेयता का दृढ़ विश्वास और सही मानवीय भविष्य के प्रति अटूट आस्था को भी देखा जा सकता है। उनकी सर्वनकारू मुद्रा के खास निशाने मानवीय रिश्तों में रूपान्तरित होते जाते हैं। साथ ही सामूहिक, सामाजिक प्रतिकूलताओं से उनकी हिस्सेदारी स्थापित होने से विद्रोह की तराश स्वतः पैदा होने लगती है। कबीर के व्यक्तित्वान्तरण का सामूहिक चेतना से जुड़ना, दरअसल, विद्रोही स्वर का मारक बनना ही है। वे जिंदगी भर मानवीय वास्तविक स्थितियों से उलझते और जूझते रहे और विचार को टकरावपूर्ण तथा संघर्षशील स्थितियों में नियोजित करते रहे। सही मायने में उनकी कविता व्यवस्था को ललकारती है और चुनौती देती है।

अपने समय से मुठभेड़ करते हुए कबीर उभरे और अपने समय पर गहरे निशान छोड़ते हुए अपने सवालों के साथ उस पर छा गए। अपने भीतर ओर अपने बाहर को उन्होंने समान शक्ति के साथ उजागर किया। उनकी आवाज सबसे ऊँची और जानदार आवाज के रूप में सभी तरह महसूस की गई। समय और समाज को झकझोरते हुए, उनकी चुनौतियों के बीच, उन्हें चुनौती देते हुए वे जिए, अपने समय से बहुत आगे के समय के प्रतिनिधि बनकर जिए, शास्त्रज्ञों और पंडितों ने उनका लोहा माना और इस निडरता पुंज ने हाथ में विद्रोही मशाल लेकर अपने विद्रोही मनुष्य होने को चरितार्थ कर दिया। आज भी कबीर, उनका विद्रोह दर्शन, उनकी समतामूलक खोज दृष्टि इतनी प्रेरणाप्रद और दिशा-निर्देशक है कि उन पर कई काव्य पुस्तकों का प्रणयन हाल के दशकों में किया गया है। इनमें यमुना प्रसाद चौधरी 'नीरज' द्वारा विरचित 'कबीर' नामक काव्य ग्रंथ और कविवर पोद्दार रामावतार अरुण द्वारा रचित व्यक्तित्व प्रधान काव्य प्रबंध 'क्रांतिहंस' विशेष रूप से ध्यान आकृष्ट करते हैं। इन दोनों काव्य कृतियों में समता का कपड़ा बुनने वाले कबीर की अमरता और उनकी युग-युगान्तर सिद्ध प्रासंगिकता को लक्षित किया गया है। यह भी लक्षित करने योग्य है कि 'कासी का जुलाहा' कबीर और वर्णों की बेड़ियाँ तोड़ने वाला कबीर कितना अमर है, कितना शाश्वत है और है कितनी कालजयी उनकी सामाजिक संदेशीलता। उनके काव्य का सामाजिक पक्ष, जो गैर-बराबरी और धार्मिक बाह्यचारों के विरुद्ध है, आगामी युगों में भी प्रासंगिक बना रहेगा, इसमें भी दो राय नहीं है। महात्मा जोतिबा फुले, डॉ. बाबा साहेब अंबेडकर, दलित-विमर्श, आदिवासी विमर्श, नारी विमर्श, पर्यावरण विमर्श आदि के केन्द्र में जो चिंतनधारा प्रवाहित है, उसकी गंगोत्री का स्रोत कबीर के सामाजिक दर्शन से ही निकलता है। निराला, नागार्जुन, मुक्तिबोध, धूमिल आदि व्यवस्था से जूझने और टकराने वाले संकल्पबद्ध कवि, बिना शक, कबीर की 'विद्रोही पाठशाला' में ही सुशिक्षित होकर वैयक्तिक और सामाजिक अस्तित्व की लड़ाई लड़ते हैं।

निर्णायक तथ्य यह है कि कबीर ने विद्रोह और प्रयोग की स्थिति में काव्य तत्व की सर्वत्र रक्षा की और उसे कहीं से भी कमजोर नहीं पड़ने दिया। उनके काव्य में न तो प्रचारात्मक तत्व अंकुरित हुआ और न ही दुरूहता जड़ पकड़ सकी। कबीर के विद्रोह की वाणी गले से नहीं, कलेजे से निकलती है। इसीलिए उनका काव्य मात्र तीखे आक्रोश की ललकार नहीं है, वह तो पिघला देने वाली विद्रोही आग है। महात्मा बुद्ध के बाद कबीर भारतीय इतिहास की एक ऐसी अन्यतम विभूति हैं, जिन्होंने धर्म को अधिक उदार, सार्वभौमिक और सार्वजनिक रूप प्रदान किया। उन्होंने कविता की विरोधी सीमाओं को तोड़कर उसे अधिक व्यापक और मुक्त रूप दिया। चुपके से कह दें कि हिन्दी साहित्य के हजारों वर्षों के इतिहास में कबीर जैसा विद्रोही व्यक्तित्व लेकर कोई सामने नहीं आया।

आलेख

पारंपरिक लोक गीतों का चलन बना रहे

संजय वर्मा 'दृष्टि'
मनावर(धार) म.प्र.
मोबाइल–9893070756

पारम्परिक लोक गीत विशेष पर्वों पर गायन का चलन कम होता जा रहा है। सीधे फिल्मी गाने बजाने का चलन हो गया। पहले के जमाने में जिन्हें लोक गीत गाने आते हों उनको बुलावा देकर गीत गवाए जाते थे। जैसे राती जोगा, शादी, संजा, गणगौर, धार्मिक पर्वों आदि पर। कई स्थानों पर शादी में महिला संगीत कार्यक्रम में, फिल्मी नृत्यों ने स्टेज पर जगह ले ली है। पारम्परिक लोकगीत जो गाए जाते और बताशे बाँटे जाते थे, वो विलुप्त होते जा रहे हैं। इस कार्यक्रम में बुजुर्ग महिलाओं को मान-सम्मान मिलता और उन्हें अपनी प्रतिभा दिखाने और नई पीढ़ी को सिखाने का मौका मिलता था। संक्रमण काल के दौरान सभी शुभ कार्य में जाने पर सीमित संख्या निर्धारित की गई थी जो कि उचित भी थी। संक्रमण काल कम हुआ है, इसके साथ ही शुभ कार्य में सम्मिलित होने की संख्या में इजाफा हुआ है। अतः लोक गीतों की प्रथा को बनाए रखें ताकि लोकगीतों में शुभ कार्य सम्पन्न हो क्योंकि लोक गीतों में ईश्वर के प्रति प्रार्थना होती है। मधुर लोक गीतों की स्वर लहरियाँ घर-घर में गुंजायमान होती हैं। गणगौर त्योहार पर मालवी निमाड़ी लोक गीतों की स्वर लहरियाँ रात्रि में लोक गीत गाने के उपरांत तम्बोल(धानी, चने आदि) प्रसाद के रूप में बाँटे जाते हैं। वर्तमान में संजा का रूप फूल-पत्तियों से कागज में तब्दील होता जा रहा है। संजा का पर्व आते ही लड़कियां प्रसन्न हो जाती हैं। संजा को कैसे मनाना है और संजा माता के लोक गीत कैसे गाना है। ये बातें छोटी लड़कियों को बड़ी लड़कियाँ बताती हैं। शहरों में सीमेंट की इमारतें और दीवारों पर महँगे पेंट पुते होने, गोबर का अभाव, लड़कियों का ज्यादा संख्या में एक जगह न हो पाने की वजह, टी.वी., इंटरनेट का प्रभाव और पढ़ाई की वजह बताने से शहरों में संजा मनाने का चलन खत्म-सा हो गया है। लेकिन गाँवों/देहातों में पेड़ों की पत्तियाँ, तरह-तरह के फूल, रंगीन कागज, गोबर आदि की सहज उपलब्धता से ये पर्व मनाना शहर की तुलना में आसान है। परम्परा को आगे बढ़ाने की सोच में बेटियों की कमी से भी इस पर्व पर प्रभाव पड़ा है। संजा-सोलही गीत को देखें तो – "काजल टिकी लेव भाई काजल टिकी लेव/काजल टिकी लई न म्हारी संजा बाई के देव", संजा तू थारा घरे जा/थारी माँ मारेगा के कूटेगा "नानी-सी गाड़ी लुढ़कती जाए" संजा बाई का सासरे जावंगा-जावंगा "संजा जीम ले" मालवी मिठास लिए और लोक परम्पराओं को समेटे लोक संस्कृति को विलुप्त होने से तो बचाती है, साथ ही लोक कला के मायनों के दर्शन भी कराती है। संजा की विदाई मानो ऐसा माहौल बनाती है जैसे बेटी की विदाई हो रही हो, सब की आँखों में आँसू की धारा फूट पड़ती है। ये माहौल बेटियों की यादें सखियों के बड़े हो जाने और विवाह उपरांत बहुत याद आती है। कहीं-कहीं अंग्रेजी एवं फिल्मी गीतों की तर्ज की झलक भी गीतों में समाहित होने से एक नयापन झलकता है। किन्तु असली लोकगीतों की बात ही कुछ और होती है। रिश्तों के ताने-बाने बुनती व हास्य रस को समेटे लोक गीत वाकई अपनी श्रेष्ठता को दर्शाते हैं। शृंगार रस से भरे लोक गीत जिस भावना और आत्मीयता से बेटियाँ गाती हैं, उससे लोक गीतों की गरिमा बनी रहती है और ये विलुप्त होने से भी बचे हुए हैं।

आलेख

अंग्रेजी है मगर, हिंदी शिखर के डगर

सेवा सदन प्रसाद
मोबाइल–9619025094

यूँ तो संस्कृत से ही बहुत सारी भाषाओं की उत्पत्ति हुई है– चाहे हिंदी हो अथवा अरबी या फारसी, वैसे भी संस्कृत भाषा सदा अन्वेषण का विषय रहा है। संस्कृत से ही देवनागरी की भी उत्पत्ति हुई है।

पर जब भारत में फिरंगियों का साम्राज्य छाया तब लोगों पे अंग्रेजी लाद दी गई। अंग्रेजी भाषा जाने बगैर कोई भी सरकारी नौकरी नहीं कर सकता था। मजबूरन भारतीयों को अंग्रेजी सीखनी पड़ी। वैसे अंग्रेजी भी एक सरल एवं समृद्ध भाषा है पर स्वेच्छा से सीखी गई भाषा के प्रति एक अलग ही सम्मान होता है।

कुछ अंग्रेज हिंदी तो समझ लेते थे पर बोलते नहीं थे। पर जब गुलामी से आजादी पाने के लिए वतनपरस्त दीवानों ने नारा लगाया– 'इंकलाब जिंदाबाद, अंग्रेजों भारत छोड़ो... तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूँगा... वंदे मातरम। फिर देशप्रेम की खातिर हिंदी भाषा का सर्वाधिक प्रयोग जन-जन की जुबां पे आ गया। आजादी के बाद धारा-343 के तहत 'हिंदी' को राष्ट्रभाषा घोषित तो कर दिया पर प्रावधान यह भी था कि अंग्रेजी का प्रयोग 15 वर्ष तक जारी रहेगा। फिर क्या था अंग्रेजी सदा हिंदी पे हावी रही। सारे सरकारी कामकाज बदस्तूर अंग्रेजी में होते रहे। राष्ट्रभाषा घोषित होने के बाद भी हिंदी को दोयम दर्जा ही मिला। हिंदी प्रेमियों एवं बुद्धिजीवियों के लिए तब एक चिंता का विषय बन गया। फिर आवाजें उठने लगीं– सरकारी कामकाज हिंदी में हों... राष्ट्रभाषा का सम्मान हो... हिंदी है भारत की बिंदी... यथोचित स्थान दो।

तब सरकार ने भी राष्ट्रभाषा पे विशेष ध्यान देने के लिए राष्ट्रभाषा विभाग, राष्ट्रभाषा समिति, बना दी। पहली बार यू.एन.ओ. में श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने हिंदी में भाषण दिया था। तब हर भारतीय गर्व महसूस करने लगा। और शायद हिंदी शिखर के डगर पे चल पड़ी।

14 सितंबर को हिंदी दिवस के रूप में मनाया जाने लगा। बहुत सारे हिंदी भाषी राज्य सरकारी कामकाज भी हिंदी में करने लगे। गैर हिंदी भाषी राज्यों में भी हिन्दी को उचित स्थान दिलवाने हेतु प्रतियोगिता, पुरस्कार का प्रावधान रखा गया।

हिंदी एक बहुत ही सरल एवं सहज भाषा है तब लोगों की रुचियाँ बढ़ने लगी। आज तो ऐसी स्थिति है कि बंगाल एवं दक्षिण के कई लोग हिंदी के लेखक, प्रकाशक, संपादक के रूप में चर्चित हो गए हैं।

आज विश्व हिंदी सम्मेलन हो रहे हैं। विश्व के कई राष्ट्र हिंदी में पत्रिकाएँ निकाल रहे हैं। प्रतियोगिताएँ आयोजित हो रही हैं। गोष्ठियों में हिंदी की प्रगति की चर्चा हो रही है। अब हिंदी दिवस मनाना मात्र औपचारिकता नहीं रह गया बल्कि यह वो दिन है जो लोगों को याद दिलाता है कि राष्ट्रभाषा का सम्मान हो और इसे भरपूर उपयोग में लाया जाए।

हिंदी का सर्वांगीण विकास तभी हो सकता है जब अंग्रेजी बोलने के बदले हिंदी में ज्यादा वार्तालाप हो, हिंदी में अभिवादन हो। हिंदी बोलने में गर्व महसूस हो... फिर तो शिखर दूर नहीं।

आलेख

भागलपुर की गरिमा-चंपा

विजयवर्धन
लहेरी टोला, भागलपुर–812002,
मोबाइल–9204564272

भागलपुर शहर के पश्चिम सीमा पर बहने वाली सदानीरा नदी चंपा एक जीवन दायिका ही नहीं है अपितु इसका एक पौराणिक एवं महत्वपूर्ण इतिहास भी है। उत्तरवैदिक काल में भारतवर्ष के सोलह महाजनपदों में एक प्रमुख जनपद अंग था जिसकी राजधानी चंपा थी। विष्णुपुराण, हरिवंशपुराण, मत्स्यपुराण, महाभारत एवं रामचरितमानस में चंपा का विस्तृत वर्णन है। विद्वानों ने चंपा को अंग संस्कृति के पालने की संज्ञा दी है। इसकी शीतल बयार एवं शीतल जल ने शैव, शाक्त, वैष्णव, बौद्ध एवं जैन धर्म को पुष्पित तथा पल्लवित किया है। इन धर्मों की अनुगूंज आज भी यहाँ सुनाई पड़ रही है। अपने जीवन काल में गौतम बुद्ध ने केवल छः नगरों का ही भ्रमण किया था जिनमें चंपा भी एक थी। बुद्ध ने यहाँ बौद्ध संगीति भी की थी। जैन धर्म के बारहवें तीर्थंकर बासुपूज्य ने यहाँ पंचकल्याण किया था जिससे चंपा जैनियों की महत्वपूर्ण तीर्थस्थली हो गई। चौबीसवें तीर्थंकर महावीर ने यहाँ तीन वर्षावास किए थे। शैवधर्मावलम्बियों के तो यहाँ कई मंदिर हैं जैसे–मनसकामनानाथ, भैरवनाथ, भूतनाथ, चन्द्रधरेश्वरनाथ आदि। शाक्त अनुयायियों के भी यहाँ कई स्थान दुर्गास्थान, काली स्थान, विषहरी स्थान हैं। यहाँ के महाशय ड्योढ़ी की गूंज बंगाल तक सुनाई पड़ती थी। इस्लाम धर्म का मखदूमसाहब का मकबरा यहाँ आज भी स्थित है। यहाँ तक कि ईसाई धर्म के चर्च भी चंपा की गोद में स्थित हैं।

अंग क्षेत्र एवं चंपा की चर्चा वाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड के नवम् सर्ग के कई श्लोकों में है। इन श्लोकों के अनुसार महर्षि कश्यप को विभाण्डक नाम का एक पुत्र था जिसके पुत्र शृंगी ऋषि थे। अंग के राजा रोमपाद राजा दशरथ के परम मित्र थे। किसी कारण उनके द्वारा धर्म का उल्लंघन होने पर लंबे समय तक अंग में वर्षा नहीं हुई। राजा ने इस अनावृष्टि की चर्चा जब अपने मंत्रियों से की तब निष्कर्ष यह निकला कि अगर शृंगी ऋषि को अंग में बुलाया जाय तो कुछ निदान निकल सकता है। कोशी तट पर सनोखर के पास स्थित आश्रम से ऋषि को अनुनय-विनय करके बुलाया गया। उस समय कोशी का यह क्षेत्र जो आज मधेपुरा कहलाता है, अंग देश का अरण्य क्षेत्र कहलाता था। प्रवास के दौरान ऋषि ने गहन पर्यवेक्षण करके यह निर्णय दिया कि अगर अंग के दक्षिण की नदी को नहर खोदकर अंग के पश्चिमी सीमा से होते हुए गंगा में मिला दिया जाय तो अंग में जल की कमी कभी नहीं रहेगी और इस नहर से अंग को सदा ही नवजीवन मिलता रहेगा।

अंग के दक्षिणी क्षेत्र के बेरमा गाँव के पास से चांदन नदी से एक नहर खोदा गया और उसे गंगा से जोड़ दिया गया। इस नहर को चंपा नदी की संज्ञा मिली जिसमें सालों भर जल भरा रहता था। जिस वास्तुकार महागोविन्द ने राजगीर को सजाया था उसी ने चंपा को भी सजा दिया। अब चंपा सालों भर फलने-फूलने लगा। रोमपाद के पौत्र चंप ने इस नदी के दोनों किनारों पर चंपा के वृक्ष लगाकर इसे सार्थकता प्रदान की। अंग क्षेत्र जिसका नाम उस समय मालिनी था अब चंपा नदी के कारण इसका भी नाम चंपा हो गया जो आज भी चंपानगर के नाम से विख्यात है।

प्राचीन समय में चंपा मगध एवं अंग के बीच विभाजन रेखा के रूप में काम करती थी। महाभारत काल के दानवीर कर्ण प्रतिदिन चंपा में स्नान करके सूर्य भगवान को अर्घ्य देते थे। चंपा के निकटवर्ती खेत इसके जल से इतने तर रहते थे कि सिंचाई की आवश्यकता ही नहीं पड़ती थी। यहाँ के खेतों में सुगंधित कतरनी चावल इतनी प्रसिद्ध थी कि मगध के सम्राट बिंबिसार की थाली में भी यह परोसी जाती थी। गौतम बुद्ध के अंतिम दिनों में भी यह चावल पथ्य के रूप में उन्हें दिया जाता था। इसके अलावे चंपा के क्षेत्र में कई अन्य प्रकार के फसल एवं फल उत्पन्न होते थे जो लोगों की क्षुधा को शांत करते थे। यहाँ सिल्क का व्यापार भी प्राचीन काल से होता चला आ रहा है क्योंकि चंपा की आबो हवा इस उद्योग के लिए अत्यन्त उपयोगी है। राजा हर्षवर्धन के शासनकाल में चीनी यात्री जब चंपा पधारे थे तब वे चंपा की समृद्धता को देखकर आश्चर्यचकित हो गए थे। ईंट से निर्मित 24 फीट चंपा की सुरक्षा दीवारों तथा चार सुरक्षा मीनारों को देखकर वे बहुत प्रभावित हुए थे।

चंपा की खुदाई में पत्थर की बड़ी-बड़ी भट्ठियाँ मिली हैं जो प्रमाणित करती हैं कि चंपा में स्वर्ण आभूषणों का निर्माण भी होता था। डॉ. अजय कुमार सिंह के अनुसार चंपा व्यापार का एक बड़ा केन्द्र था। डॉ. आर. पंथ के अनुसार चंपा से व्यापारी बंगाल एवं वर्मा तक जाते थे।

600 ई० के आसपास चंपा में चांदो सौदागर नाम के एक प्रसिद्ध व्यापारी हुए थे। एक बार शिव जी की मानस पुत्री मनसा ने चांदो सौदागर से अपनी पूजा करने को कहा पर वे नहीं माने। मनसा ने क्रुद्ध होकर उन्हें कई यातनाएँ दीं। यहाँ तक कि सुहागरात में उसने उनके पुत्र बाला को डस कर मृत्यु शय्या पर सुला दिया। बाला की पत्नी बिहुला एक मंजूषा में अपने पति को रख कर स्वर्ग गई और ईश्वर को प्रसन्न करके अपने पति को जीवित किया। इस घटना के बाद से चांदो सौदागर बाएँ हाथ से मनसा की पूजा करने लगे। इस कथा पर आधारित कथा, गीत और लोकगाथा आज भी चंपा में गुंजित है। आज चंपा और बिहुला पूजा एक-दूसरे के पर्याय बने हुए हैं।

चंपा के तट पर सतुआनी(नवान्न) पर्व पर पतंग उड़ाने का मेला लगता था। लोग तरह-तरह के पतंग उड़ाया करते थे जैसे – चांदमार, कबूतरी, डंटेली, चारमुखी, सतमुखी आदि। बच्चे कटी पतंगों को लूटने में बड़ा मजा लेते थे। इस मेले में तरह-तरह के सामानों की बिक्री होती थी। मेले का आनन्द हिन्दू और मुसलमान समान रूप से लेकर साम्प्रदायिक सद्भाव का अनूठा दृश्य पैदा करते थे।

चंपा नदी को नाव से पार करके लोग भागलपुर आते थे। नावों से अनाज को बरारी घाट तक लाया जाता था जहाँ से अनाज को खगड़िया, नारायणपुर एवं नवगछिया भेजा जाता था। चंपा के किनारे बसे हुए कृषकों को इतना दूध होता था कि लोग दूध का मक्खन निकाल कर महे हुए दूध को नदी में बहा देते थे। चंपा का जल इतना पवित्र था कि लोग बिना छाने पीकर अपनी प्यास बुझाते थे। नाविकों को प्रतिवर्ष हर घर से पाँच सेर अनाज मिलता था जिससे उसका परिवार आसानी से पोषित हो जाता था।

चंपा नदी इतनी समृद्ध थी कि इसके जल में तरह-तरह की मछलियाँ पाई जाती थीं जैसे–रेहू, कतला आदि। इनसे मछुआरों के परिवारों का भरण-पोषण आसानी से हो जाता था। इतना ही नहीं इसमें अक्सर राष्ट्रीय जीव डाल्फिन आज भी पाया जाता है। तेज आवाज के साथ सांस लेने के कारण इसे लोकल भाषा में सोंस कहा जाता है। चंपा के तट पर रजक लोग कपड़े धोकर अपनी जीविका चलाते थे। इस प्रकार चंपा कई वर्ग के लोगों का भरण-पोषण करती थी।

चंपा नदी इतनी समृद्ध थी कि 1815 ई० में अंग्रेज विद्वान फ्रैंकलिन पाटलिपुत्र की तलाश में चंपा आ गए और उन्होंने चंपा को ही पाटलिपुत्र समझ लिया। इसका अध्ययन करके उन्होंने एक ग्रन्थ लिख डाला जो लंदन से प्रकाशित हुई थी।

आज बालू के खनन एवं लोगों के अतिक्रमण से चंपा का अस्तित्व खतरे में पड़ गया है। पर समाज एवं सरकार का प्रयास हो तो चंपा पुनः अपनी प्राचीन गरिमा को प्राप्त कर सकती है क्योंकि यह भागलपुर की ही नहीं बल्कि भारतवर्ष की धरोहर है।

आलेख

सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' एक साहित्यकार की क्रान्तिकारी जीवन यात्रा

डॉ. ऊषा निगम
74, कैण्ट, कानपुर
मोबाइल–9792733777

भारतीय क्रान्तिकारी आंदोलन में भाग लेने वाले अनेक युवक कालान्तर में अत्यधिक प्रसिद्ध हुए लेकिन बहुत कम लोगों ने इस सच को जाना कि अपने जीवन के प्रारंभिक वर्षों में देश की आजादी की लड़ाई की सशस्त्र धारा में उनका महत्वपूर्ण योगदान रहा था। योगी श्री अरविंद के योगी स्वरूप के समक्ष हम यह भूल गए कि इसी चिंतक के मार्गदर्शन में बंगाल के क्रांतिकारी आंदोलन को सुनियोजित दिशा मिली थी। उस समय की इंडियन नेशनल कांग्रेस के नरम मिजाज को गरम दल में परिवर्तित करने में भी श्री अरविंद की महत्वपूर्ण भूमिका रही थी। हिंदी के प्रसिद्ध साहित्यकार यशपाल के जीवन के अनेक वर्ष क्रान्तिकारी आंदोलन को समर्पित रहे। कानपुर में संस्कृत भाषा के विद्वान, वेदों के व्याख्याता, सूर-काव्य विशेषज्ञ पं. मुंशीराम शर्मा 'सोम' ने पृष्ठभूमि में रहकर ही चन्द्रशेखर आजाद तथा उनके अनेक साथियों को पूरा सहयोग दिया था। इसी प्रकार सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन अज्ञेय हिंदी साहित्य के प्रमुख हस्ताक्षर बने। उनका व्यक्तित्व बहुआयामी एवं विविधतापूर्ण था। साहित्य की लगभग सभी विधाओं पर उन्होंने लिखा। लेकिन देश के स्वतंत्रता संग्राम में वे सशस्त्र क्रान्ति-मार्ग के भी राही थे, यह यथार्थ उनकी साहित्यिक उपलब्धियों के प्रकाश में कहीं खो गया।

वात्स्यायन के पिता पुरातत्व विभाग में कार्य करते थे। अज्ञेय का जन्म 07 मार्च 1911 को कुशीनगर (उ.प्र.) में हुआ था। पिता के निरन्तर स्थानान्तरण के कारण वात्स्यायन का बचपन एक स्थान से दूसरे स्थान घूमता रहा था; कभी गोरखपुर, लखनऊ, कभी नालंदा, मद्रास; कभी पंजाब। मैट्रिक पंजाब से किया, इंटर मद्रास के क्रिश्चियन कॉलेज से और फिर लाहौर आ गए। 1929 में लाहौर के फॉरमन कॉलेज से उन्होंने बी०एस०सी० किया, फिर वहीं एम०ए० अंग्रेजी में प्रवेश लिया। संभवतः इसी बीच वे क्रान्तिकारी युवकों के संपर्क में आ चुके थे। पंजाब राजनीतिक गतिविधियों का केन्द्र बन चुका था। 1926 में भगत सिंह ने लाहौर में नौजवान भारत सभा की स्थापना की थी जो क्रान्तिकारी विचारधारा का खुला मंच था। इसी मंच से वात्स्यायन भी जुड़ गए थे।

बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक से ही क्रान्तिकारी संगठनों को बम की आवश्यकता समझ में आने लगी थी। यह भी स्पष्ट हो चुका था कि बमों का निर्माण व्यक्तिगत स्तर पर किया जा सकता था। तभी से क्रान्तिकारी दल बम बनाने के छोटे-छोटे कारखानों की स्थापना करने लगे थे। 'हिंदुस्तान समाजवादी प्रजातंत्र संघ' भी बम निर्माण की ओर निरंतर प्रयासरत् रहा। दिल्ली, लाहौर, सहारनपुर से लेकर कानपुर तक ये प्रयास चलते रहे। बम निर्माण में विस्फोटक रसायनों की आवश्यकता होती थी, अतः रसायनों का ज्ञान आवश्यक था। अज्ञेय विज्ञान के छात्र रह चुके थे अतः उन्हें रसायनों की अच्छी जानकारी थी।

क्रान्तिकारी संगठन की सुरक्षा और 'ऐक्शन' के लिए रिवॉल्वर और पिस्तौलों की सदैव आवश्यकता रहती थी। आर्थिक तंगी के कारण नये शस्त्रों को खरीदना प्रायः कठिन होता था। अतः हिं०स०प्र०सं० के सदस्य धन्वन्तरी और सुखदेव पुराने शस्त्रों की मरम्मत के संबंध में विचार कर रहे थे। इस कार्य को वे स्वयं नहीं कर सकते थे। धन्वन्तरी को वात्स्यायन का विचार आया। उस समय वात्स्यायन एक अच्छे मैकेनिक भी थे। वे शस्त्रों की मरम्मत का कार्य कर सकते थे। उन पर विश्वास भी किया जा सकता था।

लाहौर हिं०स०प्र०सं० की गतिविधियों का केन्द्र था। यहाँ बम बनाने का प्रयास भी चल रहा था। अतः यह विचार किया गया कि सुरक्षा की दृष्टि से शस्त्रों की मरम्मत का कार्य अमृतसर में किया जाए। वात्स्यायन ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। इस प्रकार क्रान्तिकारी संगठन की मदद करना उनकी प्राथमिकता बनी। अमृतसर में एक ऐसे स्थान की व्यवस्था की गई जिससे बाहरी हिस्से में बिजली के सामान बेचने और उसकी मरम्मत करने का कार्य होता था। उसी दुकान के पीछे के हिस्से में शस्त्रों की मरम्मत का कार्य होने लगा। वात्स्यायन की मदद के लिए दो विश्वसनीय युवकों की भी व्यवस्था की गई। उन दिनों बिजली मैकेनिक अधिकांशतः मुसलमान होते थे, अतः इन लोगों ने अपने मुस्लिम नाम रखे और मुस्लिम जीवन शैली के अनुसार रहने लगे। उन्हें वात्स्यायन की देख-रेख में देसी पिस्तौलों को आधुनिक रूप देना था तथा पुरानी पिस्तौलों को भी ठीक करना होता था। अमृतसर में वात्स्यायन ने यह कार्य सफलतापूर्वक आरंभ कर दिया था।

हिं०स०प्र०सं० का 1928 से 1938 तक का कालखंड अत्यधिक घटनापूर्ण रहा। इन घटनाओं में प्रायः क्रान्तिकारी वात्स्यायन, जो अपने साथियों में साइंटिस्ट के नाम से प्रसिद्ध थे, का नाम आता है। भगत सिंह को 01 जून को जेल से छुड़ाने की योजना बनी थी। उसी सिलसिले में भगवतीचरण वोहरा अपने साथियों के साथ 28 मई 1930 को रावी तट पर बम का परीक्षण करने के लिए गए थे, जहाँ बम का विस्फोट उनके हाथ में हो गया था। गंभीर रूप से घायल भगवती भाई को वहाँ से उठा कर लाने के लिए यशपाल ने क्रिश्चियन कॉलेज के छात्रावास में रहने वाले दो छात्रों–वात्स्यायन और देवराज सेठी की मदद ली थी। यह कार्य पूरा नहीं हो सका। उन लोगों के पहुँचने के पूर्व ही भगवती भाई की मृत्यु हो चुकी थी।

इस दुर्घटना के तुरंत बाद 01 जून की रात को बहावलपुर रोड की कोठी पर, जहाँ अनेक क्रान्तिकारी भगत सिंह को जेल से छुड़ाने की योजना को कार्यान्वित करने के उद्देश्य से एकत्र हुए थे, बमों के विस्फोट हुए। परिणामस्वरूप आजाद, यशपाल, दुर्गा भाभी, सुशीला दीदी, मदन गोपाल आदि सभी को भूमिगत होना पड़ा। वात्स्यायन भी यशपाल की मदद से एक महीने के लिए भूमिगत रहे। कुछ दिनों की स्थिरता के बाद संगठन ने अपने अगले कदम उठाने आरंभ किए। यात्रा पुनः आरंभ हुई।

अब आजाद ने दिल्ली में बम का मसाला बनाने का निर्णय लिया। उस समय वे अपने कुछ साथियों के साथ दिल्ली में मोरी गेट के बाहर वाले मकान में रह रहे थे। इस कार्य के लिए स्थान तलाशने की जिम्मेदारी विमल प्रसाद जैन को दी गई। उन्होंने झंडे वाला में एक बड़े मकान की व्यवस्था की। वे स्वयं अपनी पत्नी के साथ वहाँ रहने लगे। बम का मसाला बनाने के अतिरिक्त अन्य सारे दायित्व विमल प्रसाद पर थे। यही वह समय था जब आजाद ने वात्स्यायन को पंजाब से दिल्ली बुलाया। यशपाल के अनुसार मार्च–अप्रैल 1930 तक वात्स्यायन कॉलेज छोड़ चुके थे, तथा दल के पूर्णकालिक सदस्य बन गए थे।

इस बम कारखाने का बाहरी रंग-रूप साबुन के कारखाने का था। वहाँ 'हिमालयन टॉयलेट्स' के नाम का बोर्ड लगाया गया। दिन में वहाँ साबुन, तेल बनते थे और रात में पिक्रिक एसिड, गन कॉटन, नाइट्रो ग्लिसरीन आदि बनाया जाता था। आजाद ने वात्स्यायन के साथ यशपाल को भी रखा क्योंकि यशपाल ने रोहतक में रह कर पिक्रिक एसिड बनाया था। वात्स्यायन की देख-रेख में तथा विमल प्रसाद, गिरिवर सिंह, यशपाल, प्रकाशवती तथा

कैलाशपति के सहयोग से यह कारखाना चल निकला। यशपाल के अनुसार यहाँ 30-40 बौंड बम का मसाला बना लिया गया था। आजाद "बीच-बीच में आकर इन सब कामों की देखभाल करते थे।" रसायनों के दुष्प्रभाव से बचने के लिए वात्स्यायन ने मोटी जीन के कपड़े की वर्दियां बनवा ली थीं। इसी वर्दी को पहनकर मसाला बनाने का कार्य किया जाता था। अक्टूबर 1930 तक यह कारखाना अच्छी तरह से चलता रहा था (सुखदेव राज – "अब ज्योति जगी"; पृ०सं० 161)।

सिंहावलोकन (भाग-2) में यशपाल ने स्वयं को प्राण दंड मिलने के संदर्भ में वात्स्यायन की विस्तार से चर्चा की है। यशपाल को दिल्ली कारखाने से कानपुर बुलाया गया था जहाँ वीरभद्र तिवारी द्वारा यशपाल को गोली मारी जानी थी। वीरभद्र ने आजाद से विश्वासघात किया; यशपाल को प्राण दंड के विषय में जानकारी थी तभी "वात्स्यायन मुझे देखकर मौन रह गया था। उस मौन का विशेष अर्थ मैं न समझा। उसका मौन रहना साधारण बात थी (सिंहावलोकन, भाग 2; पृ० 226)।" यशपाल ने तुरंत दिल्ली छोड़ कर लाहौर जाने का निर्णय लिया। उन्होंने पर्याप्त मात्रा में बम का मसाला भी साथ लिया। इस कार्य में उन्होंने वात्स्यायन को अपना सहयोगी बनाया। उस समय तक यशपाल यह समझ रहे थे कि वात्स्यायन को प्राण दंड के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है, लेकिन बाद में स्थिति स्पष्ट हो जाने पर उन्होंने यह समझा कि संभवतः उनकी गतिविधियों पर निगाह रखने के लिए वात्स्यायन ने सारा सामान यशपाल को दे दिया।

लाहौर पहुँच कर यशपाल ने अपने पुराने साथियों से मिलकर अपना स्पष्टीकरण देना चाहा था। इस संबंध में उन्हें वात्स्यायन का साथ अपेक्षित था। पहला कारण तो यह था कि दोनों ही साहित्यिक अभिरूचि के नवयुवक थे। दूसरा यह कि "विद्यार्थियों के क्षेत्र में वात्स्यायन का प्रभाव और प्रतिष्ठा थी (वही पृ० 228)। वात्स्यायन तटस्थ रहे, उन्होंने विरोध नहीं किया यही बहुत बड़ी बात थी, अन्यथा यशपाल का सुरक्षित रह पाना कठिन था। इससे एक और बात भी प्रमाणित होती है कि वात्स्यायन दल और दल के नेता के प्रति वफादार थे।

इन्हीं दिनों वात्स्यायन को पुनः अमृतसर जाने का आदेश मिला था क्योंकि उनकी अनुपस्थिति में अमृतसर के काम का नुकसान हो रहा था। यह पूरा समय हिं०स०प्र०सं० के लिए अत्यधिक संकटपूर्ण रहा। लाहौर षड्यंत्र केस चल रहा था। भगवती चरण वोहरा जैसा सहयोगी अपनी अंतिम यात्रा पर निकल चुका था। भगत सिंह, राजगुरु और सुखदेव अंतिम यात्रा की तैयारी में थे। अनेक महत्वपूर्ण सदस्य भी बंदी थे। पुलिस विभाग अत्यधिक चौकन्ना था। क्रान्तिकारी संगठन पर कुछ अपनी त्रुटियों के कारण और कुछ अपने सदस्यों की मुखबिरी के कारण संकट गहरा गया था।

एक बार वात्स्यायन बम के रसायनों को रेल द्वारा लाहौर लाए थे। स्टेशन पर पुलिस फोर्स देखकर वे हतप्रभ रह गए। वे स्टेशन पर खड़े विचार कर रहे थे कि क्या किया जाए। उसी समय एक पुलिस इन्सपेक्टर उनके पास से आहिस्ता से यह कहते हुए निकल गया कि "मैंने तुम्हें पहले नहीं देखा है।" वात्स्यायन के लिए इतना संकेत पर्याप्त था। वे तुरंत स्टेशन के गेट से बाहर निकल आये। उनके बाहर निकलते ही इन्सपेक्टर ने सीटी बजानी आरंभ कर दी। यात्रियों को रोककर उनकी तलाशी ली जाने लगी। वस्तुतः यह पुलिस इन्सपेक्टर वात्स्यायन का सहपाठी रह चुका था, अन्यथा वे उसी दिन बंदी बना लिए जाते।

पुलिस विभाग की सतर्कता के कारण संगठन से जुड़े लोगों की गिरफ्तारियाँ आरंभ हो गई थीं। वात्स्यायन के अमृतसर चले जाने के बाद दिल्ली के बम कारखाने से जुड़े कैलाशपति 24 अक्टूबर को रात को गिरफ्तार हो गए। कैलाशपति को संगठन की केन्द्रीय समिति से लेकर साधारण सदस्यों तक के नाम ज्ञात थे। उसकी दी जानकारी के आधार पर बड़ी संख्या में गिरफ्तारियाँ हुईं। 15 नवम्बर को मेरठ से विमल प्रसाद जैन पकड़े गए। 15 या 19 नवम्बर को अमृतसर से वात्स्यायन गिरफ्तार किए गए। उस समय वे मुस्लिम वेश में थे और उनका नाम मुल्ला मोहम्मद बख्श था। इस समय उनकी आयु केवल 19 वर्ष की थी। 1930 से 1936 तक या तो वे जेल में रहे या नजरबंद रहे। उन्होंने अपने जेल जीवन में प्रसिद्ध कृति 'शेखर एक जीवनी' की रचना की।

जेल से मुक्त होने के बाद उनका संपूर्ण जीवन साहित्य को समर्पित रहा। साहित्य में नये प्रयोग, विपुल साहित्य की रचना, पत्रकारिता, देश-विदेश की यात्राएं– प्रत्येक क्षेत्र में लीक से हटकर कुछ करने का हौसला सदैव बना रहा। फासीवाद का विरोधी होने के कारण द्वितीय विश्वयुद्ध के समय वे सेना में भर्ती हुए (1943-46)। युद्ध का अंत होने पर उन्होंने अपने पद से त्याग पत्र दे दिया। क्रान्तिकारी आंदोलन से जुड़ने के समय उनकी आयु बहुत कम थी। उनके साथियों तथा यशपाल, वेशम्पायन, सुखदेव राज आदि ने उनकी चर्चा अवश्य की है लेकिन उनको लेकर किसी विवाद की चर्चा नहीं है। संभवतः उन्हें अपने काम से मतलब रहता था। उन्हें संगठन की ओर से जो दायित्व दिए, उन दायित्वों को उन्होनें पूरी ईमानदारी से पूरा किया।

अज्ञेय जिस काल खंड में क्रातिकारी आंदोलन से जुड़े थे वहाँ तक आते-आते क्रान्तिकारी आंदोलन की लंबी यात्रा साम्यवादी विचारों के करीब आ चुकी थी। दूसरे शब्दों में इस समय आंदोलन पर साम्यवाद का पूरा प्रभाव पड़ चुका था। भगत सिंह पूर्ण रूप से साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित हो चुके थे। उन्होंने इस विचारधारा का विशद् अध्ययन किया था। उनके अधिकांश साथी साम्यवाद से प्रभावित हुए। लेकिन वात्स्यायन पर साम्यवाद का प्रभाव नहीं था। यह भी एक विचित्र बात है। जब वे एक लेखक के रूप में प्रतिष्ठित हुए "मार्क्सवादियों का एक पूरा तबका उनके विरुद्ध रहा।" वे एक शक्तिशाली व्यक्तित्व के धनी थे। क्रान्तिकारी संगठन से जुड़ने के बाद भी वे दल में अपने दायित्व निभाते रहे, किसी दलगत विवाद से नहीं जुड़े। कालान्तर में यह स्पष्ट हो गया था कि वे दक्षिणपंथी विचारधारा के थे लेकिन "किसी तरह की सांप्रदायिकता से उनका कोई संबंध या रूझान कभी नहीं था।"

अज्ञेय के व्यक्तित्व के संबंध में एक और विषय की चर्चा करना चाह रही हूँ यद्यपि यह विषय से कुछ हट कर है। अज्ञेय एक आत्मनिर्भर व्यक्ति थे। उन्होंने स्वयं स्वीकार किया कि "परिस्थितियों ने एकान्त इतना अधिक दिया कि आत्मनिर्भरता अभ्यास नहीं चरित्र का अंग बन गई।" वे कपड़े सिलने से लेकर बाल काटने, जूते और गमले बनाने, बिजली के सामान की मरम्मत, कृषि, खेलकूद, प्रकाशन से जुड़े कार्य, मिट्टी के खिलौने बनाना आदि अनेक प्रकार के कार्य कर लेते थे। उन्होंने लिखा... "इन सबसे केवल शौक रखता हूँ ऐसा नहीं है, अधिकांश में किसी के सहारे आजीविका भी बना ले सकता हूँ। और जो नहीं जानता वह सीखने के लिए हमेशा तैयार रहता हूँ।" अज्ञेय की जीवन-यात्रा का पहला महत्वपूर्ण पड़ाव उनका क्रान्तिकारी जीवन था। जेल में रह कर भी और उससे मुक्त होने के बाद भी उन्होंने जिन ऊँचाइयों को छुआ उसे जान कर हैरानी होती है।

यात्रा वृत्तांत

टाँके पाकर मेरा घाव सिलेगा क्या!

अश्विनी कुमार आलोक
प्रभा निकेतन, पत्रकार कॉलोनी,
महनार, वैशाली(बिहार), मोबाइल—8789335785

मैं इतना तो अनुमान कर ही चुका था कि रामगोपाल शर्मा 'रुद्र' किसी वैसे क्षेत्र में रहते रहे होंगे, जो भूमिहारों का गाँव होगा। पता करने के मेरे प्रयास अपुष्ट और अनियोजित नहीं थे। हालाँकि मैंने जिन दो साहित्यकार मित्रों से उनके गाँव-घर की तस्दीक की थी, उनमें से किन्हीं का स्थानीय संबंध दानापुर से नहीं था। विजय गुंजन गया से आकर बसे थे और आचार्य आनंद किशोर शास्त्री वैशाली से। लेकिन लंबे समय से दानापुर में रहे, अब तो वहीं घर भी बना लिए। आचार्य विजय गुंजन ने बताया था कि पटने के बुद्धा कॉलोनी में उनके परिजनों का कोई आवास है, आचार्य आनंद किशोर शास्त्री दानापुर कैंट से करीब तीन किमी पश्चिम अवस्थित शाहपुर नामक गाँव में रामगोपाल शर्मा 'रुद्र' के भाई-भतीजे से मिले थे। उनकी भेंट का प्रयोजन क्या था, कह नहीं सकता। परंतु मुझे उन्हीं के बताए हुए रास्ते से कोई सूरत निकालनी थी।

तब भी, रामगोपाल शर्मा 'रुद्र' के किसी वंशज से फोन पर बात करने के बाद जो सहूलियतें मिलतीं, मुझे उन्हीं की तलाश थी। रामगोपाल शर्मा 'रुद्र' के दामाद डॉ. नंदकिशोर नवल का हिन्दी-काव्य-आलोचना के क्षेत्र में बहुत नाम है। उनकी बेटी हैं डॉ. पूर्वा भारद्वाज। पूर्वा भारद्वाज के लेखन से मैं हाल ही में परिचित हुआ था। हाजीपुर की प्रसिद्ध साहित्यिक संस्था 'किरण मंडल' के महासचिव हैं डॉ. शैलेन्द्र राकेश। उन्होंने बीते वर्ष 'वैशाली की विभूतियाँ' नाम से एक पुस्तक का संपादन-प्रकाशन किया था। मेरे दो आलेख उसमें संकलित हुए, पूर्वा भारद्वाज ने उस पुस्तक में अपने पिता डॉ. नंदकिशोर नवल पर लिखा। मैंने पूर्वा भारद्वाज को फोन किया और उस पुस्तक का संदर्भ दिया। वह पहचान गयीं। लेकिन गुजरात के किसी प्रशिक्षण कार्यक्रम में सम्मिलित हो रही थीं, बहुत बातें करने की स्थिति में नहीं थीं। दो दिनों बाद बातें करने का आश्वासन दिया। इतना उनसे मालूम हो गया कि शाहपुर में उनके चचेरे मामू जयदेव शर्मा रहते हैं।

सोनपुर और पटना के बीच जयप्रकाश नारायण सेतु है, उसके आखिरी हिस्से से कुछ पूरब बढ़ते ही दानापुर के क्षेत्र शुरू हो गये। मेरी मोटरसाइकिल की पिछली सीट पर रंगकर्मी और लेखक डॉ. सुधांशु कुमार चक्रवर्ती बैठे हुए थे। दानापुर कैंट से पश्चिम बढ़ते ही शाहपुर गाँव शुरू हो जाता है, पूर्वा भारद्वाज ने इतना तो बताया ही था। उन्होंने यह भी बताया था कि बचपन में कभी वह ननिहाल गयी थीं, उनका ननिहाल सड़क के किनारे ही था।

शाहपुर गाँव में पुल पार करते ही मैंने एक दुकानदार से रामगोपाल शर्मा 'रुद्र' और उनके भतीजे जयदेव शर्मा के संबंध में पूछा। उसे रामगोपाल शर्मा 'रुद्र' के संबंध में कोई ज्ञान नहीं था। जयदेव शर्मा के संबंध में यह पता था कि वह होमियोपैथ के डॉक्टर हैं। परंतु मुझे जिस जयदेव शर्मा के संबंध में पूर्वा भारद्वाज ने बताया था, वह होमियोपैथ के डाक्टर थे या नहीं, नहीं बताया था। दुकानदार ने भूमिहार टोले के एक युवक को रोका। युवक ने बताया कि रामगोपाल शर्मा 'रुद्र' भूमिहार टोले में नहीं थे, करीब एक किमी आगे मुख्य सड़क पर ही सहारा इंडिया के कार्यालय के समीप रहते थे। मैंने अपनी मोटरसाइकिल बढ़ा दी। लेकिन अफसोस कि दस-बीस मिनट ऐसे ही भटकना पड़ा। किसी बुजुर्ग से सही जानकारी मिलती। एक-दो लोगों ने मुझे अपने उत्तरों से निराश किया। करीब अस्सी बरस के एक वृद्ध धूप सेंक रहे थे, उन्होंने न बताया होता तो मुझे लौटना पड़ता। एक बड़े-से घर के एक हिस्से में फंडामेंटल पब्लिक स्कूल चलता है, उसके दूसरे हिस्से में टीवी देखते हुए जयदेव शर्मा मिल गये। उनके सामने छोटे-से टेबुल पर होमियोपैथ की कुछ शीशियाँ रखी हुई थीं। मुझे यदि जयदेव शर्मा के पेशे के संबंध में पूर्वा भारद्वाज बता देतीं, तो रामगोपाल शर्मा 'रुद्र' के परिजनों से मिलने के लिए जयदेव शर्मा तुरंत कोई रास्ता बता देते। परंतु, बताते क्या? उन्हें न इसमें रुचि थी और न ही उनके पास बताने को कुछ था। बतानेवाले के पास रुचि और ज्ञान दोनों होना चाहिए, नहीं तो पूछनेवाले का उत्साह जाता रहता है। जयदेव शर्मा का असली नाम सुधीर शर्मा है। दानापुर से मनेर की ओर जानेवाली मुख्य सड़क के दक्षिणी किनारे पर उनका आवास है। उनके बेटे ठेकेदारी करते हैं। आवास के बड़े-से हिस्से को किसी व्यक्ति ने स्कूल चलाने के लिए किराये पर ले रखा है। पुश्तैनी जमीनें भी हैं, चार बीघे के करीब। पटना में चार बीघे जमीन की कीमत आँखों में आँकी जानी चाहिए। जयदेव शर्मा के पिता रामशंकर शर्मा और रामगोपाल शर्मा 'रुद्र' सगे भाई थे। बड़े भाई रामगोपाल शर्मा 'रुद्र' के संबंध में बताने को जयदेव शर्मा के पास इतनी बात है कि रुद्र जी ने अपनी आरंभिक युवावस्था में ही शाहपुर गाँव छोड़ दिया था, गया में नौकरी की और पटना में घर बना लिया। समूचे दानापुर या शाहपुर में शायद ही कोई आदमी ऐसा मिले, जिसे रामगोपाल शर्मा 'रुद्र' जैसे स्वनामधन्य कवि-गीतकार के साहित्य से कोई सरोकार हो। जिस घर में जयदेव शर्मा रहते हैं, उस घर में आधे के हिस्सेदार रामगोपाल शर्मा 'रुद्र' थे। यह अलग बात है कि उनकी उम्र का कोई आदमी जीवित नहीं होगा। परंतु, शरीर और समय साहित्य की अवस्थाओं के लिए जीवनकाल निर्धारित नहीं करते। साहित्यकार अपने सृजन के कालजय का प्रभाव स्थायी कर जाता है। उसके स्थायित्व का सम्मान करनेवाली पीढ़ियों के संस्कार संशयग्रस्त हों, तो इस प्रकार की आशा नहीं करें। रुद्र जी के घर के दो घर बाद में रहनेवाले सत्तर वर्ष के एक व्यक्ति ने तो संपूर्ण विश्वास और आधिकारिक स्थानीयता के साथ बताया कि इस इलाके में कोई भूमिहार-परिवार नहीं रहता। बड़ा शहर बनने की ओर दानापुर का यह इलाका पूरी व्यग्रता के साथ उद्यत है। शहरों में आदमियत खोने की आदत आ ही जाती है। परंतु जातीय पहचान तो राजनीति की आधारभूमि से अपने पाँव खींचने से रही। ऐसे में किसी बड़े कवि के सामाजिक अवदान को भले कोई भूल जाए, उसकी जातीयता पर ध्यान तो रखना ही चाहिए। जयदेव शर्मा ने मुझे बताया कि रामगोपाल शर्मा 'रुद्र' ने अपने हिस्से की जमीनें बेच दी थीं, गाँव से उनका कोई नाता-लगाव नहीं रहा। जयदेव शर्मा को रामगोपाल शर्मा रुद्र के बेटे राघवेंद्र और बेटियों रागिनी, कविता, सुषमा और वंदना के नाम याद हैं। उन्हें यह भी पता है कि रागिनी शर्मा अब वृद्ध और श्लथ हो गयी हैं। यह स्वाभाविक भी है। जयदेव शर्मा स्वयं अठहत्तर वर्ष के हैं, रागिनी शर्मा उम्र में उनसे पाँच वर्ष बड़ी हैं। तेरासी वर्ष की अवस्था में रागिनी शर्मा कैसी दिखतीं-लगती हैं, जयदेव शर्मा ने न तो कभी इसका पता लगाने की कोशिश की और न ही उन्हें कोई विशेष जानकारी है। पिछली पीढ़ी की संवादहीनता ने इस पीढ़ी तक अपनी उपस्थिति को ऐसे स्थिर-अडिग स्तर पर बचा रखा है कि रक्त संबंधों की आत्मीयता न जाने किस ओर भटक गयी। जयदेव शर्मा को इतना मलाल जरूर है कि रामगोपाल शर्मा 'रुद्र' को उनकी प्रतिभा के अनुकूल प्रसिद्धि नहीं मिल सकी। परंतु वे इस काम के लिए निस्संकोच उनके दामाद और हिन्दी काव्य-आलोचना के प्रसिद्ध व्यक्तित्व नंदकिशोर नवल को जिम्मेदार बताते हैं। कोई आदमी साहित्य को प्रतिष्ठा देने के अपने कर्त्तव्य से अनायास ही पल्ला झाड़ सकता है। जिस घर में रामगोपाल शर्मा 'रुद्र' अपनी पत्नी को ब्याहकर लाये, जिस घर से निकलकर वह गया और पटना के शिक्षक-समाज एवं देश की साहित्य-भूमि पर चमत्कृत करनेवाली कवि-प्रतिभा के रूप में समादृत हुए, शाहपुर गाँव के उस बड़े-से घर का कोई कोना भी उनकी

स्मृतियों के लिए सुरक्षित नहीं किया जा सका। इस सड़क के चौक-चौराहों को पुल और मजार चौक कहने की स्वाभाविकता के बीच रामगोपाल शर्मा 'रुद्र' पथ या चौराहा करने का कोई सामुदायिक प्रयास होता, तो कवि को जन्म देने वाले शाहपुर गाँव की स्थानीयता की प्रसिद्धि घट तो नहीं जाती! लेकिन अफसोस कि ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। जयदेव शर्मा से अधिक देर बातें करने का कोई मतलब नहीं था। उन्हें रुद्र जी की किसी कविता या किताब का नाम तक याद नहीं। उनके बेटे नहीं थे। रहते भी तो क्या बातें होतीं।

रामगोपाल शर्मा 'रूद्र' अपने गाँव में कितना आये-गये, कह नहीं सकते। परंतु जब थे, समूचे पटना में साइकिल से घूमते थे। उनकी नातिन पूर्वा भारद्वाज ने बताया कि वह जब अपने माता-पिता रागिनी शर्मा और नंदकिशोर नवल के साथ महेन्द्रू मुहल्ले के रानीघाट में रहते थे, रुद्र जी चमड़े के अपने बैग में भर-भरकर खाजा लाते थे। वे बच्चों से बहुत प्रेम करते थे। जितनी तन्मयता से गाते थे, उतनी ही निष्ठा से साहित्य का जीवन जीते थे। उन दिनों के बड़े साहित्यकारों से उनका आत्मीयतापूर्ण संबंध था।

छायावादोत्तर कविता के छांदस और गीतिधर्मी स्वरूपों के साथ रामगोपाल शर्मा 'रुद्र' का कवि व्यक्तित्व पहचान में आया था। वह शास्त्र और कला के सम्मिलित स्वरूपों से प्रभाव डालनेवाले अपने समय के अन्यतम कवि-गीतकार रहे। भाषा के स्तर पर वह इतने शालीन थे कि गीतों में स्वाभाविक शब्दावलियों का सार्थक समायोजन करने में सफल रहे। तत्सम और देशज शब्दों के साथ उर्दू के शब्दों का व्यावहारिक उपयोग उनके सरल एवं सादगीपूरित जीवन की तरह जीवंतता से होता दिखा। उनके शब्द सार्थक एवं उपयुक्त उपमाएँ ले आते थे, वे अपनी मिट्टी की गंध उठाते रहे। अर्थों की व्यंजना और साभिप्राय संवेदना ने उनके गीतों को गति दी। दर्शन एवं धर्म के संयोग से उन्होंने काव्य का सायास अस्तित्व नहीं गढ़ा, वैचारिक आदर्श और व्यावहारिक प्रयोग को कविता के आचरण में नहीं संभाला। बल्कि समय की स्वतः स्फूर्त विशेषताएँ भी प्रवृत्त रखीं, परंपरामोह का आधार भी समझा। रामगोपाल शर्मा 'रुद्र' छायावाद की पारंपरिक सहधर्मिता में प्रयोगवाद की वैचारिक अड़चनों से भी अलग रहे। उन्होंने जीवन में अनुशासन, आदर्श और शास्त्रसम्मत विनियमन के प्रबंधों की तरह कविता और समाज के संबंध सहेजे, उन्हीं के गीत गाये। सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने उन्हें 'पाएदार शायर' कहा था। एक समालोचक का मत है कि चूंकि उन्होंने आलोचकों के कहने पर अपना मार्ग नहीं बदला, इसलिए वे उससे काफी दूर निकल गये हैं।

उनके दामाद डॉ. नंदकिशोर नवल ने उनकी कविताओं के संचयन 'रुद्र समग्र' का संपादन किया। इस रचनावली ने यह प्रमाणित किया कि छायावादोत्तर काव्य में भी गीतों की अगति नहीं हुई और कविता के गेय स्वरूपों की मृदुलता ने वैचारिक अभिव्यक्तियों के आगे अपने भाव-संकुल प्रभावों का निरूपण करना जारी रखा। रामगोपाल शर्मा 'रुद्र' कविता की सांगीतिकता बचानेवाले कवि के रूप में भी याद किये जाते रहेंगे, कविता का एक दौर उनके पाँच दशकों की गीत- साधना से संपन्न हुआ था। उनकी कविताओं ने छायावाद की परवर्ती विकास-अभिव्यक्तियों में सौंदर्य, शृंगार और संबंध की पवित्रता जीवित रखी। रामगोपाल शर्मा 'रुद्र' अपनी कविताओं में दूब के हरेपन और आनंद के ग्रामीण भोलेपन से संपन्न कवि थे। फक्कड़ और मस्तमौला कवि थे, जीवन की खुशियों को छोटे-छोटे राग-विभाव से जुटाने वाले इस कवि की कविताओं ने सरलतापूर्वक जीवन की बात कही –

जीवन में ऐसे सुख के छिन
गिने-चुने होते हैं, लेकिन
भूले नहीं भूलते वे दिन
आओ, उस दिन-सा
आँखों-आँखों मुस्काया जाये
आओ, बैठा जाए यहाँ
कुछ देर बैठा जाए।

उन्होंने हर अर्थ में जीवन के गीत गाए, जीवन की गति को प्रेम के सहधर्म में सहेजा। विश्वास रचा और आशाएँ रखीं। इनके टूटने पर रोये भी और गीतों में पुकार-पुकार कर कहा –

कोई छंदों के बंध का बेदी नहीं
जो मैं अक्षर जोड़ता जा रहा हूँ
हर अक्षर है टुकड़ा दिल का
दिल टूटा हुआ मैं जुटा रहा हूँ
कोई गाना नहीं, यह एक फसाना है
जीवन का, जो सुना रहा हूँ
एक दर्द की रागिनी दागों के काले सुरों पर
आज बजा रहा हूँ।

वह जीवन की विघ्न-बाधाओं के विरुद्ध किसी प्रलयंकर के आह्वान की कविताएँ भी रचते रहे। उनकी कविता 'रुद्र-स्तवन' ने उनके उस कविरूप को प्रमाणित किया, जिसमें वह तत्सम शब्दों के संयोग से गत्वर और प्रवाहपूर्ण कविताएँ रचते थे –

तुम शुभ्र वदन उज्ज्वल निकेत
गणपति हिमाद्रि तनुजा समेत
पार्षद परेश! बहु भूत-प्रेत
ले, प्रलय राग के रचते स्वर
हर-हर मृडेश, हे प्रलयंकर!

रामधारी सिंह 'दिनकर' ने रामगोपाल शर्मा 'रुद्र' को आनंद और उमंग का कवि कहा था। रामगोपाल वर्मा 'रुद्र' का जन्म 1 नवंबर 1912 को दानापुर(पटना) के शाहपुर गाँव में हुआ था। उन्होंने देवघर विद्यापीठ से 'साहित्यालंकार' की उपाधि प्राप्त की थी। अपने अध्यापकीय जीवन का आरंभ उन्होंने मुस्तफापुर के एक विद्यालय से किया था। उसके बाद गया में शिक्षक रहे, फिर पटना कॉलेजिएट में अध्यापक हुए। सेवानिवृत्ति के बाद बिहार राष्ट्रभाषा परिषद में पुस्तकालयी एवं बिहार इलेक्ट्रिसिटी बोर्ड में अनुवादक की भी नौकरी की।

रामगोपाल शर्मा 'रुद्र' एक प्रकार से जन्मजात कवि थे। तेरह वर्ष के अल्पवय में कविताएँ लिखने लगे थे। 1925 में अपनी कविताओं की गेयता के लिए पहचाने जा रहे थे। उनकी काव्य पुस्तकों में 'शिंजिनी'(1946), 'द्रोण'(1950), 'मूर्च्छना'(1954), 'हिमशिखर'(1954), 'भागीरथी'(1960), 'भीड़'(1963) और 'शब्दवेध'(1991) प्रमुख हैं। उन्होंने बाल कविताओं की भी प्रचुर रचना की। उनकी कविताएँ बिहार सरकार की विद्यालयी पाठ्य पुस्तकों में सम्मिलित रहीं। उन्हें बिहार सरकार के राजभाषा विभाग ने पच्चीस हजार रुपये का दिनकर पुरस्कार दिया था। परंतु, इस संबंध में पता यह लगा कि वे इस पुरस्कार की राशि को अपनी पाँचों संतानों में बराबर-बराबर बाँटना चाहते थे। इस पर संतानों में विवाद हो गया, खासकर उनकी पुत्रवधू नहीं मानीं। इस वजह से वह पुरस्कार राशि नहीं ले पाए।

रामगोपाल शर्मा 'रुद्र' सरल और सुंदर हृदय के कवि थे। उनके शरीर और मन पर कविता का एकाधिकार था। वह कविता ही ओढ़ते और कविता ही बिछाते थे। इतने असावधान और भावुक थे कि एक बार सड़क पर खड़े-खड़े सो गये थे। उनके कविमित्र ब्रजकिशोर नारायण की माँ पार्वती देवी के लिए कोई राजनीतिक सुखद परिणाम आने वाला था। उसकी प्रतीक्षा में सड़क पर खड़े-खड़े बेसुध हो गए। बहुत देर के बाद ब्रजकिशोर नारायण

ने उन्हें लकड़ी से ठोकर मारकर उठाया था।

रामगोपाल शर्मा 'रुद्र' की निश्छलता और भावुकता का मान उन दिनों के बड़े साहित्यकारों ने किया। आचार्य शिवपूजन सहाय और रामवृक्ष बेनीपुरी के साथ उनका पारिवारिक संबंध था। उन दिनों रामधारी सिंह 'दिनकर' दिल्ली रहने लगे थे। लेकिन जब भी आते थे, रामगोपाल शर्मा 'रुद्र' को खोजते थे। रुद्र जी कवि सम्मेलनों में अपनी कविता और कविता के तायवितान के लिए पहचाने गये। वह कवि सम्मेलनों के प्रति बहुत समर्पित रहे। इसी समर्पण ने उनके प्राण ले लिए। हुआ यह कि पूर्व शिक्षामंत्री गंगाशरण सिंह की जयंती के अवसर पर साहित्यिक गोष्ठी का आयोजन हुआ था। रुद्र जी शाम में उस गोष्ठी में भाग लेकर लौटे थे। जब बुद्धा कॉलोनी अवस्थित अपने आवास पर पहुँचे, तो उन्हें याद आया कि वे अपनी बंडी आयोजन स्थल पर ही भूल आए। परिजनों ने उन्हें रोका, पर वे नहीं माने। मूसलाधार वर्षा हो रही थी। वह बंडी लेकर रात में लौट रहे थे। अँधेरा हो चुका था। कुछ दिख नहीं रहा था। गार्डिनर रोड पर मधुकुंज अपार्टमेंट के समीप बिजली का कोई तार टूटकर लटक रहा था। रुद्र जी उसकी चपेट में आ गए। रात में गश्ती के लिए निकली पुलिस की निगाह पड़ी। तब तक देर हो चुकी थी। 19 अगस्त 1991 की उस रात्रि में कविता और संगीत की वह सुरम्य लय सदा के लिए विदा हो गयी।

शाहपुर के जिस घर में मैं जयदेव शर्मा से मिला था, वस्तुतः वह घर रामगोपाल शर्मा 'रुद्र' के पिता सहदेव सिंह ने रामगोपाल शर्मा 'रुद्र' के लिए ही बनवाया था। सहदेव सिंह का पहला विवाह अधिक समय तक नहीं चल सका। पत्नी चल बसी। लेकिन अपने पीछे रामगोविंद सिंह और सीता नामक दो संतान छोड़ गए। सहदेव सिंह का दूसरा विवाह पटना जिले के महेशिया गाँव में हुआ था। दूसरी पत्नी से तीन संतानें हुई थीं। बड़ी बेटी राधा का विवाह बालपन में बख्तियारपुर के किसी गाँव में हुआ था। वह भी थोड़े समय बाद विधवा हो गयी थीं। उसके बाद रामगोपाल शर्मा 'रुद्र' और रामशंकर सिंह का जन्म हुआ था। शाहपुर पुल चौक से सटे पश्चिम और दक्षिण दिशा में अवस्थित जिस भूमिहार टोले में मैं रामगोपाल शर्मा 'रुद्र' का घर खोजने जा रहा था, वास्तव में कभी उसी टोले में उनका घर था। टोले का नाम था चौधरी टोला। लेकिन रुद्र जी का विवाह जमींदार परिवार में हुआ था। उनकी पत्नी को सम्मानजनक घर देने के लिए उनके पिता सहदेव सिंह ने मुख्य सड़क के किनारे घर बनवाया था। परंतु रुद्र जी वहाँ बहुत दिनों तक रह न सके। एक बेटी और एक बेटे का जन्म हुआ, दोनों की मृत्यु हो गयी। रुद्र जी जब गया रहने लगे, तो उनकी पत्नी ने चार बेटियों रागिनी, कविता, सुषमा और वंदना को जन्म दिया। एक बेटे राघवेंद्र का भी वहीं जन्म हुआ। वह बेटियों एवं बेटे के विवाह से निवृत्त होकर पूरी तरह से साहित्य-साधना में रम चुके थे। न तो अधिक की चाह थी और न ही किसी इच्छा की पूर्ति के लिए कोई बड़ा प्रयास करने की व्यग्रता। तभी, उनकी सुख-शांति पर कुठाराघात हो गया। इकलौते बेटे राघवेन्द्र की बैडमिंटन खेलने के क्रम में मौत हो गयी। माथे पर चोट लगी और चल बसे। अभी वह इस असह्य व्यथा से उबरे भी नहीं थे कि तीसरी बेटी सुषमा के पति का देहांत हो गया। सुषमा के पति के हृदय में पहले ही से कोई बीमारी थी, जिसे छुपाया गया था। विवाह के चार वर्षों के बाद ही उनके पति चल बसे थे। वे अपने पीछे दो बच्चों को छोड़ गये थे। बुद्धा कॉलोनी में रामगोपाल शर्मा 'रुद्र' ने आवास बनवाया था। उसके दक्षिणी हिस्से में उन्होंने अपनी विधवा बेटी सुषमा शर्मा को रख लिया था। यहीं से उनके परिवार में विवाद आरंभ हो गया था। उनकी पुत्रवधू अर्थात् राघवेन्द्र की पत्नी ने इस पर प्रतिवाद किया। राघवेन्द्र की पत्नी को शिक्षक की नौकरी पर लगवाने में रामगोपाल शर्मा 'रुद्र' के बड़े दामाद अर्थात् रागिनी शर्मा के पति और पटना विश्वविद्यालय में हिन्दी के प्राध्यापक प्रो. नंदकिशोर नवल का योगदान रहा। नंदकिशोर नवल ने आपसी मतभेद को पाटने का बहुत प्रयत्न किया, पर वे सफल न हो सके। रामगोपाल शर्मा 'रुद्र' की पुत्रवधू ने उन पर सुषमा शर्मा का पक्ष लेने का आरोप लगाया। विकट स्थिति यह उत्पन्न हो गयी कि रामगोपाल शर्मा 'रुद्र' की पुत्रवधू एक तरफ और उनकी चारों बेटियाँ दूसरी तरफ। पटना के जिस बुद्धा कॉलोनी में रामगोपाल शर्मा 'रुद्र' की पुत्रवधू का परिवार निवास करता है, उसी जगह महज कुछ फर्लांग की दूरी पर उनकी बड़ी बेटी रागिनी शर्मा और छोटी बेटी वंदना शर्मा रहती हैं। कृष्णा निकेतन के ठीक सामने राजप्रिया अपार्टमेंट। फ्लैट संख्या 301 में रागिनी शर्मा रहती हैं और 401 में वंदना शर्मा। रागिनी शर्मा के पति प्रो. नंदकिशोर नवल का दो वर्ष पूर्व देहांत हो गया। मैं शाहपुर गाँव से अतृप्त जिज्ञासा लेकर बुद्धा कॉलोनी के राजप्रिया अपार्टमेंट की फ्लैट संख्या 301 में पहुँच गया। किसी नौकरानी ने दरवाजा खोला। संभवतः पूर्वा भारद्वाज ने मेरे पहुँचने की सूचना उन्हें दे दी थी। नौकरानी अकेली नहीं थी, एक और नौकरानी थी। खाना बनाया जा चुका था, रागिनी शर्मा को खिलाने की तैयारी चल रही थी। लेकिन उन्हें खिलाने का काम कुछ देर के लिए रोक दिया गया था। रागिनी शर्मा जिस कमरे में लेटी हुई थीं, मेरे लिए एक कुर्सी वहीं लगा दी गयी। एक बार फोन पर मैं रागिनी शर्मा से बातें कर चुका था; उन्हें पिता के नाम पर बातें करने में खुशी मिली थी। मुझे बुला लिया था। वह बिछावन पर लेटी हुई थीं। नौकरानी को उठाने के लिए कहा, लेकिन मैंने रोक दिया। मुझे पूर्वा भारद्वाज ने बता दिया था कि वह चल-फिर नहीं सकतीं। रागिनी शर्मा ने भी अपनी निःशक्तता के विषय में स्वतः बता दिया कि उन्हें आर्थराइटिस है। मैं जानता था कि उनके कूल्हे की हड्डी भी टूटी हुई है। परंतु इस उम्र में ऐसी बीमारियाँ तो सिर्फ बहाना होती हैं। मैं अपने आने के प्रयोजन पर बोलने लगा। मैं जैसे ही चुप हुआ, रागिनी शर्मा ने अपनी स्मृतियों का पिटारा खोल दिया। उन्हें अपने पिता, बहनों एवं भाई के जन्म की तिथियाँ बताने में अपनी स्मृति पर जोर देना नहीं पड़ा। ईस्वी सन् के साथ उन्होंने तिथियाँ ऐसे बता दीं, जैसे वह कागज पर लिखी हुई कोई प्रामाणिक दस्तावेज पढ़ रही हों। साहित्यकारों के सान्निध्य की कहानियाँ रागिनी शर्मा को याद हैं। वह बोलती चली गयीं। उनके बोलने में ऐसा स्वाभाविक गौरवबोध था, जैसे किसी साहित्यकार की बेटी और पत्नी ने उसे बहुत स्वाभाविकता के साथ बचाकर रखा हो। रागिनी शर्मा का किस्सा अभी चल ही रहा था कि दो में से एक नौकरानी जाने को हुई। उसने अपनी ईमानदारी का सबूत दिया, झोले में से निकालकर अपना स्वेटर दिखाया। कहा कि कल स्वेटर छूट गया था, वही झोले में रखकर ले जा रही है। नौकरानी को इस बात पर असंतोष था कि फ्लैट से नीचे उतरने पर अपार्टमेंट का गार्ड उस पर शक करता है।

रागिनी शर्मा फ्लैट में अकेली रहती हैं। वह उठकर बैठ भी नहीं सकतीं। अस्थि रोग के भयानक प्रकोप से संकट में हैं। अकेली रहती हैं। उनके पुत्र और पौत्र बैंक की नौकरी में हैं, बाहर रहते हैं। बेटी पूर्वा भारद्वाज बीते चौबीस वर्षों से दिल्ली में रहती हैं। वह दिल्ली विश्वविद्यालय में हिन्दी के प्राध्यापक अपूर्वानंद की पत्नी हैं। डॉ. पूर्वा भारद्वाज शिक्षा, स्त्री शिक्षा और लैंगिक समानता के विषय पर कार्यक्रमों का संचालन करती हैं।

रामगोपाल शर्मा 'रुद्र' के कवि हृदय ने साहित्यिक आयोजनों से जिस प्रकार अपनी नातेदारी निभायी, साहित्यकारों से भी जुड़े रहे। वे हाजीपुर की प्रसिद्ध साहित्यिक संस्था 'किरण मंडल' के कार्यक्रमों से संबद्ध रहे। 'किरण मंडल' के किसी आयोजन में नवोदित प्रतिभा के रूप में नंदकिशोर नवल ने काव्यपाठ किया था। नवल जी की प्रतिभा और संभावनाओं का पता रामगोपाल शर्मा 'रुद्र' को हो गया था। उन्होंने उन्हें प्रोत्साहित किया। स्नेह पाकर नंदकिशोर नवल ने कई बार रामगोपाल शर्मा 'रुद्र' से अपनी कविताएँ सुधरवायीं। वे हाजीपुर से स्टीमर पकड़कर पटना जाते थे। सान्निध्य प्रगाढ़

हुआ, रामगोपाल शर्मा 'रुद्र' की बड़ी बेटी रागिनी शर्मा से उनका विवाह हो गया। यह कहने में संकोच नहीं कि रामगोपाल शर्मा 'रुद्र' के साहित्य का जो थोड़ा-बहुत मूल्यांकन हुआ, वह नंदकिशोर नवल के कारण ही हुआ। अन्यथा, रामगोपाल शर्मा 'रुद्र' जैसे विरभिमान और चाटुकारितारहित कवि की ओर ध्यान देने वाले लोग कहाँ और कितने हैं। नंदकिशोर नवल पटना विश्वविद्यालय में प्राध्यापक हुए। कविता लेखन के रास्ते साहित्य में आये, परंतु समालोचक के रूप में प्रसिद्ध हुए। उन्होंने अपनी पुस्तक "उत्तर छायावाद और रामगोपाल शर्मा 'रुद्र'" में रामगोपाल शर्मा 'रुद्र' को उत्तर छायावाद के विशिष्ट कवि के रूप में प्रतिष्ठित किया था। उसके बाद उन्होंने 'रुद्र समग्र' का संपादन कर रामगोपाल शर्मा 'रुद्र' की समस्त कृतियों का संचयन प्रस्तुत किया। नंदकिशोर नवल ने अपने ससुर का ऋण चाहे जितना चुकाया, अपने गुरु और एक निस्पृह कवि के प्रति परवर्ती पीढ़ी के दायित्व की पूर्ति उससे अधिक की। नंदकिशोर नवल के दामाद और डॉ. पूर्वा भारद्वाज के पति प्रो. अपूर्वानंद ने भी रामगोपाल शर्मा 'रुद्र' के साहित्य और जीवस पर लिखा-पढ़ा। हाजीपुर के कवि और बिहार विश्वविद्यालय में हिन्दी के प्राध्यापक डॉ. राकेश रंजन का नाम भी इस लिहाज से लेने योग्य है। लेकिन इन दिनों जब रामगोपाल शर्मा 'रुद्र' के साहित्य की चर्चा तक नहीं हो रही थी, लोग उन्हें भूलने लगे थे, तब प्रो. नियति रुद्र ने बीड़ा उठाया। प्रो. नियति रुद्र राँची विश्वविद्यालय में हिन्दी की प्राध्यापक हैं। वह कवि रामगोपाल शर्मा 'रुद्र' की छोटी बेटी की पुत्रवधू हैं। प्रो. नियति रुद्र ने 'रुद्र समग्र' के दूसरे खंड का संपादन किया, इसके अतिरिक्त रामगोपाल शर्मा 'रुद्र' की इधर-उधर बिखरी हुई रचनाओं का भी संग्रह किया। अनेक आकाशवाणी केन्द्रों से प्रसारित रुद्र जी की कविताएँ प्राप्त कीं और उन्हें रचनावली में प्रकाशित किया।

इतना सब के बावजूद रामगोपाल शर्मा 'रुद्र' समूचे साहित्य-समाज या सार्वजनिक स्तर पर स्वीकारे नहीं जा सके। उनके परिजनों ने ही उन पर लिखा-पढ़ा, किसी अन्य शोधार्थी ने इधर ध्यान भी नहीं दिया। बिहार सरकार ने उनके स्मरण में कोई बड़ा आयोजन करने की आवश्यकता नहीं महसूस की। उनकी जयंती के अवसर पर राजभाषा सचिवालय के औपचारिक आयोजन की सीमा एक सभागार में सिमट कर रह गयी है। बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने ऐसे कुछ आयोजनों में उनका स्मरण भले किया, बिहार के किसी अन्य साहित्यिक आयोजनों का विषय वे नहीं बन सके। न ही कहीं उनकी कोई मूर्ति स्थापित की जा सकी और न ही किसी चौराहे का नाम उनके नाम पर रखकर उन्हें औपचारिक श्रद्धांजलि दी जा सकी।

रागिनी शर्मा को एक स्टैंड के सहारे उठाकर नौकरानी ने बैठा दिया। हमारी बातचीत लगभग खत्म हो चुकी थी। इस अवस्था में उनका एकाकी जीवन मुझे आहत कर गया। दूसरे कमरों और बैठक में किताबें बिखरी पड़ी होने की बजाय आलमारियों में रखी हुई थीं। लगा कि किसी ने उन्हें वर्षों से छुआ तक नहीं। प्रो. नंदकिशोर नवल जीवित थे, तो किताबों की उम्र कायम थी। अब तो वे भी मृतप्राय थीं, अस्पृश्य की तरह धारा से अलग हाशिये के लोगों की तरह। रागिनी शर्मा तो अपने हाथ से खा भी नहीं सकतीं, तो किताबों को कितना छुएंगी! हिन्दी साहित्य में रामगोपाल शर्मा की साहित्य धरोहरों को बचा लेने वाले प्रो. नंदकिशोर नवल के अपने साहित्य का अस्तित्व भी खतरे में पड़ता हुआ दिखाई पड़ा। नवल जी के नहीं होने के बाद अब उस घर में शायद ही कोई साहित्यकार जाता होगा।

राजप्रिया अपार्टमेंट के चौथे तल्ले पर रामगोपाल शर्मा 'रुद्र' की दूसरी पुत्री कविता शर्मा उर्फ बेबी रहती हैं। मैंने उनसे मिलने की इच्छा व्यक्त की। रागिनी शर्मा ने अपने फोन में बेबी नाम से संरक्षित फोन नंबर डायल करने को कहा। किंतु पिता के नाम की चर्चा करने में जितनी रुचि और भक्ति रागिनी शर्मा में दिखी, कविता में ठीक उल्टा दिखा। उन्होंने साफ तौर पर मना कर दिया। कहा कि वह बीमार हैं और अभी बात करने की स्थिति में नहीं हैं। चाय-बिस्किट के औपचारिक सत्कार से अधिक मैं रागिनी शर्मा साहित्य स्नेह से अभिभूत हो गया था। उन्होंने हाजीपुर के डॉ. बिजली प्रसाद सिंह, डॉ. शैलेन्द्र राकेश, सिद्धिनाथ मिश्र आदि के अपनत्व पर बात की।

राजप्रिय अपार्टमेंट के करीब दो सौ मीटर दक्षिण चकारम गली में रामगोपाल शर्मा 'रुद्र' का वह घर है, जो उन्होंने शाहपुर वाले घर को छोड़कर आने के बाद बनाया था। हॉस्पीटो इंडिया के सामने मकान संख्या बी–एक सौ आठ। मैं उधर मुड़ गया। लोहे के दरवाजे पर दस्तक दी, तो एक युवक ने बरामदे पर से उठकर दरवाजा खोलने का आश्वासन दिया। परंतु उसके आने के पहले एक वृद्ध स्त्री ने दरवाजा खोल दिया। मुझे समझते देर न लगी कि वह रामगोपाल शर्मा 'रुद्र' की बेटी सुषमा शर्मा हैं। मैंने रुद्र जी का जैसे ही नाम लिया, उनका चेहरा चमक गया–"अब तो उनकी बेटी भी बूढ़ी हो गयी। पानी का नल खराब है, मिस्त्री बना रहा है, उसी में व्यस्त हूँ।" बरामदे से उतरकर जो युवक आया था, वह शरत था। मुझे पूर्वा भारद्वाज ने उसी का फोन नंबर दिया था। लेकिन उसने भी टाल दिया–"फोन करके बाद में कभी आ जाइएगा।" दरवाजा बंद कर लिया। मैं उस बड़े-से भवन को बाहर से देखता रह गया। वर्षों से सुषमा शर्मा के हिस्सेवाले भवन में रंग-रोगन नहीं हुआ था। अहाता बड़ा था, लेकिन शायद किसी ने नये निर्माण का कोई प्रयास नहीं किया। इसी भवन का दक्षिणी हिस्सा हाल ही में रंगा गया था। मुझे पूर्वा भारद्वाज ने बाद में बताया कि उसमें रामगोपाल शर्मा 'रुद्र' के पुत्र एवं उनके परिजन रहते थे। किंतु अब कहाँ रहते हैं, कह नहीं सकते। उस हिस्से में किसी किरायेदार का बसेरा है।

रामगोपाल शर्मा 'रुद्र' का परिवार बिखर चुका है। शाहपुर की जिस संपत्ति को उन्होंने निर्लोभ भाव से छोड़ दिया, उसके संबंध में उनके भतीजे जयदेव शर्मा का मत है कि वे उन्हें बेचकर गए थे। रागिनी शर्मा ने सुना, तो उनका चेहरा सख्त हो गया–"जबरदस्ती!" रामगोपाल शर्मा 'रुद्र' ने अपनी विधवा पुत्री को अपने द्वारा अर्जित किये गये भवन का एक हिस्सा दे दिया, इससे उनके पौत्र एवं पुत्रवधू नाराज हुए। नाराजगी इस हद तक बढ़ी कि पुत्रवधू एवं पौत्र ने भयानक दूरी बना ली। महज कुछ सौ मीटर की दूरी पर बसे इन रक्त-संबंधियों ने दशकों से एक-दूसरे को नहीं देखा। डॉ. पूर्वा भारद्वाज ने याद करते हुए कहा– "नाना जी का पौत्र अतुल है, मुझसे तेरह साल छोटा। लेकिन मैंने उसे वर्षों से नहीं देखा। वे लोग कोई संबंध रखना नहीं चाहते। वर्षों पूर्व अतुल के विवाह में बुलाया गया था, तो लगा कि रिश्ते की गाँठ खुली। लेकिन फिर स्थिति पूर्ववत् हो गयी। इस मकान को छोड़कर अतुल किराये के किस मकान में रहता है, हमें यह भी नहीं मालूम।"

गीतों में रिश्तों को संभालनेवाले, प्रेम एवं सद्भाव को धरती का धन बतानेवाले रामगोपाल शर्मा 'रुद्र' के वंशजों को किसकी नजर लग गयी। साहित्य को सर्वस्व मानकर अपने जीवन को यज्ञ-समिधा बना देनेवाले रामगोपाल शर्मा 'रुद्र' के साहित्य को सम्मान देने की औपचारिकता सरकार भले न निभाती, इस पीढ़ी के लोग तो उनके साहित्य का संसार बचा लेते! पर यह हो न सका। समूची दुनिया है, दुनियावाले हैं। परंतु रामगोपाल शर्मा 'रुद्र' के गीत प्यार के लिए तरस कर रह गये–

सूई भी है, डोरा भी है, शशि और चकोरा भी है
टाँके पाकर मेरा घाव सिलेगा क्या!
मेरे गीतों को भी प्यार मिलेगा क्या!

सुसंभाव्य
प्रकाशन

कार्यालय
भवानी कॉम्पलेक्स, पटल बाबू रोड
गुरुद्वारा गली के सामने, भागलपुर (बिहार)
Mob.: 9931240303